G:2 Vy

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथि..................
पु० सं०..................
* भारती पुस्तकालय *

मैं सम्मानपूर्ण शांति के लिए हमेशा तैयार हूं; लेकिन जब तक किसी भी बालक में नेहरू का खून बहता रहेगा, न कभी आत्मसमर्पण किया जा सकता है और न कभी किया जायेगा ।

मोतीलाल नेहरू

I am always prepared for an honourable peace; but till there is one drop of Nehru blood in any living child, there will not be and cannot be any surrender.

MOTILAL NEHRU

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी..................
पु०सं०..................
भारती पुस्तकालय

© मोतीलाल नेहरू जन्म शताब्दी समिति

दूसरा संस्करण

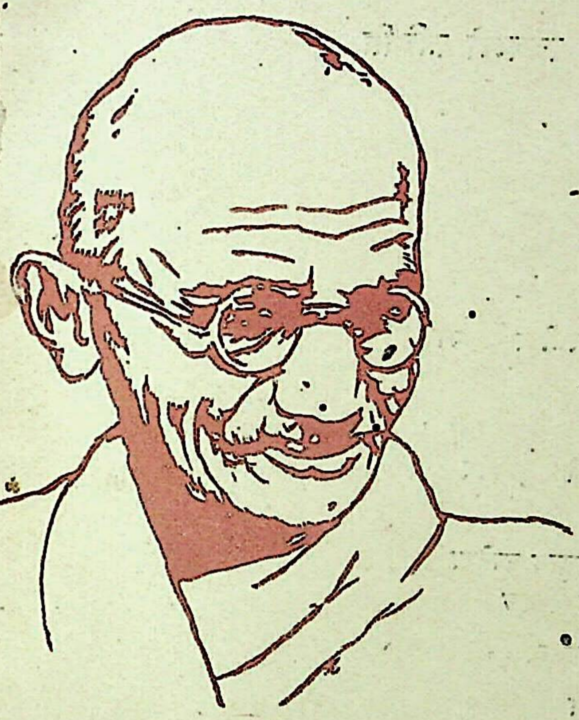

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथि.................
पुस्तक.................

"उनकी उत्कट देशभक्ति, उनकी महान कुर्बानी और बच्चों के लिए उनका अनूठा प्यार, जिन्हें उन्होंने मातृभूमि की सेवा में सौंप दिया—आपको भी उसी तरह हृदयंगम होने चाहिए जिस तरह मुझे हैं।...यह...उचित ही है कि ऐसे महान देशभक्त की प्रतिमा सदा आपकी आंखों के सामने रहे, ताकि उनके अद्भुत गुणों की याद हमेशा ताजा रहे और इन गुणों को आप खुद अपने जीवन में उतार सकें।"

[महात्मा गांधी—१९३२ में मोतीलाल नेहरू की प्रतिमा का उद्घाटन करते समय]

© मोतीलाल नेहरू जन्म शताब्दी समिति

प्रधान
डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

उप-प्रधान
श्री लालबहादुर शास्त्री
राजकुमारी अमृतकौर

मंत्री
श्री मोहनलाल सक्सेना
दीवान चमनलाल

श्री कैलाशचन्द्र

कोषाध्यक्ष
श्री कमलनयन बजाज

सोवीनियर कमेटी

प्रधान
श्री के० राघुरामैया

मंत्री
श्री आर० एस० मेहदीरत्ता

मोतीलाल नेहरू

जन्म शताब्दी स्मृति ग्रंथ

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी...........
पु०सं०...........
* भारती पुस्तकालय *

मोतीलाल नेहरू शताब्दी समिति
की ओर से
बैलट पब्लिकेशन्स
४/१ आसफअली रोड, पोस्ट बाक्स ९५, नई दिल्ली

अनुसन्धान केन्द्र
पुस्तकालय

पंडित मोतीलाल नेहरू का जीवन-काल आधुनिक भारत के निर्माण तथा विकास के सबसे महत्वपूर्ण काल से संबंधित है। उनका जन्म स्वाधीनता के प्रथम असफल संग्राम के कुछ ही वर्षों बाद, १८६१ में हुआ। उनका महाप्रस्थान उस समय हुआ, जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो चुकी थी।

उनके असाधारण सद्विवेक, साम्प्रदायिक एकता पैदा करने के लिए उनके स्वाभाविक उत्साह तथा महत्कार्यों के लिए दृढ़ता से जूझ पड़ने की उनकी मनोभावना ने स्वाधीनता-संग्राम को सुव्यवस्थित रूप देने तथा भारतीय राष्ट्र के निर्माण में महान योग दिया।

वह एक स्वनिर्मित व्यक्ति थे, परन्तु दूसरों से उनमें यह अंतर था कि उन्होंने अपने वैभवपूर्ण जीवन को स्वेच्छा से त्याग दिया और एक विद्रोही राजनीतिज्ञ बन गये। उनमें अद्वितीय साहस था। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था। उनकी उदारता अप्रतिम थी। वह अन्त तक अपने विरोधियों के श्रद्धाभाजन बने रहे। उनके विरोधी भी उनकी सराहना करते थे। वह बड़े ही सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति थे। उनमें सहज नेतृत्व का गुण था। वह एक चोटी के वकील, संसदीय पद्धति के महान् पंडित तथा भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के एक महान् नेता थे।

स राधाकृष्णन

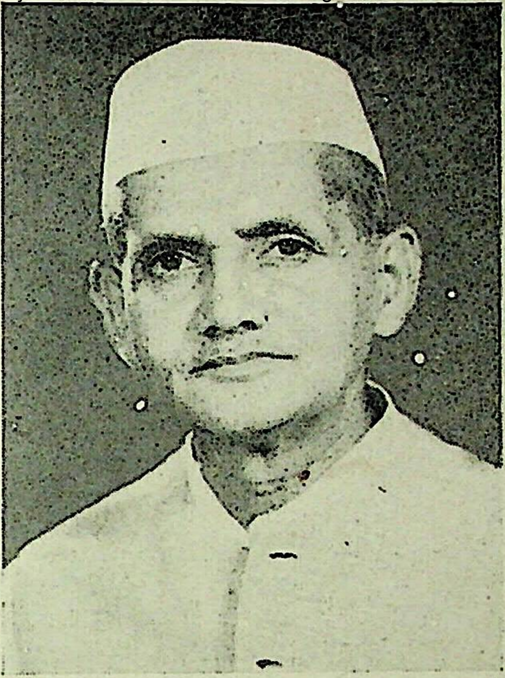

जीवन एक सनातन क्रम है, जो पिता से पुत्र को प्राप्त होता है। परन्तु, मैंने इस सत्य का मार्मिक दर्शन १९२९ में लाहौर कांग्रेस में किया, जहां पंडित मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष का पदभार अपने पुत्र पंडित जवाहरलाल नेहरू को सौंपा। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे एक महान् पिता, जो राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन का अग्रणी सेनानी था, राष्ट्र की तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन की बागडोर अपने पुत्र को सौंप रहा हो, जो युवा था और उस समय का एक उदीयमान नक्षत्र था। इस मार्मिक अवसर पर पंडित मोतीलाल ने सिर्फ इतना कहा था, "जवाहरलाल को मेरा सम्पूर्ण प्यार और मेरी सम्पूर्ण शुभकामना प्राप्त है।" इसके बाद उन्होंने फ़ारसी का एक ललित शेर पढ़ा और बैठ गए :

हरचे पिदर न तवानद
पिसर तमाम कुनद।

"जिस कार्य को पिता नहीं पूरा कर सका, उसे पुत्र पूरा करे।"

उनकी यह भविष्यवाणी कितनी सारगर्भित थी और समय ने उसे किस प्रकार सही उतारा है।

—लालबहादुर शास्त्री

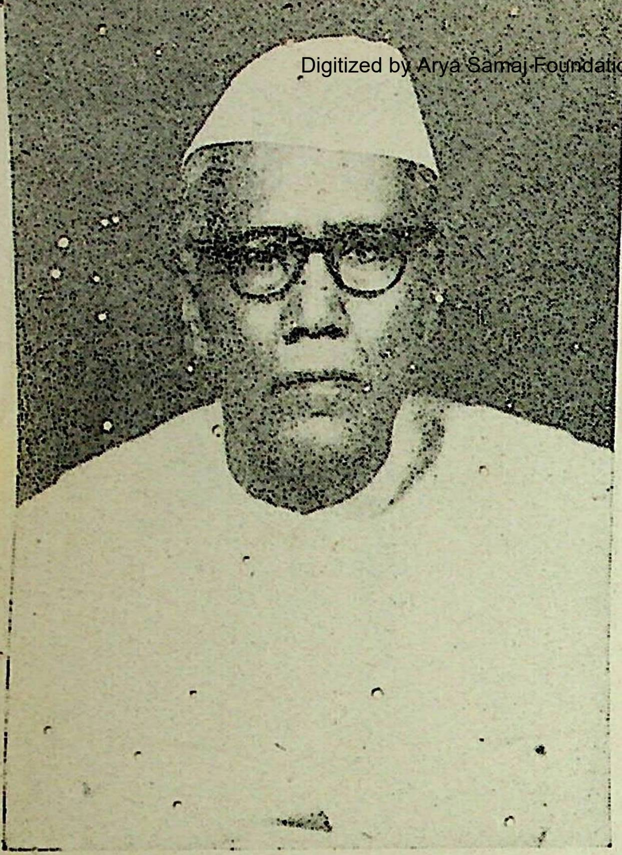

पंडित मोतीलाल नेहरू की जन्म-शताब्दी के अवसर पर मुझे उनके ये चिरस्मरणीय तथा प्रेरणादायक शब्द याद आते हैं।

"हमारी सबसे बड़ी आकांक्षा स्वाधीन भारत की नींव का पत्थर बनने और तत्पश्चात सबकी आंखों से ओझल हो जाने तथा विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाने की है।...हम इस परम संतोष के साथ अपना प्राणोत्सर्ग करेंगे कि स्वाधीन भारत का शानदार महल हमारी हड्डियों पर खड़ा हो सकेगा।"

आज जो लोग इस महल का निर्माण करने में लगे हैं, उन्हें इन प्रेरणादायक शब्दों प विचार करना चाहिए और सोचना चाहिए कि हम अपने उन महान् पुरखों के पदचिह्नों प चल रहे हैं या नहीं, जिन्होंने अनेकानेक कष्ट सहन किये और स्वाधीन भारत का मह अपनी हड्डियों पर खड़ा करने का स्वप्न देखते हुए प्राणोत्सर्ग किये।

यह भाग्य की विडम्बना है कि पंडित मोतीलाल नेहरू की जन्म-शताब्दी ऐसे समय प मनाई जा रही है, जब कि भारत की स्वतंत्रता तथा आन्तरिक एकता को अन्दर-बाहर दोन ओर से खतरा है और हम व्यक्तिगत झगड़ों तथा छोटी-छोटी बातों में फंसे हैं। मेरी समझ मे पंडित मोतीलाल नेहरू की जन्म-शताब्दी मनाने का सबसे उपयुक्त तरीका यह है कि स्वाधीनत के लिए जिस लगन से उन्होंने कार्य किया, कष्ट सहन किया ओर अन्त में प्राणों का बलिदान दिया, उस लगन को थोड़ी-वहुत मात्रा में हम भी ग्रहण करें और व्यक्तिगत, वर्गगत तथा दलग भेदभावों को भुलाकर राष्ट्र की एकता और अखंडता की रक्षा करने के लिए फिर से प्रतिज्ञा लें

—मोहनलाल सक्सेन

क्रम

सन्देश

मोतीलाल नेहरू	मोहनदास करमचन्द गांधी	९
उनकी आशावादिता और संकल्प	डा० राजेन्द्रप्रसाद	११
ज्योतिपम ज्योतिः	सर्वपल्ली राधाकृष्णन	१२

नेहरू-परिवार की स्मृतियां

हमारा खानदान	मोतीलाल नेहरू	१७
मेरे पिताजी	जवाहरलाल नेहरू	१९
मेरी मां	विजयालक्ष्मी पंडित	३१
मां का पत्र—बेटे के नाम	स्वरूपरानी नेहरू	३८
स्वराज्य भवन की कहानी	इन्दिरा गान्धी	४१
त्याग मूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू	श्रीमती रामेश्वरी नेहरू	५०

संस्मरण

आधुनिक भारत के निर्माता	सी० एफ० एन्ड्रूज	५९
पावन स्मृतियां	श्री प्रकाश	६७
स्वतन्त्रता-संग्राम में उनका योगदान	दुनीचन्द	८३
पं० मोतीलाल नेहरू की उच्चता और महानता	सुन्दरलाल	८५
महान् नेता	दीवान चमनलाल	९५
अतीत के गौरव पंडित मोतीलाल नेहरू	श्री रामकृपालसिंह	९९
जन्मजात योद्धा	बी० आर० नन्दा	१०४
कुछ संस्मरण	मोहनलाल सक्सेना	११३
उनका पत्र इंडिपेंडेंट	एम० चलपति राउ	१२२
महान् राजनीतिज्ञ और संसदीय नेता	के० एम० पणिक्कर	१२८

विशेष लेख

कुछ झलकियां	कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी	१३६
ज़िन्दादिल और विनोदप्रिय	डा० सम्पूर्णानन्द	१३९
जुझारू राष्ट्रवादी	डा० जीवराज एन मेहता	१४२
पंडित मोतीलाल नेहरू	डा० ग़ोविन्ददास	१४३
सज्जन पुरुष	राम स्वामी मुदलियार	१४९
वे दिन	लालजी मेहरोत्रा	१५२
महान् राजनीतिज्ञ	सच्चिदानन्द सिन्हा	१५८
दृढ संकल्पों के व्यक्ति	एम० एस० अणे	१६१
आज़ादी की लड़ाई के पथप्रदर्शक	बी० शिव राव	१६३
दो घटनाएं	जे० एन० साहनी	१६७
एक बड़ी हस्ती	एस० डी० उपाध्याय	१६८
जैसा मैंने उनको पाया	जमनादास द्वारकादास	१७१
कुछ यादगारें	नवाब अहमद सैयद छतारी	१७९
जन-नायक	टाइम्स, लंदन	१८२
महान् योद्धा	डी० ई० धनपाल	१८४
क्रान्तिकारियों के मित्र	एन० के० भारतीय	१८८
होमियोपैथी में रुचि	डा० के० जी० सक्सेना	१९०
शत युद्धों के विजेता	पी० के० बी०	१९२
कुछ चुने हुए पत्र		१९५
मोतीलाल नेहरू	आनन्द नारायन मुल्ला	२०७

प्राक्कथन

पण्डित मोतीलाल नेहरू भारत की स्वाधीनता के अनन्य शिल्पी थे। उनका जीवन एकाग्र साधना और महान कुर्बानी की ऐसी ज्वलन्त मिसाल है जो सदैव अपने शुभ्र प्रकाश से देश को एक छोर से दूसरे छोर तक आलोकित करता रहेगा।

यह ग्रंथ भारत के इस वीर सपूत की पवित्र स्मृति में हमारी विनम्र श्रद्धांजलि है।

प्रस्तुत पुस्तक सर्वप्रथम अंग्रेजी में प्रकाशित हुई थी। तदुपरान्त, अनेक शुभेच्छकों के श्री मोहनलाल सक्सेना जी से आग्रह करने पर मोतीलाल नेहरू शताब्दी समिति ने इसके हिन्दी संस्करण को भी प्रकाशित करने का निर्णय किया। देश की अनेक विभूतियों ने प्रस्तुत स्मारिका में पण्डित मोतीलाल नेहरू के गौरवपूर्ण जीवन और उनके राजनीतिक कार्यों पर प्रकाश डाला है। पण्डित मोतीलाल नेहरू के जीवन से सम्बंधित अनेकानेक चित्रों ने स्मारिका को चिर-स्थायी महत्व की पुस्तक बना दिया है।

अंग्रेजी संस्करण की भांति ही इसके हिन्दी प्रकाशन का श्रेय भी श्री आर. एस. मेहदीरत्ता को है। उनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप ही इसका प्रकाशन सम्भव हो सका है।

के. राघुरामैय्या

मोतीलाल नेहरू

मो० क० गांधी

महासभा का सभापतित्व अब फूलों का कोमल ताज नहीं रह गया है। फूल के दल तो दिनों-दिन गिरते जाते हैं और कांटे उघड़ते जाते हैं। अब इन कांटों के ताज को कौन धारण करेगा ? बाप या बेटा ? सैकड़ों लड़ाइयों के लड़ाका पंडित मोतीलाल नेहरू इस कांटों के ताज को पहनेंगे या संयम-नियम के पक्के जवान सिपाही पंडित जवाहरलाल नेहरू, जिन्होंने अपनी योग्यता और महत्ता से देश के युवकों के हृदयों पर अधिकार कर लिया है ?···मेरा अपना विचार तो यह है कि यह कांटों का ताज पंडित जवाहरलाल को ही मिलना चाहिए। भविष्य तो देश के युवकों के ही हाथ में होना चाहिए। मगर बंगाल तो अगले साल, जबकि बहुत से तूफानों का भय है, पंडित मोतीलाल के ही हाथों महासभा की पतवार देना चाहता है। हम लोगों में आपस में फूट है और चारों ओर से हमें एक ऐसा शत्रु घेरे हुए है, जो जितना शक्तिशाली है, उतना ही नीति-अनीति से लापरवाह भी : बंगाल को इस समय किसी बड़े-बूढ़े की विशेष आवश्यकता है और वह भी ऐसे आदमी की, जिसने उसके गाढ़े अवसर पर, उसे संभाला हो। अगर सारे हिन्दुस्तान के लिए आगे सुख का समय नहीं आने वाला है तो बंगाल के लिए तो और भी नहीं। इसके तो हज़ारों कारण हैं कि पंडित मोतीलालजी को ही क्यों यह कांटों का ताज धारण करना चाहिए। वे वीर हैं, उदार हैं, उन पर सभी दलों का विश्वास है, मुसलमान उन्हें अपना मित्र मानते हैं, उनके विरोधी भी उनका आदर करते हैं और अपनी ज़ोरदार दलीलों से वे उन्हें प्रायः ही अपनी राय से सहमत कर लेते हैं। इसके अलावा उनके स्वभाव में संधि और समझौते की भावना की ऐसी पुट भरी हुई है, जिससे वे किसी ऐसे राष्ट्र के अत्यन्त योग्य दूत होने लायक हैं, जिसे सम्मानित समझौते की आवश्यकता है और जो उसे करने के लिए तैयार हैं। इन्हीं बातों पर विचार करके, अत्यन्त साहसी बंगाली देशभक्त पंडित मोतीलाल नेहरू को ही अगले वर्ष के लिए राष्ट्र का कर्णधार बनाना चाहते हैं।

(हिं० न०, २६-७-२८)

* * *

हमारे देश के इस बहादुर वीर के शव के सामने खड़े होकर गंगा और यमुना के किनारे हममें से हर पुरुष और हर स्त्री को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि जब तक हिन्दुस्तान आज़ाद न होगा वह चैन न लेंगे, इसलिए कि यही वह काम है, जो मोतीलालजी दिल से चाहते थे। इसी खातिर उन्होंने अपनी जान दे दी।···

मेरी हालत विधवा स्त्री से भी बुरी है। एक विधवा अपने पति की मृत्यु के बाद वफादारी से जीवन बिताकर अपने पति के अच्छे कामों का फल पा सकती है। मैं कुछ भी नहीं पा सकता। मोतीलालजी की मृत्यु से जो कुछ मैंने खोया है वह मेरा सदा के लिए नुकसान है। ('कोई शिकायत नहीं', पृष्ठ ७३)

* * *

मोतीलालजी की मृत्यु हरेक देशभक्त के लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए, क्योंकि अपना सबकुछ न्योछावर करके वे मरे हैं और अन्त समय तक देश का ही ध्यान करते रहे हैं। इस वीर की मृत्यु से हमारे अन्दर भी बलिदान की भावना आनी चाहिए। हममें से हरेक को चाहिए कि जिस स्वतन्त्रता के

लिए वे उत्सुक थे और जो हमारे नज़दीक आ पहुंची है, उसको प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व नहीं तो कम-से-कम इतना बलिदान तो करें ही कि जिससे वह हमें प्राप्त हो जाय।

(मोतीलालजी की मृत्यु पर, ७ फरवरी को, इलाहाबाद में दिया संदेश)

* * *

मैं श्री मोतीलाल नेहरू की याद आपको दिला दूंगा जिन्होंने अपनी कानूनी लियाकत बिलकुल मुफ्त बांटी और अपने देश की बड़ी अच्छी तथा विश्वस्त सेवा की। आप मुझे शायद ताना देंगे कि वे लोग इस कारण ऐसा कर सके थे कि वे अपने व्यवसाय में बड़ी लम्बी फीस लेते थे। मैं इस तर्क को इस कारण नहीं मान सकता कि मनमोहन घोष के सिवा मेरा और सबसे परिचय रहा है। अधिक रुपया होने की वजह से इन लोगों ने भारत को आवश्यकता पड़ने पर अपनी योग्यता उदारतापूर्वक दी हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसका उनकी आराम तथा विलास से रहने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने उनको बड़े संतोष से दीनतापूर्वक जीवन-निर्वाह करते देखा है। (हिं० न०, १२-११-३१)

* * *

उस ज़माने में हमने विदेशी कपड़े के पहाड़ चिन-चिनकर जला दिये थे और कोई यह नहीं कहता था कि इससे राष्ट्र की निधि बर्बाद हो रही है। श्रीमती नायडू ने अपनी पेरिस की साड़ी जला दी थी और स्व० मोतीलालजी ने भी अपने विलायती कपड़ों में दियासलाई लगा दी थी। उनके पास तो आलमारी-की-आलमारियां विदेशी कपड़े थे। इसके बाद जब वे जेल गए तब उन्होंने मेरे पास एक खत भेजा था। आज वह खत मैं खोज नहीं सकता, पर उसमें था कि मैं सच्चा जीवन अब ही जी रहा हूं, आनन्द भवन में मेरे पास जो समृद्धि थी, उससे मुझे यह सुख नहीं मिलता था। वहां उन्हें सिगार, शराब, गोश्त कुछ नहीं मिलता था। पूरा भोजन भी नहीं मिलता था। फिर भी उसमें उन्हें सुख मालूम हुआ।

* * *

स्वर्गीय मोतीलालजी के चित्र के उद्घाटन का जो सम्मान तुम लोगों ने मुझे दिया है, उसके लिए मैं तुम्हारा आभारी हूं। तुम्हारे पास उनकी छवि रहे और उनके पवित्र भावों को तुम सदा अपने हृदय में अंकित रखो, यह उचित ही है। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि जैसा सम्बन्ध दो सगे-सहोदर भाइयों के बीच होता है, वैसा ही प्रगाढ़ प्रेम-सम्बन्ध मोतीलालजी के और मेरे बीच था। मोतीलालजी की देश-सेवा, मोतीलालजी का त्याग, मोतीलालजी का अपने पुत्र-पुत्रियों के प्रति अनुपम प्रेम, इन सब बातों का परिचय जैसा मुझे था, लगभग वैसा ही तुम्हें भी होना चाहिए। जब से मुझे मोतीलालजी का प्रथम परिचय प्राप्त हुआ, तबसे उनके जीवन के अंतिम समय तक उनके निकट संसर्ग में रहने का सद्भाग्य ईश्वर ने मुझे दिया था। मैंने देखा कि वह प्रतिक्षण स्वदेशहित का ही चिन्तन करते थे। उनके लिए स्वराज्य स्वप्न नहीं, बल्कि प्राण था। स्वराज्य की उन्हें सदा तृष्णा-पिपासा रही और वह दिन-दिन बढ़ती ही गई। ऐसे आदर्श देशभक्त का चित्र अपने सम्मुख रखना उचित ही है।··· इतनी आशा मुझे अवश्य है कि स्वर्गीय पंडितजी के गुणों का तुम लोग अनुकरण करोगे।···पंडित मोतीलालजी के सद्गुणों में एक गुण यह भी था कि वह अस्पृश्यता नहीं मानते थे। वह मानों एक राजपुरुष थे। उन्होंने तो बेहद रुपया कमाया, उसे सत्कार्यों में, स्वराज्य के कार्यों में लुटाया। मुझे उनके ऐसे दृष्टांत मालूम हैं कि उनके हृदय में ऊंच-नीच का भाव था ही नहीं। (ह० से०, २९-१२-३३)

उनकी आशावादिता और संकल्प

डा० राजेन्द्र प्रसाद

पंडित मोतीलाल के सम्बन्ध में कुछ अधिक कहना मेरे लिए अनावश्यक है। श्री उपराष्ट्रपति ने कहा है कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में मोतीलालजी ने गांधीजी को स्वराज्य-प्राप्ति के सम्बन्ध में कुछ कहा था, इसी से मिलती-जुलती एक घटना मेरे साथ घटी थी, जिसे मैं यहां कहना चाहता हूं। जब हम सब आज़ादी की लड़ाई में व्यस्त थे और स्वराज्य अभी हमसे दूर था, और मैं कुछ हतोत्साह-सा मोतीलालजी से बात कर रहा था तो उन्होंने तुरन्त मुझसे कहा, "अभी तुम नौजवान हो, इसलिए चिन्ता मत करो। अपने जीवन-काल में मैं भारत को आज़ाद हुए देखूंगा और भारतीय गणराज्य का प्रथम राष्ट्रपति बनूंगा।" यह उनकी आशावादिता थी और इसी संकल्प के साथ वह जीवन-भर राजनीतिक कार्य करते रहे। जब तक मोतीलालजी जिये, उन्होंने इसी दृढ़ता से काम किया। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उनके देहान्त के १६ वर्ष उपरान्त ही हमने स्वराज्य प्राप्त कर लिया।

इसलिए यह कहना सत्य ही है कि पंडित मोतीलाल नेहरू और उन्हीं के समान अन्य नेताओं के त्याग तथा दृढ़ता का ही यह परिणाम था कि देश आज़ाद हो सका। इस समय हमारा यह कर्तव्य है कि हम इन नेताओं की सेवाओं का स्मरण करें, केवल अपना आभार प्रकट करके ही नहीं, बल्कि अभी जो कार्य हमारे सामने है, उसे पूर्ण करने के लिए उनके जीवन से प्रेरणा लेकर। जो आज़ादी हमें मिली है, हमें उसे भारत की जनता के लिए उपयोगी और सोद्देश्य बनाना है। जो कार्य हम आज कर रहे हैं, वह पहले कार्य से कुछ भिन्न है, क्योंकि प्रकट रूप से उसके लिए उसी सीमा तक त्याग की आवश्यकता दिखाई नहीं देती। किन्तु मेरा अपना विचार है कि यह धारणा ठीक नहीं। हमारा इस समय का कार्य भी त्याग और निःस्वार्थता का उतना ही मोहताज है, जितना पहला कार्य था, या शायद उससे भी अधिक। इस बात को सदा याद रखना और पंडित मोतीलालजी जैसे महापुरुषों के जीवन को सदा अपने सामने रखना हमारे लिए आवश्यक है, जिससे कि हम अपने तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तत्परता से प्रयत्नशील रहें।

(मोतीलाल नेहरू के शताब्दी-समारोह के अवसर पर दिये गए भाषण का अंश ६-५-१९६१)

हम सब अहिंसात्मक क्रांतिकारी हैं, हम आपके अनुचित कानूनों को न मानने के लिए अपने को संगठित करना चाहते हैं और आपके लिए यह असम्भव कर देना चाहते हैं कि उन कानूनों द्वारा देश पर शासन करें। हमें सफलता मिले या न मिले—भले ही यह कोरा स्वप्न हो और उसे फलित करना बहुत ही कठिन हो, लेकिन हमारे लिए बस यही एक मार्ग रह गया है।

—मोतीलाल नेहरू

ज्योतिषम ज्योतिः

सर्वपल्ली राधाकृष्णन

मोतीलाल नेहरू का जन्म ६ मई, १८६१ को आगरा में हुआ था। इस नगर ने अनेक महान् व्यक्ति प्रदान किये हैं जिन पर वह न्यायोचित रूप से गर्व कर सकता है। मोतीलाल नेहरू एक बहुत बड़े वकील, एक महान् देशभक्त तथा एक महापुरुष थे। उन्होंने अपने आकर्षक व्यक्तित्व तथा दृढ़ चरित्र के कारण भारतीयों और अंग्रेजों दोनों से ही सम्मान प्राप्त किया था। मोतीलाल नेहरू हर तरह से एक महामानव थे।

एक वास्तविक नेता

किसी व्यक्ति के जन्म-शताब्दी समारोह पर हमें उसके महत्व और उसकी देन के मूल्यांकन का अवसर मिलता है। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू के गुणों और कार्यों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की जा सकती है। उनमें नेतृत्व का स्वाभाविक गुण था। उन्होंने एक संवेदनशील हृदय पाया था। उनमें अपूर्व धैर्य, दृढ़ता, कर्मठता, साहस तथा वीरता थी। हमारे देश के सार्वजनिक जीवन पर उनके इन सभी गुणों की अमिट छाप लगी है। यहां मैं मोतीलाल नेहरू की राजनीतिक और सामाजिक उपलब्धियों की ही चर्चा करूंगा।

मोतीलाल नेहरू को राजनीति के क्षेत्र में लाने का श्रेय ऐतिहासिक परिस्थितियों के अलावा महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू को है। वीर पुरुष की प्रखरता प्रतिकूल परिस्थितियों में ही प्रकट होती हैं। एक आरामपसन्द जिन्दगी के अभ्यस्त होने तथा पश्चिमी तौर-तरीके के प्रशंसक होने के बावजूद उन्होंने अपने को गांधीजी के अनुशासन से बांध लिया। उस समय राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के लिए खादी कातना और बुनना अनिवार्य था। खादी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं और कोटि-कोटि देशवासियों के बीच स्नेहसूत्र बन चुकी थी। मोतीलाल ने अपनी विदेशी वेश-भूषा त्याग दी और खादी का बाना अपना लिया। वह अपनी नई वेश-भूषा में और भी अधिक आकर्षक दिखाई देते थे। उन्होंने इलाहाबाद की सड़कों पर घूम-घूमकर खादी वेची। उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया तथा जेल भी गये।

संसदीय पद्धति के प्रकांड पंडित

उनके राजनीतिक जीवन में उनके दो गुण स्पष्ट रूप से चमके। वह एक बहुत बड़े संगठनकर्त्ता तथा संसदीय पद्धति के प्रकाण्ड पंडित थे। स्वराज्य पार्टी के नेता की हैसियत से उन्होंने केन्द्रीय असेम्बली में नई संसदीय मर्यादाएं कायम की और हम आज भी उन मर्यादाओं का पालन करने का प्रयास करते हैं। दर्शक दीर्घा से मैंने अनेक बार उन्हें असेम्बली में विरोध-पक्ष के नेता के रूप में कार्य करते देखा। उनका पहनावा उतना ही विशिष्ट था, जितनी उनकी मेधाशक्ति। उन्होंने बड़ी सावधानी से विरोधी-पक्ष का नेतृत्व किया तथा अपने वैधानिक पाण्डित्य और संसदीय पद्धति की जानकारी का परिचय दिया। उन्होंने साइमन कमीशन के विरोध का नेतृत्व किया। उन्होंने सर्वदलीय सम्मेलन की अध्यक्षता की तथा देश के लिए एक संविधान की रूपरेखा तैयार की। उसी वर्ष, १९२८ में, उन्होंने भारतीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन की अध्यक्षता की। उनके लिए यह बहुत ही खुशी की बात थी कि जवाहरलाल ने उनसे कांग्रेस-अध्यक्ष का पद-भार ग्रहण किया। इस अवसर पर उन्होंने एक फ़ारसी का शेर

पढ़ा, जिसका अर्थ है—"जो कार्य पिता पूरा नहीं कर सका, उसे पुत्र पूरा करेगा।" उन्होंने कहा कि अब देश "गांधीजी के मस्तिष्क और जवाहरलाल की वाणी से परिचालित होगा।" दिसम्बर १९२९ में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता-सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुआ। ठीक आधी रात के समय यह प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकृत हुआ था और उसके साथ ही नये वर्ष और नवयुग का श्रीगणेश हुआ। अपने अन्तिम क्षणों में मोतीलाल ने गांधीजी से कहा था, "मैं जा रहा हूं, महात्माजी! मैं स्वराज्य देखने के लिए ज़िन्दा नहीं रहूंगा। लेकिन मैं जानता हूं कि आपने स्वराज्य जीत लिया है और आपको शीघ्र मिल जायेगा।"

साम्प्रदायिक एकता

संसदीय कार्यों के अतिरिक्त मोतीलाल नेहरू साम्प्रदायिक एकता पर सर्वाधिक ज़ोर देते थे। उनके लिए यह केवल नीति का नहीं, वरन् आस्था का प्रश्न था। साम्प्रदायिक एकता की भावना उनकी नस-नस में समाई थी। जिस समय देश में साम्प्रदायिक वैमनस्यता की आग धधक रही थी तथा हिंसा और द्वेष का बोलबाला था, गांधीजी ने अनशन किया। मोतीलाल ने एकता सम्मेलन की अध्यक्षता की और २६ सितम्बर, १९२४ को इस सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास करके कहा गया कि देश में धर्म तथा विश्वास की पूर्ण स्वतन्त्रता आवश्यक है। प्रस्ताव में किसी भी धर्म के पवित्र स्थलों को भ्रष्ट करने की निन्दा की गई। प्रस्ताव में किसी व्यक्ति को धर्म-परिवर्तन करने पर दण्ड देने की भर्त्सना की गई, साथ ही किसी भी व्यक्ति पर अपना धर्म छोड़कर दूसरा धर्म ग्रहण करने अथवा पुनः अपना पुराना धर्म अपनाने के लिए ज़ोर-ज़बर्दस्ती करने या अपने धर्म-पालन के लिए दूसरों के अधिकारों की अवहेलना करने की निन्दा की गई। इस प्रकार की साम्प्रदायिक सद्भावना तथा एकता की आज भी ज़रूरत है। यद्यपि हम अपने धार्मिक अन्धविश्वासों तथा साम्प्रदायिक वैमनस्यता के फलस्वरूप बहुत नुकसान उठा चुके हैं, फिर भी हमने अभी उससे आवश्यक शिक्षा नहीं ग्रहण की है। साम्प्रदायिकता का विष हमारे देश के राजनीतिक जीवन में बुरी तरह प्रविष्ट हो गया है। हमें इसका समूल नाश करने के लिए यथाशक्ति प्रयास करना चाहिए।

मोतीलाल किसी भावुकता के वश नहीं, वरन् ठोस तार्किक आधार पर समाज-सुधार की आवश्यकता अनुभव करते थे। साम्प्रदायिक द्वेष हमारे धर्म और हमारी परम्पराओं के बिलकुल प्रतिकूल है।

भारतीय संस्कृति में विश्वास

जवाहरलाल नेहरू ने गांधीजी को बताया था कि अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में मोतीलाल गायत्री का जाप किया करते थे, हालांकि उन्होंने चालीस वर्षों से गायत्री का पाठ तक नहीं किया था। गायत्री के अनुसार ईश्वर कोई निष्ठुर पिता या कठोर न्यायाधीश नहीं है, वरन् वह 'ज्योतिषम् ज्योतिः' (ज्योति की ज्योति)—वह एक ऐसा ज्योतिपुंज है, जिसकी ओर हम सभी, अपनी कमज़ोरियों के बावजूद, बढ़ने का प्रयास करते हैं। अपने अन्तरतम में मोतीलाल नेहरू भारतीय संस्कृति में विश्वास रखते थे। उन्हें इसकी स्वतन्त्र-प्रियता और मानवमात्र तथा राष्ट्रों की बुराइयों को दूर करने की शक्ति में आस्था थी। मोतीलाल नेहरू का जीवन सभ्य-संस्कृत जीवन का प्रतीक था। वह मानवमात्र की गरिमा तथा विश्वबंधुत्व में विश्वास रखते थे।

भारतीय संस्कृति की धारा लगभग पांच हज़ार वर्षों से अविच्छिन्न है। यद्यपि इसने अतीत में बहुत से झंझावातों का सामना किया है, फिर भी वह अपनी अतुल गहराइयों तथा मानव-सेवा की अगाध क्षमता के साथ हमको विरासत में प्राप्त हुई है। प्रत्येक राष्ट्र की एक मूल भावधारा रहती है। यद्यपि उस धारा का दिशा-परिवर्तन होता रहता है, कभी वह वेगवती होकर बहती है और कभी शिथिल रूप

में, फिर भी वह राष्ट्र का प्रेरणा-स्रोत रहती है। हमको अनेक बार पराजित होना पड़ा है, फिर भी हमारी आत्मा सदैव अजेय रही है। प्रत्येक हमले के बाद, कष्ट और दुःख के बावजूद भारत ने अपने को प्रगति के पथ पर ही पाया है। आज हम राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के युग में हैं। हम अपनी विरासत को समय के अनुकूल ढालने का यथासम्भव प्रयास कर रहे हैं।

अखिल भारत सर्व सेवा संघ "एक सहकारी, एकताबद्ध और समन्वयात्मक समाज के निर्माण" के लिए हमारा आवाहन कर रहा है। यदि हम यह कार्य अपने कंधों पर लें और इसमें जुट जाएं तो हम उस सर्वप्रिय, उदार और महान् देशभक्त के पदचिह्नों पर चलेंगे, जिसकी आज हम जन्म-शताब्दी मना रहे हैं।

(जन्म-शताब्दी-समारोह के उद्घाटन-भाषण से, आगरा, ६ अप्रैल, १९६१)

आज धर्म का उपयोग सबसे बड़ी विभाजक शक्ति के रूप में किया जाता है, हमारे दैनिक जीवन में उसका अर्थ है, मूर्तिपूजा और धर्मांधता, असहिष्णुता और मस्तिष्क की संकीर्णता, स्वार्थपरता और स्वस्थ समाज का निर्माण करने वाले गुणों का निषेध। राजनीति के साथ भी उसका सम्बंध किसी काम का नहीं। धर्म का पतन हो गया है और राजनीति दलदल में फंस गई है।

—मोतीलाल नेहरू

: २ :

नेहरू-परिवार की स्मृतियां

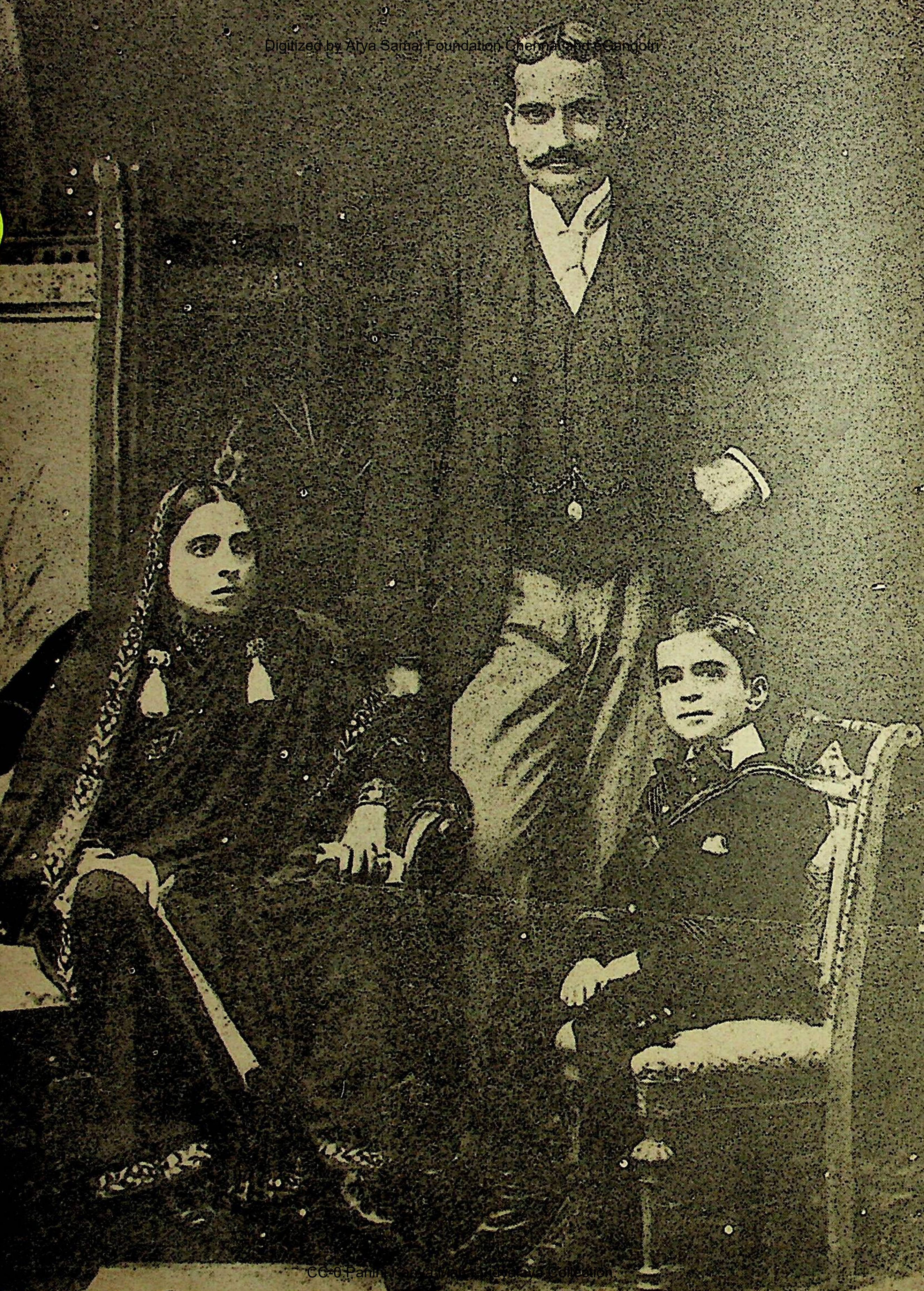

हमारा खानदान

मोतीलाल नेहरू

हमारे खानदान के इतिहास का कोई पुराना दस्तावेज़ नहीं मिलता । सभी पुराने कागज़ात और दस्तावेज़ १८५७ के गदर में नष्ट हो गए । इस समय खानदान में हमारे सबसे बुजुर्ग, हमारे बड़े भाई पंडित वंशीधर नेहरू हैं, जो गवर्नमेन्ट पेन्शनर हैं और लगभग १३ साल पहले प्रांत के सबार्डिनेट जज, फर्स्ट ग्रेड के ओहदे से रिटायर हुए थे । उन्होंने निम्नलिखित विवरण दिया है, जिसका प्रारम्भिक भाग मुख्य रूप से पारिवारिक जनश्रुति पर आधारित है ।

मेरे दादा के परदादा पंडित राज कौल कश्मीर में संस्कृत और फ़ारसी के बड़े प्रसिद्ध विद्वान् माने जाते थे । सम्राट फर्रुखसियर जब कश्मीर गया, तो उसकी नज़र उन पर पड़ी और सन् १७१६ के आस-पास हमारा खानदान दिल्ली चला आया । उनको कुछ गांव तथा शहर में नहर के किनारे एक मकान जागीर के रूप में मिला । नहर के किनारे मकान होने के कारण वह राज कौल नेहरू कहलाने लगे । धीरे-धीरे उनका कौटुम्बिक नाम नेहरू पड़ गया और परिवार के अन्य लोग भी अपने नाम के साथ यही शब्द जोड़ने लगे ।

फर्रुखसियर का कत्ल हो जाने के बाद दरबार में और मुल्क में बड़ा डांवांडोल ज़माना आया और हमारे खानदान ने बहुत-से उतार-चढ़ाव देखे, जिनका कोई सुनिश्चित विवरण नहीं मिलता । सिर्फ इतना मालूम है कि हमारी जागीर धीरे-धीरे तहस-नहस हो गई और वह कुछ गांवों की जमींदारी तक सीमित रह गई, जो हमारे परदादा पंडित मौसाराम नेहरू तथा उनके भाई पंडित साहेब राम नेहरू को प्राप्त हुई ।

मेरे दादा पंडित लक्ष्मीनारायण नेहरू दिल्ली के शाही दरबार में 'कम्पनी सरकार' के पहले वकील हुए । मेरे पिता पंडित गंगाधर नेहरू १८५७ के गदर के पहले कुछ समय तक दिल्ली के कोतवाल रहे थे । उनकी मृत्यु ३४ वर्ष की अवस्था में, सन् १८६१ में, मेरा जन्म होने से ३ महीने पहले हो गई ।

माता के खानदान में मेरे परनाना समरू की बेगम (डाइस साम्ब्रे की बेगम) के दीवान थे । मेरे नाना पंडित शंकरलाल जुत्शी दिल्ली के मशहूर आलिमों में थे और स्व० सर सैयद अहमद खां ने अपनी 'आसारुस सनादीद' नामक पुस्तक में पृष्ठ ११२ पर उनका ज़िक्र किया है ।

मैं तीन भाइयों में सबसे छोटा हूं । सबसे बड़े भाई, पंडित वंशीधर नेहरू, जिनका ज़िक्र कर चुका हूं, अब रिटायर होकर मथुरा (यू० पी०) में रहते हैं । उनके बाद पंडित नंदलाल नेहरू हुए, जो लगभग दस बरस तक खेतड़ी रियासत (राजपूताना) के दीवान रहे । इस पद पर उन्होंने बड़ा नाम कमाया और उन्होंने ब्रिटिश सरकार के ठगी तथा डकैत विभाग को बहुमूल्य सहायता प्रदान की, जिसके लिये उन्हें कई खरीते तथा प्रशंसासूचक पत्र मिले थे । खेतड़ी के राजा का देहान्त हो जाने पर वह इलाहाबाद चले आये और हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा पास करने के बाद शीघ्र चोटी के वकील बन गए । उनका देहान्त अचानक भरी जवानी में १८८७ में हो गया ।

मेरा जन्म आगरा में ६ मई, १८६१ को हुआ । मैंने इलाहाबाद तथा कानपुर के गवर्नमेंट स्कूलों में तथा म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में शिक्षा पाई । १८८३ में मेरा नाम हाईकोर्ट के वकीलों में दर्ज हो गया और जनवरी, १८९६ में हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधिपति तथा अन्य माननीय न्यायाधिपतियों के सर्वसम्मत प्रस्ताव से मैं एडवोकेट बना दिया गया । अगस्त, १९०९ में मुझे लंदन में प्रिवी कौंसिल के सामने बहस करने की इजाज़त दी गई । दिसम्बर, १९०९ में मैं इलाहाबाद डिवीजन के डेलिगेटों द्वारा युक्तप्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर की लेजिस्लेटिव कौंसिल का सदस्य चुन लिया गया ।

२-७-१९१६

←
पत्नी और ४-वर्षीय पुत्र के साथ

मेरे पिताजी

जवाहरलाल नेहरू

पिताजी का जन्म आगरा में ६ मई, १८६१ को हुआ। वह मेरे दादा के मरने के तीन महीने बाद हुए थे। (दादाजी के मरने पर) हमारे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी मेरे दो बड़े चाचाओं पर आ पड़ी, जो कि उम्र में मेरे पिता से काफी बड़े थे। बड़े चाचा बंसीधर नेहरू, थोड़े ही दिन बाद ब्रिटिश सरकार के न्याय-विभाग में नौकर हो गए। जगह-जगह उनका तबादला होता रहा, जिससे वह परिवार के और लोगों से बहुत कुछ जुदा पड़ गए। छोटे चाचा नन्दलाल नेहरू, राजपूताना की एक छोटी रियासत, खेतड़ी के दीवान हुए और वहां दस बरस तक रहे। बाद में उन्होंने क़ानून का अध्ययन किया और आगरा में वकालत शुरू की। मेरे पिता भी उन्हीं के साथ रहे और उन्हीं की छत्रच्छाया में उनका लालन-पालन हुआ। दोनों का आपस में बड़ा प्रेम था और उनमें बंधु-प्रेम, पितृ-प्रेम और वात्सल्य का अनोखा मिश्रण था। मेरे पिता सबसे छोटे होने के कारण स्वभावत: मेरी दादी के बहुत लाड़ले थे। वह बूढ़ी थीं और बड़ी दबंग भी। किसी की ताब नहीं थी कि उनकी बात को टाले। उनको मरे अब पचास वर्ष हो गये होंगे, मगर बूढ़ी कश्मीरी स्त्रियां अब भी उनको याद करती हैं कि वह बड़ी ज़ोरदार औरत थीं। अगर किसी ने उनकी मर्ज़ी के खिलाफ कोई काम किया तो बस मौत ही समझिये।

शिक्षा

मेरे चाचा नये हाईकोर्ट में जाया करते थे और जब वह हाइकोर्ट इलाहाबाद चला गया तो हमारे परिवार के लोग भी वहीं जा बसे। तबसे इलाहाबाद ही हमारा घर बन गया है और वहीं, बहुत साल बाद मेरा जन्म हुआ। चाचाजी की वकालत धीरे-धीरे बढ़ती गई और वह बड़े वकीलों में गिने जाने लगे। इस बीच मेरे पिताजी कानपुर के स्कूल और इलाहाबाद के कॉलेज में शिक्षा पाते रहे। शुरू-शुरू में उन्होंने महज़ फ़ारसी और अरबी की तालीम पाई थी। उनकी अंग्रेज़ी शिक्षा बारह-तेरह वर्ष की उम्र के बाद शुरू हुई। मगर उस उम्र में भी वह फ़ारसी के अच्छे जानकार समझे जाते थे और अरबी में भी कुछ दखल रखते थे। इसी कारण उनसे उम्र में बहुत बड़े लोग भी उनके साथ इज़्ज़त से पेश आते थे। छोटी उम्र में इतनी लियाकत हो जाने पर भी स्कूल और कॉलेज में वह ज़्यादातर हँसी-खेल और धींगा-मुश्ती के लिए मशहूर थे। उन्हें संजीदा विद्यार्थी किसी तरह नहीं कह सकते थे। पढ़ने-लिखने की बनिस्बत खेल-कूद और शरारत का शौक बहुत था। कॉलेज में सरकश लड़कों के अगुआ समझे जाते थे। उनका झुकाव पश्चिमी लिबास की तरफ हो गया था और सो भी उस वक्त जब कि हिन्दुस्तान में कलकत्ता और बम्बई जैसे बड़े शहरों को छोड़कर कहीं इसका चलन नहीं हुआ था। वह तेज़ मिज़ाज और अक्खड़ थे, तो भी उनके अंग्रेज़ प्रोफ़ेसर उनको बहुत चाहते थे और अक्सर मुश्किलों से बचा लिया करते थे। वह उनकी स्पिरिट को पसन्द करते थे। उनकी बुद्धि तेज़ थी और कभी-कभी एकाएक ज़ोर लगाकर वह क्लास में भी अपना काम ठीक चला लेते थे। अर्से बाद अक्सर वह अपने एक प्रोफ़ेसर का जिक्र प्रेम-भरे शब्दों में किया करते थे। वह थे मि० हैरिसन, जो म्योर सैन्ट्रल कॉलेज, इलाहाबाद के प्रिंसिपल थे। उनकी एक चिट्ठी भी उन्होंने बड़े जतन से संभालकर रखी थी। यह उन दिनों की है, जब कि वह कॉलेज में पढ़ते थे।

कॉलेज की परीक्षाओं में वह पास होते चले गए। मगर कोई खास नामवरी हासिल नहीं की। आखिर को बी० ए० के इम्तिहान में बैठे। मगर उसके लिए उन्होंने कुछ मेहनत या तैयारी नहीं की थी और जो पहला पर्चा किया, तो उससे उन्हें बिलकुल सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने सोचा, जब पहला ही पर्चा बिगड़ गया है तो अब पास होने की क्या उम्मीद? उन्होंने बाकी पर्चे किए ही नहीं और जाकर ताजमहल की सैर करने लगे। (उन दिनों विश्वविद्यालय की परीक्षाएं आगरा में हुआ करती थीं) मगर बाद को उनके प्रोफेसर ने उन्हें बुलाया और बहुत बिगड़े। उनका कहना था कि पहला पर्चा तुमने ठीक-ठीक किया है और बड़ी बेवकूफ़ी की, जो आगे के पर्चे नहीं किए। खैर, इस तरह पिताजी की कॉलेज-शिक्षा हमेशा के लिए खत्म हो गई और बी० ए० पास करना आखिर रह ही गया।

अब उन्हें काम-धन्धा जमाने की फिक्र हुई। सहज ही उनकी निगाह वकालत की ओर गई, क्योंकि उस समय वही एक पेशा था जिसमें बुद्धिमान और होशियार आदमियों के लिए काम की गुंजाइश थी और जिसकी चल जाती उसके पौ बारह होते थे। अपने भाई की मिसाल उनके सामने थी ही। बस हाईकोर्ट वकालत के इम्तिहान में बैठे और उनका नम्बर सबसे पहला रहा। कानून का विषय उन्हें दिल से पसन्द था और उसमें सफलता पाने का उन्होंने निश्चय कर लिया था।

वकालत में प्रवेश

उन्होंने कानपुर की ज़िला अदालतों में वकालत शुरू की, और चूंकि वह सफलता पाने के लिए बहुत लालायित थे, इसलिए जीतोड़ मेहनत की। फिर क्या था, उनकी वकालत अच्छी चमक उठी। मगर हां, हँसी-खेल और मौज-मज़ा उनका उसी तरह जारी रहा और अब भी उनका कुछ वक्त उसमें चला जाता था। उन्हें कुश्ती और दंगल का खास शौक था। उन दिनों कानपुर कुश्तियों और दंगलों के लिए मशहूर था।

तीन साल तक कानपुर में उम्मीदवार के तौर पर काम करने के बाद पिताजी इलाहाबाद आए और हाईकोर्ट में काम करने लगे। इधर चाचा पंडित नन्दलाल एकाएक गुज़र गए। इससे पिताजी को ज़बरदस्त धक्का लगा। वह उनके लिए भाई ही नहीं, पिता के समान थे, और उन दोनों में बड़ा प्रेम था। उनके गुज़र जाने से परिवार का मुखिया, जिस पर सारी आमदनी का दारोमदार था, उठ गया। परिवार की और पिताजी की यह बहुत बड़ी हानि थी। अब इतने बड़े कुनबे के भरण-पोषण का प्रायः सारा भार उनके तरुण कन्धों पर आ पड़ा।

वह अपने पेशे में जुट पड़े। सफलता पर तो तुले हुए थे ही। इसलिए कई महीनों तक दूसरी सब बातों से जी हटाकर इसी में लगे रहे। चाचाजी के करीब-करीब सब मुकदमे उन्हें मिल गए और उनमें अच्छी कामयाबी भी मिली। इससे अपने पेशे में भी उन्हें बहुत जल्दी कामयाबी मिलती चली गई। मुकदमे धड़ाधड़ आने लगे और रुपया खूब मिलने लगा। छोटी उम्र में ही उन्होंने वकालती पेशे में नामवरी हासिल कर ली, परन्तु उसकी कीमत उन्हें यह देनी पड़ी कि वकालत देवी के ही मानों वह अधीन हो गए। उनके पास न सार्वजनिक और न घर के काम के लिए वक्त रहता था, यहां तक कि छुट्टियों के दिन भी वह वकालत के काम में ही लगाते थे। कांग्रेस उन दिनों मध्यम श्रेणी के अंग्रेज़ी पढ़े लोगों का ध्यान अपनी तरफ खींचने लगी थी। वह उसकी शुरू की कुछ बैठकों में गए भी थे और, जहां तक विचारों से सम्बन्ध है, वह कांग्रेसवादी रहे भी, पर उसके कामों में कोई खास दिलचस्पी नहीं लेते थे। अपने पेशे में ही इतने डूबे रहते थे कि उसके लिए उन्हें वक्त नहीं था। हां, एक बात और थी। इसके सिवा, उन्हें यह निश्चय न था कि राजनीतिक और सार्वजनिक कार्यों का क्षेत्र उनके लिए उपयुक्त होगा या नहीं। उस समय तक इन विषयों पर उन्होंने न तो ज़्यादा ध्यान ही दिया था, न कुछ उन्हें इसकी अधिक जानकारी ही थी। वह ऐसे किसी आन्दोलन और संगठन में शामिल होना नहीं चाहते थे, जिसमें उन्हें

किसी दूसरे के इशारे पर नाचना पड़ता हो। यों बचपन और जवानी के शुरू की तेज़ी देखने में कम हो गई थी, पर दरअसल उसने नया रूप ले लिया था। वकालत की ओर उसे लगा देने से उन्हें कामयाबी मिली, जिससे उनका गर्व और अपने पर भरोसा रखने का भाव बढ़ गया। फिर भी विचित्रता यह थी कि एक ओर वह लड़ाई लड़ना, दिक्कतों का मुकाबला करना पसन्द करते थे और दूसरी ओर उन दिनों राजनीतिक क्षेत्र से अपने को बचाए रखते थे। फिर उन दिनों तो कांग्रेस में लड़ाई का मौका भी बहुत कम था। बात दरअसल यह थी कि उस क्षेत्र से उनका परिचय नहीं था और उनका दिमाग़ अपने पेशे की बातों में और उसके लिए बड़ी मेहनत करने में लगा रहता था। उन्होंने सफलता की सीढ़ी पर अपना पैर मज़बूती से जमा लिया था और एक-एक कदम ऊपर चढ़ते जाते थे और यह किसी की मेहरबानी से नहीं, और न किसी की ख़िदमत करके ही, बल्कि ख़ुद अपने दृढ़ संकल्प और बुद्धि के बल पर।

साधारण अर्थ में वह ज़रूर ही राष्ट्रवादी थे। मगर वह अंग्रेज़ों और उनके तौर-तरीके के कद्रदाँन भी थे। उनका यह ख़याल बन गया था कि हमारे देशवासी ही नीचे गिर गए हैं और वे जिस हालत में हैं, बहुत कुछ उसी के लायक भी हैं। जो राजनीतिक लोग बातें ही बातें किया करते हैं, करते-धरते कुछ नहीं। उनसे वह मन ही-मन कुछ नफ़रत-सी करते थे, हालांकि वह यह नहीं जानते थे कि इससे ज्यादा और वे कर ही क्या सकते? हां, एक और ख़याल भी उनके दिमाग़ में था, जो कि उनकी कामयाबी के नशे से पैदा हुआ था। वह यह कि जो राजनीति में पड़े हैं, उनमें ज़्यादातर, सब नहीं, वे लोग हैं, जो अपने जीवन में नाकामयाब हो चुके हैं।

शाम को रोज़ कई मित्र पिताजी से मिलने आया करते। पिताजी आराम से पड़ जाते और उनके बीच दिनभर की थकान मिटाते। उनकी जबर्दस्त हँसी से सारा घर भर जाता था। इलाहाबाद में उनकी हँसी एक मशहूर बात हो गई थी। कभी-कभी मैं परदे की ओट से उनकी और उनके दोस्तों की ओर झांकता और यह जानने की कोशिश करता कि ये बड़े लोग इकट्ठे होकर आपस में क्या-क्या बातें किया करते हैं? मगर जब कभी ऐसा करते हुए मैं पकड़ा जाता तो खींचकर बाहर लाया जाता और सहमा हुआ कुछ देर तक पिताजी की गोदी में बैठाया जाता। एक बार मैंने उन्हें 'क्लेरेट' या कोई दूसरी लाल शराब पीते हुए देखा। 'व्हिसकी' को मैं जानता था। अक्सर पिताजी को और उनके मित्रों को पीते देखा था। मगर इस नई लाल चीज़ को देखकर मैं सहम गया और मां के पास दौड़ा गया और कहा कि "मां, मां, देखो तो, पिताजी ख़ून पी रहे हैं।"

बल और साहस

मैं पिताजी की बहुत इज़्ज़त करता था। मैं उन्हें बल, साहस और होशियारी की मूर्ति समझता था और दूसरों के मुकाबले इन बातों में बहुत ही ऊंचा और बढ़ा-चढ़ा पाता था। मैं अपने दिल में मनसूबे बांधा करता था कि बड़ा होने पर पिताजी की तरह होऊंगा। पर जहां मैं उनकी इज़्ज़त करता था और उन्हें बहुत ही चाहता था, वहां मैं उनसे डरता भी बहुत था। नौकर-चाकरों पर और दूसरों पर बिगड़ते हुए मैंने उन्हें देखा था। उस समय वह बड़े भयंकर मालूम होते थे और मैं मारे डर के कांपने लगता था। नौकरों के साथ उनका जो यह बर्ताव होता था, उससे मेरे मन में उन पर कभी-कभी गुस्सा आ जाया करता। उनका स्वभाव दरअसल भयंकर था, और उनकी उम्र के ढलते दिनों में भी उनका-सा गुस्सा मुझे किसी दूसरे में देखने को नहीं मिला। लेकिन खुशकिस्मती से उनमें हँसी-मज़ाक का माद्दा भी बड़े ज़ोर का था और वह इरादे के बड़े पक्के थे। इससे आमतौर पर अपने-आपको ज़ब्त रख सकते थे। ज्यों-ज्यों उनकी उम्र बढ़ती गई उनकी संयम-शक्ति बढ़ती गई, और फिर शायद ही कभी वह ऐसा भीषण स्वरूप धारण करते थे।

उनकी तेज़ मिज़ाजी की एक घटना मुझे याद है, क्योंकि बचपन ही में मैं उसका शिकार हो गया था। कोई पांच-छः वर्ष की मेरी उम्र रही होगी। एक रोज़ पिताजी की मेज़ पर दो फाउन्टेनपेन पड़े

देखे। मेरा जी ललचाया। मैंने दिल में कहा, पिताजी एक साथ दो पेनों का क्या करेंगे? एक मैंने अपनी जेब में डाल लिया। बाद में बड़े ज़ोरों की तलाश हुई, कि पेन कहां गया? तब तो मैं घबराया। मगर मैंने बताया नहीं। पेन मिल गया और मुझे गुनहगार करार दिया गया। पिताजी बहुत नाराज़ हुए और मेरी ख़ूब मरम्मत की। मैं दर्द व अपमान से अपना-सा मुंह लिए मां की गोद में दौड़ा गया, और कई दिन तक मेरे दर्द करते हुए छोटे-से बदन पर क्रीम और मरहम लगाये गए।

लेकिन मुझे याद नहीं पड़ता कि इस सज़ा के कारण पिताजी को मैंने कोसा हो। मैं समझता हूं, मेरे दिल ने यही कहा होगा कि सज़ा तो मुझे वाजिब ही मिली है, मगर थी ज़रूरत से ज़्यादा। लेकिन पिताजी के लिए मेरे दिल में वैसी ही इज़्ज़त और मुहब्बत बनी रही—हां, अब एक डर और उसमें शामिल हो गया था।

योरोप-यात्रा

पिताजी की योरोप-यात्रा ने कश्मीरी ब्राह्मणों में अन्दर ही अन्दर एक तूफ़ान खड़ा कर दिया। योरोप से लौटने पर उन्होंने किसी किस्म का प्रायश्चित्त करने से इन्कार कर दिया। कुछ साल पहले एक दूसरे कश्मीरी पंडित बिशननारायण दर जो बाद में कांग्रेस के सभापति हुए थे, इंग्लैण्ड गए थे और वहां से बैरिस्टर होकर आये थे। लौटने पर बेचारों ने प्रायश्चित्त भी कर लिया, तो भी पुराने ख़याल के लोगों ने उनको जाति से बाहर कर दिया और उनसे किसी किस्म का ताल्लुक नहीं रखा। इससे बिरादरी में करीब-करीब बराबर के दो टुकड़े हो गए थे। बाद को कई कश्मीरी युवक विलायत पढ़ने गए और लौटकर सुधारक दल में मिल गए, लेकिन उन सबको प्रायश्चित्त करना पड़ता था। यह प्रायश्चित विधि क्या, एक तमाशा होता था, जिसमें किसी तरह की धार्मिकता नहीं थी। उसके मानी सिर्फ़ रस्म अदा करना या एक गिरोह की बात को मान लेना होता था। और दिल्लगी यह कि एक दफ़ा प्रायश्चित्त कर लेने के बाद ये सब लोग हर तरह के नवीन सुधारों के कामों में शरीक होते थे, यहां तक कि अब्राह्मण और अहिन्दू के यहां भी आते-जाते और खाना खाते थे।

पिताजी एक कदम और आगे बढ़े और उन्होंने किसी रस्म या नाममात्र के लिए भी किसी प्रकार का प्रायश्चित्त करने से इन्कार कर दिया। इससे बड़ा तहलका मच गया। ख़ासकर पिताजी की तेज़ी और अक्खड़पन के कारण। आख़िरकार कितने ही कश्मीरी पिताजी के साथ हो गए और एक तीसरा दल बन गया। थोड़े ही साल के अन्दर जैसे-जैसे ख़यालात बदलते गए और पुरानी पाबन्दियां हटती गयीं, ये सब दल एक में मिल गए।

सक्रिय राजनीति में

हिन्दुस्तान की राजनीतिक स्थिति ने पिताजी को अधिक सक्रिय राजनीति की ओर खींच लिया था और मुझे इस बात से खुशी हुई थी, हालांकि मैं उनकी राजनीति से सहमत नहीं था। यह स्वाभाविक ही था कि वह मॉडरेटों में शामिल हुए, क्योंकि उनमें से बहुतों को वह जानते थे और उनमें बहुत से वकालत में उनके साथी थे। उन्होंने अपने सूबे की एक कान्फ्रेंस का सभापतित्व भी किया था, और बंगाल तथा महाराष्ट्र के गरम दलवालों की आलोचना की थी। संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी बन गये थे। १९०७ में जिस समय सूरत में कांग्रेस में गोलमाल होकर वह भंग हुई और अन्त में सोलहों आना मॉडरेटों की हो गई, उस समय वह वहां उपस्थित थे।

सूरत के कुछ ही दिनों बाद एच० डब्ल्यू० नेविन्सन कुछ समय तक इलाहाबाद में पिताजी के अतिथि बनकर रहे। उन्होंने हिन्दुस्तान पर जो किताब लिखी उसमें पिताजी की बाबत लिखा कि "वह मेहमानों की ख़ातिर-तवाज़ो को छोड़कर और सब बातों में मॉडरेट हैं।" उनका यह अन्दाज कतई गलत था, क्योंकि पिताजी अपनी नीति को छोड़कर और किसी बात में कभी मॉडरेट नहीं रहे, और उनकी

प्रकृति ने धीरे-धीरे उनको उस बची-खुची नरमी से भी अलग भगा दिया। प्रचण्ड भावों, प्रबल विचारों, घोर अभिमान और महती इच्छा-शक्ति से सम्पन्न वह मॉडरेटों की जाति से बहुत ही दूर थे। फिर भी १९०७ और १९०८ में और कुछ साल बाद तक वह बेशक मॉडरेटों में मॉडरेट थे, गरमदल के सख़्त खिलाफ़ थे, हालांकि मेरा ख़याल है कि वह तिलक की तारीफ़ करते थे।

ऐसा क्यों था ? कानून और विधि-विधान ही उनके बुनियादी पाये थे, अतः उनके लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह राजनीति को वकील और विधानवादी की दृष्टि से देखते। उनकी स्पष्ट विचारशीलता ने उन्हें यह दिखाया कि कड़े और गरम शब्दों से तब तक कुछ होता-जाता नहीं, जब तक कि इन शब्दों के मुताबिक काम न हो और उन्हें किसी कारगर काम की सम्भावना नज़दीक दिखाई नहीं देती थी। उनको यह मालूम नहीं होता था कि स्वदेशी और बहिष्कार के आन्दोलन हमें बहुत दूर तक ले जा सकेंगे। इसके अलावा उन आन्दोलनों के पीछे वह धार्मिक राष्ट्रीयता थी जो उनकी प्रकृति के प्रतिकूल थी। वह प्राचीन भारत के पुनरुद्धार की आशा नहीं लगाते थे। ऐसी बातों को न तो वह कुछ समझते ही थे, न इनसे उन्हें कोई हमदर्दी ही थी। इसके अलावा बहुत-से पुराने सामाजिक रीति-रिवाज़ों को, जात-पांत वगैरा को, कतई नापसन्द करते थे, और उन्हें उन्नति-विरोधी समझते थे। उनकी दृष्टि पश्चिम की ओर थी और पश्चात्य ढंग की उन्नति की ओर उनका बहुत अधिक आकर्षण था। वह समझते थे कि ऐसी उन्नति हमारे देश में इंगलैंड के संसर्ग से ही आ सकती है। १९०७ में हिन्दुस्तान की राष्ट्रीयता का जो पुनरुत्थान हुआ वह सामाजिक दृष्टि से पीछे घसीटने वाला था। हिन्दुस्तान की नई राष्ट्रीयता, पूर्व के दूसरे देशों की तरह अवश्य ही धार्मिकता को लिए हुए थी। इस दृष्टि से मॉडरेटों का सामाजिक दृष्टिकोण अधिक उन्नतिशील था। परन्तु वे तो चोटी के सिर्फ मुट्ठी भर मनुष्य थे जिनका साधारण जनता से कोई सम्बंध न था। वे समस्याओं पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से अधिक विचार नहीं करते थे, महज़ उस ऊपरी मध्यम-वर्ग के लोगों के दृष्टिकोण से विचार करते थे कि जिनके वे प्रतिनिधि थे और जो अपने विकास के लिए जगह चाहता था। वे जाति के बन्धनों को ढीला करने और उन्नति को रोकने वाले पुराने रिवाज़ों को दूर करने के लिए छोटे-मोटे सामाजिक सुधारों की पैरवी करते थे।

आक्रामक रवैया

मॉडरेटों के साथ अपना भाग्य नत्थी कर पिताजी ने आक्रामक ढंग इख़्तियार किया। बंगाल और पूना के कुछ नेताओं को छोड़कर अधिकांश गरम दल वाले नौजवान थे, और पिताजी को इस बात से बहुत चिढ़ थी कि ये कल के छोकरे अपने मन-माफ़िक काम करने की हिम्मत करते हैं। विरोध से वह अधीर हो जाते थे, विरोध को सहन नहीं कर सकते थे। जिन लोगों को वह बेवक़ूफ़ समझते थे उनको तो फूटी आंख भी नहीं देख सकते थे, और इसलिए वह जब कभी मौका मिलता उन पर टूट पड़ते थे। मेरा ख़याल है कि केम्ब्रिज छोड़ने के बाद मैंने उनका एक लेख पढ़ा था, जो मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ था और मैंने उन्हें एक धृष्टतापूर्ण पत्र लिखा, जिसमें मैंने यह भी झलकाया कि इसमें शक नहीं कि आपकी राजनीतिक कार्रवाइयों से ब्रिटिश सरकार बहुत खुश हुई होगी। यह एक ऐसी बात थी जिसे सुनकर वह आपे से बाहर हो सकते थे, और वह सचमुच बहुत नाराज़ हुए भी। उन्होंने करीब-करीब यहां तक सोच लिया था, कि मुझे फौरन इंगलैंड से वापस बुला लें।

धीरे-धीरे पिताजी कट्टर मॉडरेटों की स्थिति से अलग हटते जा रहे थे। उनकी प्रकृति तो, जो सत्ता हमारी उपेक्षा करती थी और हमारे साथ घृणा का वर्ताव करती थी, उससे ज्यादा दबने और उसी से अपील करने के खिलाफ़ बगावत करती थी और पुराने नरमदल के नेता उन्हें आकर्षित नहीं करते थे। उनकी भाषा और उनके ढंग उन्हें बहुत खटकते थे। मिसेज़ बीसेन्ट की नज़रबन्दी की घटना का उनके ऊपर काफ़ी असर पड़ा, लेकिन आगे कदम रखने से पहले वह अब भी हिचकिचाते थे। अक्सर वह उन

दिनों यह कहा करते थे कि मॉडरेटों के तरीकों से कुछ नहीं हो सकता, लेकिन साथ ही जब तक हिन्दू-मुस्लिम सवाल का हल नहीं मिलता, तब तक दूसरा कोई भी कारगर काम नहीं किया जा सकता । वह वादा करते थे कि अगर इसका हल मिल जाय, तो मैं आपमें से तेज़-से-तेज़ के साथ कदम मिलाकर चलने को तैयार हूं । हमारे ही घर में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग में वह संयुक्त कांग्रेस-लीग योजना बनी जिसे १९१६ में कांग्रेस ने लखनऊ में मंज़ूर किया । इस बात से पिता जी बड़े खुश हुए, क्योंकि इससे सम्मिलित प्रयास का रास्ता खुल गया । उस समय वह मॉडरेट दल के अपने पुराने साथियों से बिगाड़ करके भी हमारे साथ चलने को तैयार थे ।

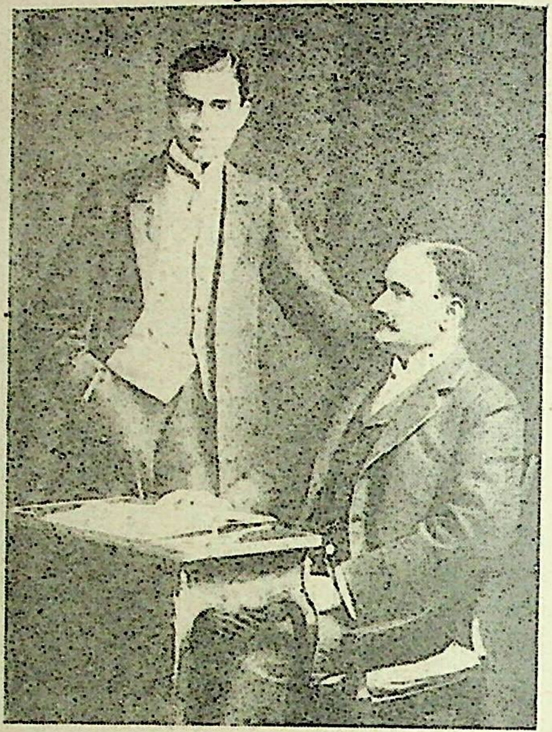
पिता और पुत्र, इंगलैंड में, १९०९

गांधीजी के साथ

उनकी राजनीति में बाह्य परिवर्तन मिसेज़ बीसेन्ट की नज़रबन्दी के वक्तव्य से आया और तब से वह कदम-ब-कदम आगे ही बढ़ते गये और अपने मॉडरेट दोस्तों को पीछे छोड़ते गए । अन्त में १९१९ में पंजाब में जो दुःखान्त काण्ड हुआ, उसने उन्हें हमेशा के लिए अपने पुराने जीवन और अपने पेशे से काट फेंका और उन्होंने गांधीजी के चलाए गए आन्दोलन के साथ अपने भाग्य की बागडोर बांध दी ।

गांधीजी (१९१९ में) पहली बार भारत-व्यापी आन्दोलन के अगुआ बने । उन्होंने सत्याग्रह सभा शुरू की, जिसके मेम्बरों से प्रतिज्ञा कराई गई थी कि वे रौलट कानून तथा दूसरे आपत्तिजनक कानूनों को न मानेंगे । दूसरे शब्दों में उन्हें खुल्लमखुल्ला और जानबूझकर जेल जाने की तैयारी करनी थी ।

जब मैंने अखबारों में यह खबर पढ़ी तो मुझे बड़ा सन्तोष हुआ । आखिर उस उलझन से एक रास्ता मिला तो । वार करने के लिए एक हथियार तो मिला जो सीधा, खुला और बहुत करके राम-बाण था । मेरे उत्साह का पार न रहा और मैं फौरन ही सत्याग्रह सभा में सम्मिलित होना चाहता था । लेकिन मैंने उसके नतीजे पर, कानून तोड़ना, जेल जाना वगैरा पर, शायद ही गौर किया हो और अगर मैंने गौर किया भी होता तो मुझे उनकी परवाह न होती । मगर एकाएक मेरे सारे उत्साह पर पाला पड़ गया और मैंने समझ लिया कि मेरा रास्ता आसान नहीं है, क्योंकि पिताजी इस नए विचार के घोर विरोधी थे । वह नए-नए प्रस्तावों के बहाव में बह जाने वाले न थे । कोई नया कदम आगे बढ़ाने के पहले वह उसके नतीजे को बहुत अच्छी तरह सोच लिया करते थे और जितना ही ज्यादा उन्होंने सत्याग्रह के प्रश्न और उसके प्रोग्राम के बारे में सोचा उतना ही कम उन्हें जंचा । थोड़े से लोगों के जेल जाने से क्या फ़ायदा होगा ? उससे सरकार पर क्या असर होगा और क्या दबाव पड़ेगा । इन आम बातों के अलावा असल बात तो थी, हमारा जाती सवाल । उन्हें यह बात बहुत बेहूदा दिखाई देती थी कि मैं जेल जाऊं । जेल

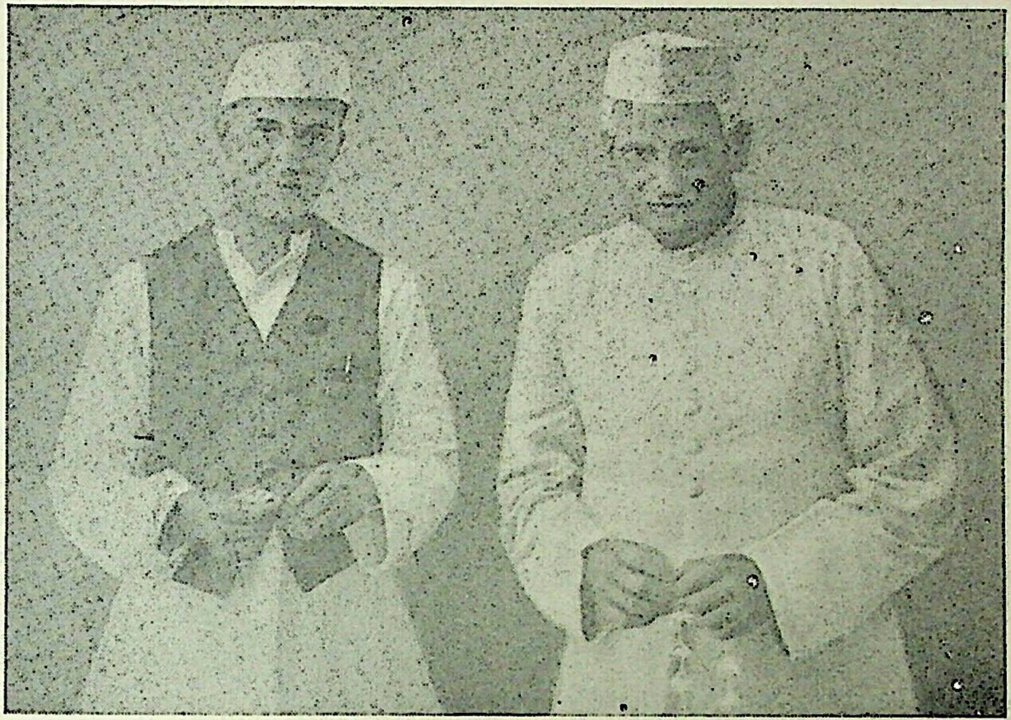

स्वतंत्रता के सैनिक : असहयोग आन्दोलन के दिनों में मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू, लगभग १९२५.

जाने का सिलसिला अभी शुरू नहीं हुआ था पर यह ख़याल ही उनको बहुत नागवार मालूम होता था। पिताजी अपने बच्चों से बहुत ही मुहब्बत रखते थे। यद्यपि वह प्रेम का दिखावा नहीं करते थे, तो भी उनके अन्दर प्रेम बहुत छिपा रहता था।

बहुत दिनों तक मानसिक संघर्ष चलता रहा और चूंकि हम दोनों जानते थे कि यह बड़ी-बड़ी बाजियां लगाने का सवाल है, जिसमें हमारे सारे जीवन में बड़ी उथल-पुथल होने की सम्भावना है, दोनों ने इस बात की कोशिश की कि जहां तक हो सके एक-दूसरे की भावनाओं और बातों का ख़याल रखें। मैं चाहता था कि जहां तक हो सके कोशिश करूं कि उनको तकलीफ न उठानी पड़े। मगर मुझे अपने दिल में यकीन हो गया था कि मुझे जाना तो सत्याग्रह के ही रास्ते है। हम दोनों के लिए वह मुसीबत का समय था और कई रातें मैंने अकेले बड़ी चिन्ता और बेचैनी में काटीं। मैं सोचता रहता कि इसमें से कोई रास्ता निकले। बाद को मुझे मालूम हुआ कि पिताजी रात को सचमुच फर्श पर सोकर खुद यह अनुभव कर लेना चाहते थे कि जेल में मेरी क्या गति होगी, क्योंकि उनके ख़याल में मुझे आगे-पीछे जेल ज़रूर जाना पड़ेगा।

पिताजी ने गांधीजी को बुलाया और वह इलाहाबाद आए। दोनों की बड़ी देर तक बातें होती रहीं। उस समय मैं मौजूद न था। इसका नतीजा यह हुआ कि गांधीजी ने मुझे सलाह दी कि जल्दी न करो और ऐसा काम न करो जो पिताजी को असह्य हो। मुझे इससे दुःख ही हुआ, मगर उसी समय देश में ऐसी घटनाएं घट गईं जिनसे सारी हालात ही बदल गई, और सत्याग्रह सभा ने अपनी कार्रवाई बन्द कर दी।

पंजाब कांड

पंजाब की दुर्घटनाओं और उनकी जांच के कार्य का मेरे पिताजी पर ज़बरदस्त असर हुआ। उनकी तमाम कानूनी और वैधानिक बुनियाद उसके द्वारा हिल गई थी और उनका मन उस परिवर्तन के लिए धीरे-धीरे तैयार हो रहा था जो एक साल बाद आने वाला था। अपनी पुरानी मॉडरेट स्थिति से वह पहले ही बहुत कुछ आगे बढ़ चुके थे। उन दिनों इलाहाबाद से नरम दल का अखबार 'लीडर' निकल रहा था उससे उनको सन्तोष नहीं था और उन्होंने १९१९ में 'इंडिपेण्डेण्ट' नाम का दैनिक पत्र इलाहाबाद से निकाला। यों तो इस अखबार को बड़ी सफलता मिली, लेकिन शुरू से ही उसमें एक बात की कमी रही। उससे सम्बन्ध रखने वाले सभी, क्या डाइरेक्टर, क्या सम्पादक और क्या प्रबन्ध-विभाग के लोगों पर इस कमी की ज़िम्मेदारी आती है। मैं खुद भी एक डाइरेक्टर था, मगर इस काम का मुझे कुछ अनुभव न था और उसके कामों की चिन्ता से मैं दिन-रात परेशान रहता था। मुझे और पिताजी दोनों को जांच के सिलसिले में पंजाब जाना और ठहरना पड़ा था। हमारी लम्बी गैरहाज़िरी में पत्र की हालत बहुत गिर गई और उसकी आर्थिक हालत भी बहुत बिगड़ गई। उस हालत से वह कभी उभर न सका। हालांकि १९२०-२१ में उसकी हालत बीच-बीच में कुछ बेहतर हो जाती थी, लेकिन ज्योंही हम जेल गए उसकी हालत बदतर होने लगी। आखिर १९२३ के शुरू में उसकी ज़िन्दगी खत्म हो गई।

१९१९ के बड़े दिनों में पिताजी अमृतसर कांग्रेस के सभापति हुए। उन्होंने मॉडरेट नेताओं के नाम एक दिल हिला देने वाली अपील की, कि वे अमृतसर के अधिवेशन में शामिल हों। चूंकि फौजी कानून की वजह से एक नई हालत पैदा हो गई थी, उन्होंने लिखा, "पंजाब का आहत हृदय आपको बुला रहा है। क्या आप उसकी पुकार न सुनेंगे!" मगर उन्होंने वैसा जवाब नहीं दिया जैसा कि वह चाहते थे। वे लोग शामिल नहीं हुए। उनकी आंखें उन नए सुधारों की ओर लगी हुई थीं जो मान्टेगू-चेम्सफोर्ड सिफारिशों के फलस्वरूप आने वाले थे। उनके इन्कार कर देने से पिताजी के दिल को बड़ा दुःख पहुंचा और इससे उनके और मॉडरेटों के दिल की खाई और चौड़ी हो गई।

देशबन्धु से मैत्री

पिताजी के मेल-मुलाकातियों की तादाद बहुत बड़ी थी। उनके साथ हँस-बोलकर घुलमिल जाने का उनमें विशेष गुण था। लेकिन वह मित्रता बहुत सोच-विचारकर ही करते थे और ज़िन्दगी के पिछले दिनों में तो वह शंकाशील हो गए थे। लेकिन उनके और देशबन्धु के बीच में तो कोई बाधा न ठहर सकी, और दोनों एक-दूसरे को हृदय से चाहने लगे। मेरे पिताजी देशबन्धु से नौ बरस बड़े थे, फिर भी शारीरिक दृष्टि से वही ज़्यादा ताकतवर और तन्दुरुस्त थे। हालांकि दोनों की कानूनी शिक्षा और वकालत की कामयाबी का पिछला इतिहास एक-सा था, फिर भी दोनों में कई बातों में बड़ा अंतर था। मेरे पिताजी उनसे अधिक व्यावहारिक और रूखे-से थे, उनमें संगठन करने की बहुत बड़ी शक्ति थी और धर्मनिष्ठा का उनमें नामोनिशान न था। वह हमेशा लड़ाके रहे थे, हर वक्त चोट खाने और करने को तैयार। जिन लोगों को वह बेवकूफ़ समझते थे, उनको कतई बरदाश्त नहीं कर सकते थे। अपनी खुशी से तो नहीं ही करते थे। और वह अपना विरोध भी बरदाश्त नहीं कर सकते थे। कोई उनका विरोध करता तो उन्हें वह ऐसी चुनौती मालूम पड़ती कि जिसका पूरी तरह मुकाबला करना ही चाहिए। मालूम होता था कि मेरे पिताजी और देशबन्धु यद्यपि कई बातों में एक-दूसरे से भिन्न थे, फिर भी एक-दूसरे के साथ अच्छा मेल खा गए। एक पार्टी के नेतृत्व के लिए इन दोनों का मेल बहुत ही उम्दा और कारगर साबित हुआ। इनमें हरेक, कुछ हद तक, दूसरे की कमी को पूरा करता था। यहां तक कि दोनों एक-दूसरे से भिन्न थे, फिर भी एक-दूसरे के साथ अच्छा मेल खा गए। एक पार्टी के नेतृत्व के लिए इन दोनों का मेल बहुत ही उम्दा और कारगर साबित हुआ। इनमें हरेक, कुछ हद तक, दूसरे की कमी

को पूरा करता था। यहां तक कि दोनों ने एक-दूसरे को यह अधिकार दे दिया था कि किसी भी किस्म का बयान या ऐलान निकालते वक्त एक-दूसरे का नाम इस्तेमाल कर सकता है। इसके लिए पहले से पूछने या सलाह लेने की कोई ज़रूरत नहीं।

स्वराज्य-पार्टी को मज़बूती के साथ कायम करने में और देश में उसकी ताकत और धाक जमाने में व्यक्तिगत मित्रता का बहुत-कुछ हाथ था। शुरू से ही इस पार्टी में फूट फैलाने वाली प्रवृत्तियां थीं, क्योंकि कौंसिलों के ज़रिए अपनी जाती तरक्की की गुंजाइश होने की वजह से बहुत से अवसरवादी और ओहदों के भूखे लोग उसमें आ घुसे थे। उनमें कुछ असली मॉडरेट भी थे, जिनका झुकाव सरकार के साथ सहयोग करने की तरफ़ ज़्यादा था। चुनाव के बाद ज्योंही ये प्रवृत्तियां सामने आने लगीं, त्योंही पार्टी के नेताओं ने उनकी निन्दा की। मेरे पिताजी ने ऐलान किया कि मैं पार्टी के शरीर से सड़े हुए अंग को काटने में न हिचकूंगा, और उन्होंने अपने इसी ऐलान के अनुसार काम भी किया।

कलकत्ता कांग्रेस

मेरे पिताजी कलकत्ता कांग्रेस का सभापतित्व करने वाले थे। उनका दिल और दिमाग उस वक्त सर्वदल सम्मेलन तथा उसके लिए उन्होंने जो रिपोर्ट तैयार की थी, उससे सराबोर था। वह चाहते थे कि उसे कांग्रेस से पास करा लिया जाय। वह यह जानते थे कि मैं उनकी इस बात से सहमत न था, क्योंकि मैं आज़ादी के प्रश्न पर कोई समझौता करने को राज़ी न था। इस बात से वह नाराज़ भी थे। इसलिए इस पर हम लोगों ने बहुत बहस नहीं की। लेकिन हम दोनों के मन में मानसिक संघर्ष का भाव निश्चित रूप से काम कर रहा था और हम लोग यह जानते थे कि हम एक-दूसरे के खिलाफ़ जा रहे हैं। मतभेद तो हम लोगों में इससे भी पहले अक्सर हुआ करता था, ऐसा भारी मतभेद है कि उसके फलस्वरूप हम अलग-अलग पक्षों में रहते थे, लेकिन मेरा खयाल है कि इससे पहले या इसके बाद भी और किसी मौके पर हम लोगों में इतनी तनातनी नहीं हुई जितनी इस वक्त थी। हम दोनों ही इस बात से कुछ हद तक दुःखी थे। कलकत्ता में तो मामला इस हद तक बढ़ गया था कि पिताजी ने साफ़-साफ़ कह दिया कि अगर कांग्रेस में उनकी बात नहीं चली, यानी अगर कांग्रेस ने सर्वदल-सम्मेलन की रिपोर्ट के पक्ष में जो प्रस्ताव पेश होने वाला था, उसे बहुमत से मंजूर नहीं किया तो वह कांग्रेस के सभापति रहने से इन्कार कर देंगे। यह बिलकुल वाजिब था और विधान की दृष्टि से यह तरीका इख़्तयार करने का उन्हें पूरा हक था।

कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव अंत में जिस रूप में पास हुआ, उसमें सर्वदल-सम्मेलन की रिपोर्ट को मंजूर कर लिया गया, लेकिन उसमें ब्रिटिश सरकार से यह भी कह दिया गया कि अगर उसने एक साल के अंदर इस विधान को मंजूर नहीं किया तो कांग्रेस फिर अपने आज़ादी के ध्येय को ग्रहण कर लेगी। असल में इस प्रस्ताव ने सरकार को एक नम्र चुनौती देकर उसे साल-भर की मियाद दी थी। इसमें कोई शक नहीं कि यह प्रस्ताव हमें आज़ादी के ध्येय से नीचे घसीट लाया था क्योंकि सर्वदल-सम्मेलन की रिपोर्ट ने तो पूरे डोमिनियन स्टेट्स की भी मांग नहीं की थी। फिर भी यह प्रस्ताव इस अर्थ में बुद्धिमत्तापूर्ण था कि उसने एक ऐसे वक्त में कांग्रेस में फूट नहीं होने दी, जबकि कोई भी फूट के लिए तैयार न था और उसने १९३० की लड़ाई के लिए सब कांग्रेसजनों को साथ रखा।

गिरफ्तारी और बीमारी

बम्बई से लौटने पर ३० जून को पिताजी गिरफ्तार कर लिए गए और उनके साथ सैयद महमूद भी पकड़े गए। वे कार्यसमिति के, जो गैर-कानूनी करार दे दी गई थी, स्थानापन्न अध्यक्ष और मन्त्री की हैसियत से गिरफ्तार हुए। दोनों को छः-छः महीने की सज़ा मिली। मेरे पिताजी की गिरफ़्तारी शायद

एक बयान प्रकाशित करने पर हुई थी, जिसमें उन्होंने सैनिकों या पुलिसमैनों को निहत्थी जनता पर गोली चलाने की आज्ञा मिलने की सूरत में उनका क्या कर्त्तव्य है, यह बताया था। यह बयान सिर्फ कानूनी था और उसमें बताया गया था कि मौजूदा ब्रिटिश इंडिया कानून में इस बाबत क्या लिखा है। मगर फिर भी वह भड़काने वाला और खतरनाक समझा गया।

पिताजी जब जेल गए तो उनकी तन्दुरुस्ती निहायत खराब थी और वह जिन हालतों में वहां रखे गए थे उनमें उन्हें बड़ी तकलीफ थी। सरकार ने जान-बूझकर यह स्थिति पैदा नहीं की थी, क्योंकि वह अपनी तरफ़ से उनकी-तकलीफ़ कम करने की भरसक कोशिश करने को तैयार थी, परन्तु नैनी जेल में वह अधिक कुछ नहीं कर सकी। मेरी बैरक की चार छोटी-छोटी कोठरियों में हम चार आदमियों को एक साथ रख दिया गया। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने सुझाया भी कि पिताजी को किसी दूसरी जगह रख दें, जहां उन्हें कुछ ज्यादा अधिकार मिल जाए, लेकिन हम लोगों ने एक साथ रहना ही बेहतर समझा, क्योंकि इससे हम कोई-न-कोई उनकी देखभाल कर सकते थे।

बारिश शुरू ही हुई थी, पर कोठरी के अन्दर की ज़मीन मुश्किल से सूखी रहती थी, क्योंकि छत से पानी जगह-जगह टपकता रहता था। रात के वक्त रोज़ यह सवाल उठता कि पिताजी का बिछौना हमारी कोठरी से सटे उस छोटे से बरामदे में, जो १० फीट लम्बा और ५ फीट चौड़ा था, कहां लगाया जाए, जिससे पानी से बचाव हो सके? कभी-कभी उन्हें बुखार आ जाता था। आखिर जेल अधिकारियों ने हमारी कोठरी से लगा हुआ एक और अच्छा बड़ा बरामदा बनवाना तय किया। बरामदा बन तो गया और उससे ज्यादा आराम भी मिलता, मगर पिताजी को उसका कुछ फ़ायदा न मिला, क्योंकि उसके तैयार होने के बाद शीघ्र ही उन्हें रिहा कर दिया गया। तब हममें से जो लोग वहां पीछे रह गए थे उन्होंने उससे पूरा फायदा उठाया।

जुलाई के अखीर में यह चर्चा बहुत सुनाई दी कि सर तेजबहादुर सप्रू और जयकर साहब इस बात की कोशिश कर रहे हैं कि कांग्रेस और सरकार के बीच सुलह हो जाए। हमने यह ख़बर एक दैनिक पत्र में पढ़ी जो पिताजी को खास तौर पर बतौर रिआयत के दिया जाता था। उसमें हमने वह सारा पत्र-व्यवहार पढ़ा तो वाइसराय लार्ड इर्विन और सर सप्रू तथा जयकर साहब के बीच हुआ था। और बाद में हमें यह भी मालूम हुआ कि हमारे ये 'शान्तिदूत' गांधीजी से भी मिले थे। हमारी समझ में यह नहीं आता था कि आखिर इनको सुलह की इतनी क्यों पड़ी है, या ये इससे क्या नतीजा निकालना चाहते हैं। बाद को हमें मालूम हुआ कि उन्हें इस बात का उत्साह मिला है पिताजी के एक छोटे से बयान से, जो उन्होंने बम्बई में अपनी गिरफ्तारी से कुछ पहले दिया था। वक्तव्य का खर्रा मि० स्लोकाम्ब (लन्दन के 'डेली हेरल्ड' के संवाददाता, जो उन दिनों हिन्दुस्तान में थे) बनाया हुआ था, जो पिताजी से बातचीत करके तैयार किया गया था और जिसे उन्होंने पसन्द भी कर लिया था। इस वक्तव्य में यह बताया गया था कि अगर सरकार कुछ शर्तें मान ले तो सम्भव है कि कांग्रेस सत्याग्रह को वापस ले लेगी।

अन्तिम दिन

पिताजी कलकत्ता थे और उनकी हालत सन्तोषजनक नहीं थी। लेकिन कमला की गिरफ्तारी और सजा का समाचार सुनकर वह बहुत बेचैन हो गए और उन्होंने इलाहाबाद लौटना तय किया। फौरन ही मेरी बहन कृष्णा को उन्होंने इलाहाबाद रवाना किया और खुद घर के और लोगों के साथ कुछ दिन बाद चले। १२ जनवरी को वह मुझसे मिलने नैनी आए। मैंने उन्हें कोई दो मास पहले देखा था, और उन्हें देखकर मेरे दिल को जो धक्का लगा उसे मैं मुश्किल से छिपा सका। उनके चेहरे को देखकर मेरे दिल में जो दहशत बैठ गई उससे वह अनजान मालूम हुए, क्योंकि उन्होंने मुझसे कहा कि कलकत्ता की बनिस्बत

अब तो मैं बहुत अच्छा हूं। उनके चेहरे पर वरम आ गया था और वह शायद यह समझते थे कि यह तो यों ही आ गया है।

उनके उस चेहरे का मुझे रह-रहकर ख़याल आता था। वह किसी तरह उनके चेहरे जैसा न रहा था। अब पहली मर्तबा मेरे दिल में यह डर पैदा हुआ कि उनके लिए खतरा सामने खड़ा है। मैंने हमेशा उनकी कल्पना बल और स्वास्थ्य के साथ-साथ ही की थी और उनके सम्बन्ध में मौत का ख़याल कभी मन में नहीं आता था। मौत के ख़याल पर वह हमेशा हंस दिया करते थे, उसे हँसी में उड़ा दिया करते थे और हमसे कहा करते थे कि मैं तो अभी बहुत दिन जीऊंगा। लेकिन इधर मैं देखता था कि जब कभी उनका जवानी का मित्र मर जाता, तब वह अपने को अकेला-सा, अटपटे साथियों और लोगों में छुट गया-सा और मृत्यु के आने का इशारा-सा होता हुआ अनुभव करते थे। लेकिन आमतौर पर यह भाव आकर चला जाता था और उनकी ओत-प्रोत जीवन-शक्ति अपना ज़ोर जमा लेती थी। हम परिवार के लोग उनके इस बहु-सम्पन्न व्यक्तित्व और उनके सर्वव्यापी उत्साहप्रद स्नेह पाने के लिए इतने अभ्यस्त हो गये थे कि उसके बिना दुनिया की कल्पना करना हमारे लिए कठिन था।

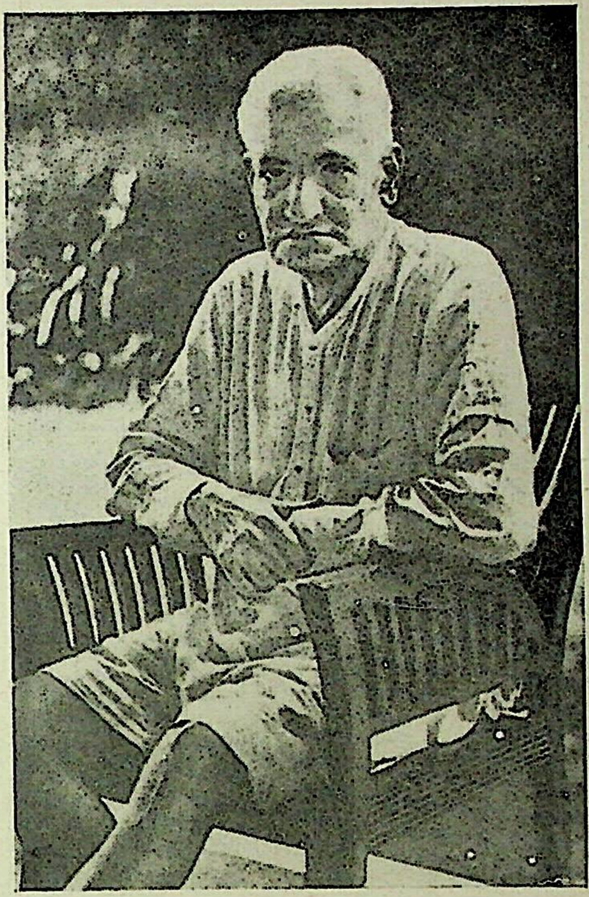

मोतीलाल नेहरू : मृत्यु से कुछ दिन पूर्व

४ फरवरी, १९३१ को उनकी हालत कुछ अच्छी दिखाई पड़ी और इसलिए यह तय किया कि उससे फ़ायदा उठाकर उन्हें लखनऊ ले जाया जाए, जहां कि एक्सरे द्वारा इलाज की सुविधाएं हैं। उसी दिन उन्हें हम मोटर से ले गए। गांधीजी और कुछ लोग भी साथ गए। हम गए तो धीरे-धीरे, लेकिन फिर भी वह बहुत थक गए। दूसरे दिन थकावट दूर होती हुई मालूम हुई, लेकिन फिर भी कुछ चिन्ता-जनक लक्षण दिखाई पड़ते थे। दूसरे दिन सुबह यानी ६ फरवरी को मैं उनके बिछौने के पास बैठा हुआ उन्हें देख रहा था। रात उनकी तक़लीफ़ और बेचैनी में बीती थी। एकाएक मैंने देखा कि उनका चेहरा शान्त हो गया और लड़ने की शक्ति खत्म हो गई। मैंने समझा कि उन्हें नींद लग गई है और इससे मुझे खुशी भी हुई, मगर मां की निगाह तेज़ थी। वह रो पड़ीं। मैंने उनकी तरफ देखा और कहा कि उन्हें नींद लग गई है, वह जग जाएंगे। मगर वह नींद तो उनकी आखिरी नींद थी और उसके बाद फिर जागना नहीं हो सकता था।

मेरी मां

विजयालक्ष्मी पंडित

अपने निकटतम स्नेही व्यक्ति के बारे में अत्यन्त मेधावी और अनासक्त व्यक्ति ही प्रभावशाली ढंग से लिखने की आशा कर सकता है। मैं इन दोनों में से किसी श्रेणी में नहीं आती हूं इसलिए मैं अपनी मां का यथारूप शब्दचित्र नहीं खींच सकूंगी। इतने लम्बे अरसे के बाद, जबकि सोचने-विचारने के तरीके बहुत बदल चुके हैं, उस गुज़रे ज़माने की यादगारों को फिर ताज़ा करना कैसे सम्भव है! अपने दिमाग़ के कोनों में छिपी हुई उन छोटी-मोटी घटनाओं को खोज निकालना, जिनसे सही और पूरी तस्वीर बन सके, बहुत मुश्किल काम है। यह कैसे हो, मैं नहीं जानती, फिर भी कोशिश कर रही हूं।

बचपन की यादगारें

बचपन की एक यादगार मां के साथ बिस्तर में लेटे हुए उनसे एक मज़ेदार कहानी सुनने की है। घर में आमतौर पर ऐसा मौका नहीं मिलता था। उस दिन खुशकिस्मती मे मेरी अंग्रेज़ आया कहीं बाहर गई हुई थी और मैंने उसकी गैरहाज़िरी का फ़ायदा उठाया।

यह घटना इलाहाबाद की जाड़े की एक रात की है। बाहर तेज़ हवा चल रही थी। कमरा बड़ा था और उस समय के मुताबिक दीवारों पर रवि वर्मा के चित्र टंगे हुए थे। मां की बांहों में लिपटी हुई मैं दमयन्ती और उसके हंस, वन में राम-लक्ष्मण के साथ सीता और बच्ची शकुन्तला को गोद में लेकर विनती करती हुई मेनका को झिड़कने वाले विश्वामित्र को देख सकती थी। ये कहानियां सभी जानते हैं और बराबर दुहराई जाने पर भी ये पुरानी नहीं पड़तीं। इन सभी में एक नैतिक शिक्षा और एक प्रार्थना रहती है; नैतिक शिक्षा यह कि औरत पति के लिए ही जीती है; प्रार्थना वही सीधी-सादी, जिसे सभी बच्चे जानते हैं। मैं इन नैतिक शिक्षा को हृदयंगम नहीं कर पाती थी, पर उसे सुनने की आदी थी और अगर यह न सुनाई जाती तो मुझे कुछ अभाव अनुभव होता। मेरी मां के ध्यान में शायद यह बात नहीं आती थी कि एक छोटी-सी बच्ची के लिए ये सब बातें बेकार-सी हैं, क्योंकि वे उस पीढ़ी व वर्ग की थीं जिसमें औरत का अस्तित्व ही इस विचारधारा पर आधारित था। वे खुद उसकी एक जीती-जागती मिसाल थीं।

मां की शादी १४ वर्ष की उम्र में हो गई थी। उन्हें विवाहित जीवन की ज़िम्मेदारियां उठाने के के लिए कोई शिक्षा नहीं मिली थी। उनका पालन-पोषण पुराने तौर-तरीके से हुआ था। उनका परिवार एकदम निरामिषभोजी था, जैसा कश्मीरियों में मुश्किल से होता है। उन्हें अंग्रेज़ी की बिलकुल जानकारी नहीं थी। अपनी मातृभाषा में भी उनकी पढ़ाई बहुत मामूली हुई थी, किन्तु वे उर्दू बहुत साफ-सुथरे व मंजे हुए लहजे में बोल लेती थीं और फ़ारसी के शेर व संस्कृत के सुभाषित भी सुनाया करती थीं। मैंने उनको ऐसी बेगानी जगहों पर देखा है, जहां वे परेशानी महसूस कर सकती थीं, पर उनकी बोली-बानी से कभी ऐसा प्रकट नहीं हुआ कि उन्हें कोई परेशानी हो रही है। उन्हें शिष्टाचार के नियमों की इतनी कड़ाई से शिक्षा दी गई थी कि उनसे शायद ही कभी भूल-चूक हुई हो।

अवसर के अनुकूल चलने की क्षमता

हमारे घर के तौर-तरीके ऐसे थे, जो अवसर मां को पसन्द नहीं आते थे। पिताजी के विचार और रहन-सहन के तरीकों से मां को ज़रूर ही भारी परेशानी होती होगी। पिताजी ऐसे व्यक्ति थे, जैसा

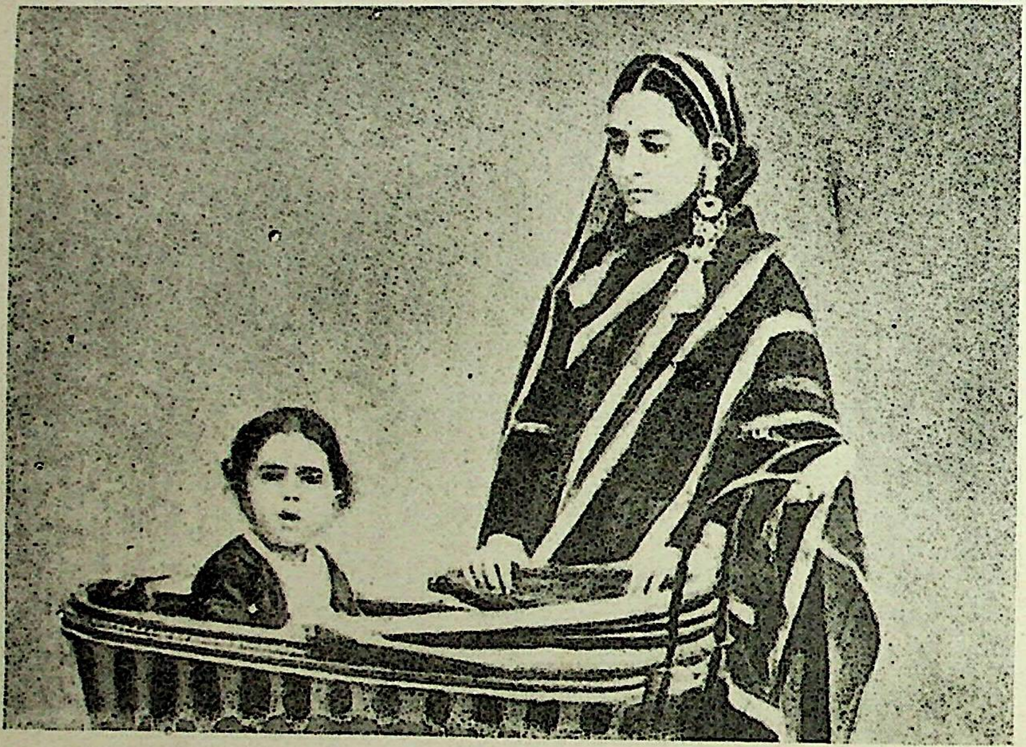

स्वरूपरानी नेहरू, पुत्र के साथ, १८९१

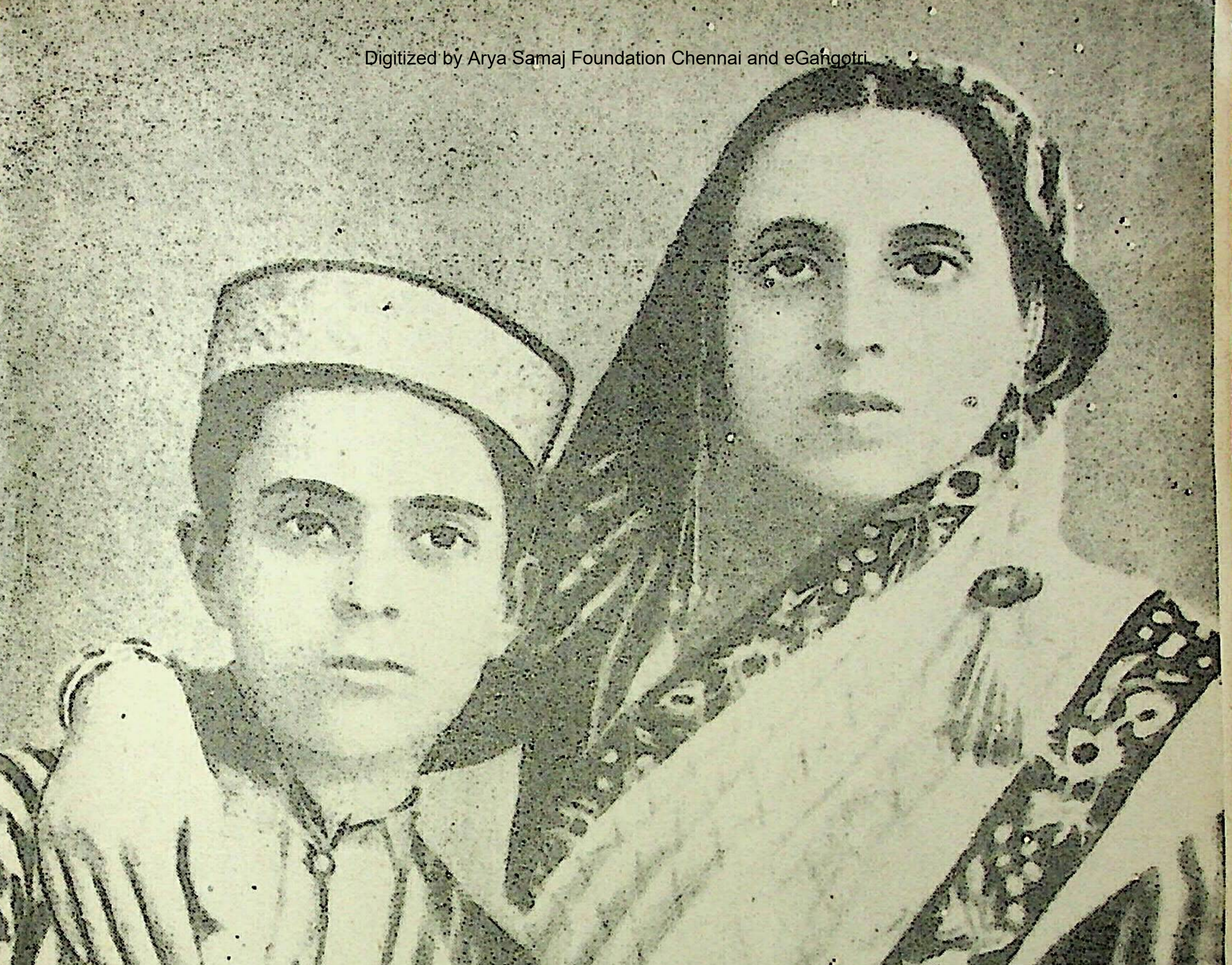

स्वरूपरानी नेहरू और पुत्र, १८९७

कि हर बड़ा आदमी होता है, जिनके साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलना आसान काम नहीं था। पर मां की बराबर यही कोशिश रहती थी कि वे जहां तक हो सके पिताजी की मर्ज़ी के मुताबिक अपने को ढाल लें और वे शायद ही कभी घर को चलाने के बारे में पिताजी की पसन्द के तौर-तरीकों का विरोध करती थी।

अकेले लड़के को अपने से अलग करके हज़ारों मील दूर पढ़ने के लिए भेजना भारी तक़लीफ़देह बात थी। भारतीय स्त्री सबसे ज़्यादा अपने लड़के को चाहती है और लड़का जब बरसों के लिए दूर चला जाता है तो जब तक वह लौटता नहीं मां की ज़िन्दगी बेकार-सी हो जाती है। मां ने पिताजी के इस या अन्य किसी फ़ैसले पर कभी एतराज नहीं किया। घर में लड़कियों को जितनी आज़ादी दी गई थी, वह मां को पसन्द न थी, पर इसका भी मां ने विरोध नहीं किया। यहां तक कि खाने-पहनने के मामले में भी वे हमेशा पिताजी की मर्जी के मुताबिक चलने की कोशिश करती थीं। जब सारा परिवार भाई को हैरो पहुंचाने के लिए इंगलैण्ड गया तो पिताजी ने मां के बाल पश्चिमी तरीके से कटवा दिए। उस समय बम्बई की पढ़ी-लिखी पारसी महिलाओं में ही इसका फैशन था, पर उत्तरी भारत में इस फैशन का चलन नहीं था। यहां हम लोग ज़्यादातर पुराने तौर-तरीकों को ही पसन्द करते थे। हर औरत समझती है कि उसकी खूबसूरती किस ढंग से बनती या बिगड़ती है, इसलिए मैं नहीं समझती कि मां ने पश्चिमी तरीके के बाल अपनी मर्जी से रखाये होंगे। पर पति के फ़ैसले को मानना मां के लिए नाश्ते के साथ चाय पीने की तरह सामान्य बात थी, मां ने इसे खुशी-खुशी किया। मैं जब बड़ी हुई तो अक्सर खीजकर कहती थी, "माताजी, आप ज़ुल्म क्यों सहती हैं? आप खम ठोककर कह क्यों नहीं देतीं कि मुझे यह पसन्द है और मैं ऐसा ही करूंगी।" उनका जवाब यही होता था, "प्यारी बच्ची, मैं वही करती हूं जो तुम्हारे पिताजी को पसन्द होता है। उनकी पसन्द वे जानें।"

हमारा खानदान बहुत बड़ा था और वे सब बच्चों से बराबर मुहब्बत करती थीं। घर की मालकिन के रूप में उनका व्यवहार सबसे समझदारी का होता था। खानदान के बहुत सारे बच्चों के जन्मदिन पर मनाए जाने वाले जलसों और हिन्दू त्यौहारों का इन्तज़ाम करने में उन्हें सबसे ज़्यादा खुशी होती थी। वे इसका पूरा खयाल रखती थीं कि सबको हिस्सा पूरी तरह मिल जाय और किसी को कोई तक़लीफ़ न होने पाए। वे अपने से हमेशा बेखबर रहती थीं। और उन्हें यह सुनकर सचमुच भारी अचरज होता था कि वे बहुत सुन्दर हैं और उन्हें इतने सादे कपड़े नहीं पहनने चाहिए। इस पर वे गम्भीरता से जवाब देती थीं, "क्या बेकार की बातें करती हो, मैं बूढ़ी हो रही हूं और मुझे अपनी उमर के हिसाब से कपड़े पहनने चाहिएं।" यह बात उस समय की है जब वे ४० साल की थीं। पश्चिमी बहनों के मुकाबले भारतीय स्त्रियों पर उमर का असर बहुत जल्दी पड़ने लगता है। पर, मां सचमुच बहुत ज़्यादा खूबसूरत थीं। उनके सब अंग हाथीदांत से ढले लगते थे। उनकी हिरनी जैसी आंखें बहुत प्यारी लगती थीं उनके छोटे-छोटे हाथ-पैर बड़े नाज़ुक लगते थे और काले चमकीले बाल कमर के नीचे तक लहराते थे। हमें उनके बालों में कंघी करना व उनसे खेलना बहुत भाता था। बदकिस्मती से हमारे पास मां की कोई ऐसी तसवीर नहीं है, जिससे उनका पूरा रूप सामने आ जाए।

आज़ादी की लड़ाई

मां का असली रूप राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में सामने आया। शुरू में वे गांधीजी के बारे में बहुत शंकालु थीं। वे उनको अपने घर का ज़बर्दस्त दुश्मन समझती थीं। जब पुत्र ने अपना वकालत और रहन-सहन का सामान्य तरीका छोड़ दिया तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। पति के आन्दोलन में शामिल होने पर, घर की कायापलट हो जाने पर तो उन्हें और भी ज़्यादा तकलीफ हुई। शादी के बाद से उनके घर में बराबर रईसी व शानशौकत बढ़ती गई थी, और उनका ख़याल था कि यह क्रम बराबर बना रहेगा।

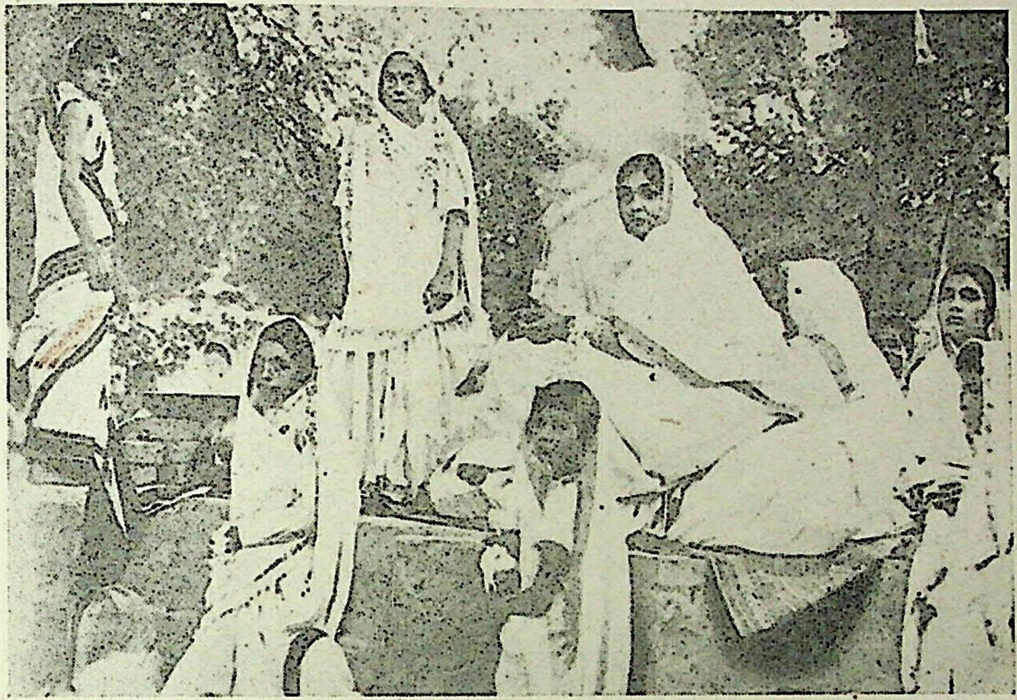

सविनय अवज्ञा—नमक कानून तोड़ते समय स्वरूपरानी और कमला नेहरू (बायीं ओर)

इसलिए इन परिवर्तनों के कारणों को समझना या उनको स्वीकार करना आसान काम न था। भारतीय स्त्री को जिस कड़े अनुशासन में रहने का अभ्यास होता है, उसने उनको अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल ढालने में बहुत मदद दी और उन्होंने यह कार्य बड़ी खूबसूरती से किया। अब उन तौर-तरीकों की नकल करने की ज़रूरत नहीं थी, जिन्हें वे पसन्द न करती थीं। वे अब अपनी इच्छानुसार जीवन बिता सकती थीं और इस रूप में उन्होंने परिवार और देश की बहुत बड़ी सेवा की। गांधीजी की तरफ से जब मां का भय दूर हो गया तो वे उनकी तरफ़ तेज़ी से खिचीं। उनका दृष्टिकोण अब उन्हें बहुत सार्थक प्रतीत होता था। अब उन्हें अपने व्रत उपवासों, मन्दिर जाने और ग्रह-नक्षत्रों में विश्वास करने पर शर्मिन्दा होने की ज़रूरत नहीं थी। अब वे अपनी नई ज़िन्दगी को हिन्दू-संस्कृति की ठोस बुनियाद पर ढाल सकती थीं और उन्होंने नए घर को पुराने घर से कहीं अधिक अच्छा बना दिया, जिसमें परस्पर विरोधी मान्यताओं की खींचतान रहती थी।

मां की इच्छा आज़ादी की लड़ाई के हर कामों में हिस्सा लेने की थी, पर जब पिताजी व गांधीजी ने उन्हें विदेशी कपड़ों व शराब की दूकानों पर धरना देने अथवा अपने को गिरफ्तार करवाने से रोक दिया, तो उन्हें भारी निराशा हुई : पर वे कभी-कभी कांग्रेस के जुलूसों में हठ करके शामिल होती थीं। वे कांग्रेस की सभाओं में न केवल शामिल होने लगीं, बल्कि जल्दी ही ज़ोरदार व पुरअसर भाषण भी करने लगीं, जिससे सभी को अचरज हुआ। जेल यात्रा के कार्यक्रम से उन्हें भारी आघात पहुंचा और शुरू में पिताजी व भाई के जेल जाने से उन्हें भारी दुःख हुआ। बाद में इस दुःख को भी सहन करना उन्होंने सीख लिया। पर जब कभी परिवार का कोई सदस्य जेल जाता तो उन्हें बड़ी तक़लीफ़ होती थी। मां बहुत भली थीं; वे किसी के बारे में बुराई की बात नहीं सोचती थीं, यहां तक कि १९३४ में पुलिस के एक पाशविक लाठीचार्ज के बाद खून से लथपथ व बेहोश हालत में जब उन्हें उठाकर लाया

गया तो बाद में होश में आने पर उन्होंने कहा, "कितने दुःख की बात है कि हम अभी पुलिसवालों के दिल में अपनी जगह नहीं बना पाए हैं।" १९३३ में कांग्रेस अधिवेशन में, जिस पर रोक लगा दी गई थी, भाग लेने के लिए वे कलकत्ता गईं। वहां उन्हें पंडित मदनमोहन मालवीय व अन्य लोगों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। दिन-प्रतिदिन उनका व्यक्तित्व शालीन होता गया और वे आज़ादी की लड़ाई में अधिकाधिक घुलती-मिलती गईं।

पति की मृत्यु

पिताजी की मृत्यु मां पर भाग्य का क्रूर प्रहार था, क्योंकि पिताजी की लम्बी बीमारी के बीच उन्होंने कभी यह नहीं माना था कि उनका अन्त नज़दीक आ गया है। वे इसकी कल्पना कैसे कर सकती थीं कि उनके महान व शक्तिशाली पति, जिन्होंने हमेशा विजय पाई है, इस बार हार जाएंगे? और जब हम सब दिल में भय और आंखों में आंसू भरे हुए पिताजी पर मौत का साया गहरा होते हुए देख रहे थे, मां शान्ति से प्रार्थना करती रहती थीं कि उनका कोई अनिष्ट न होने पाए। और जिस समय हम सब दुःख से अधीर होकर संज्ञाशून्य हो रहे थे, उस समय वे एक सिंहनी की भांति खड़ी हो गई थीं। वे एक सिंह पुरुष की धर्मपत्नी थी और उनका यह आचरण उनके सर्वथा अनुकूल था। वे गांधीजी के साथ श्मशान तक गईं। हम लोगों में आमतौर से ऐसा रिवाज़ नहीं है। वे शान्त थीं, आंखों में आंसू नहीं थे और जब पति का शव चन्दन की चिता पर रख दिया गया तो उन्होंने उसकी तीन परिक्रमाएं कर अपने दिवगंत प्रियतम को श्रद्धा से प्रणाम किया और गांधीजी के पास अपने स्थान पर लौट आईं। भारतीय महिलाएं इसी तरह फौलाद की बनी होती हैं।

बाद के वर्षों में मां की तन्दुरुस्ती बिगड़ती गई, पर वे स्वाधीनता आन्दोलन में बराबर काम करती रहीं। दूर जर्मनी में बहू की मृत्यु से उन्हें गहरा धक्का पहुंचा। उन्होंने महसूस किया कि उन्हें अब जीने का कोई अधिकार नहीं। उन्होंने कहा, जब मेरा प्यारा बेटा बेसहारा व बेघर हो गया तो मेरे जीने का क्या फायदा? उनकी ज़िन्दगी में अकेलापन बढ़ता गया। फिर भी वे जीती रहीं।

उनकी मृत्यु अकस्मात् और करुणाजनक ढंग से हुई। मैं कुछ दिनों के लिए आनन्द भवन आई थी। खुशकिस्मती से उस समय परिवार के सभी सदस्य वहां इकट्ठे थे। ऐसा बहुत ही कम होता था। मैं रात की गाड़ी से लखनऊ रवाना होने वाली थी। सब लोग मेरे कमरे में जमा थे। मैं विदाई लेने के लिए मां के सामने झुकी और जैसे ही उन्होंने मुझे छाती से लगाने के लिए बांहें बढ़ाईं, वे बेहोश होकर गिर पड़ीं। इसके कुछ घण्टे बाद उन्होंने सदा के लिए आंखें मूंद लीं।

दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जिन्हें अपनी पिछली ज़िन्दगी पर नज़र डालते हुए दुःख नहीं होता। मुझे यह सोचकर भारी पछतावा होता है कि मैंने ऐसी बहुत-सी बातें नहीं कीं, जिनके करने से मां को बहुत ज्यादा खुशी होती और उनकी आशा पूरी होती। मैं समझती हूं कि मेरे भाई और मेरी बहन भी ऐसा ही सोचते होंगे। पर अब समय गुज़र चुका है और इसके लिए खेद प्रकट करने से भी कोई फायदा नहीं। मैं अपने ये विचार अपनी मां के चरणों पर—उन छोटे चरणों पर—जो कड़े-से-कड़े मार्ग पर भी चलने में कभी लड़खड़ाए नहीं, हृदय के सम्पूर्ण स्नेह के साथ अर्पित करती हूं।

→
बेटी के विवाह के समय, विजयलक्ष्मी और पंडित रणजीत के साथ

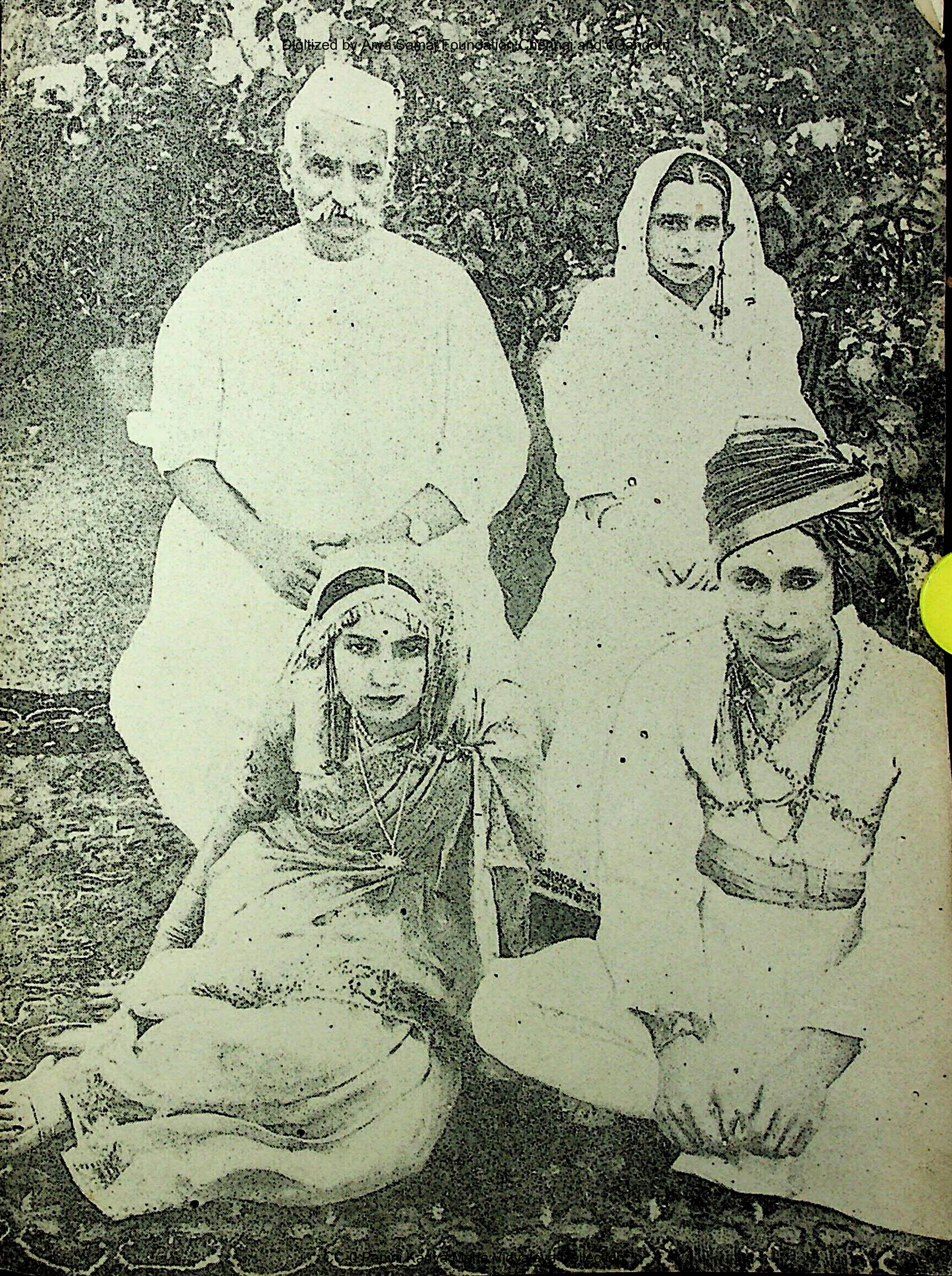

मां का प

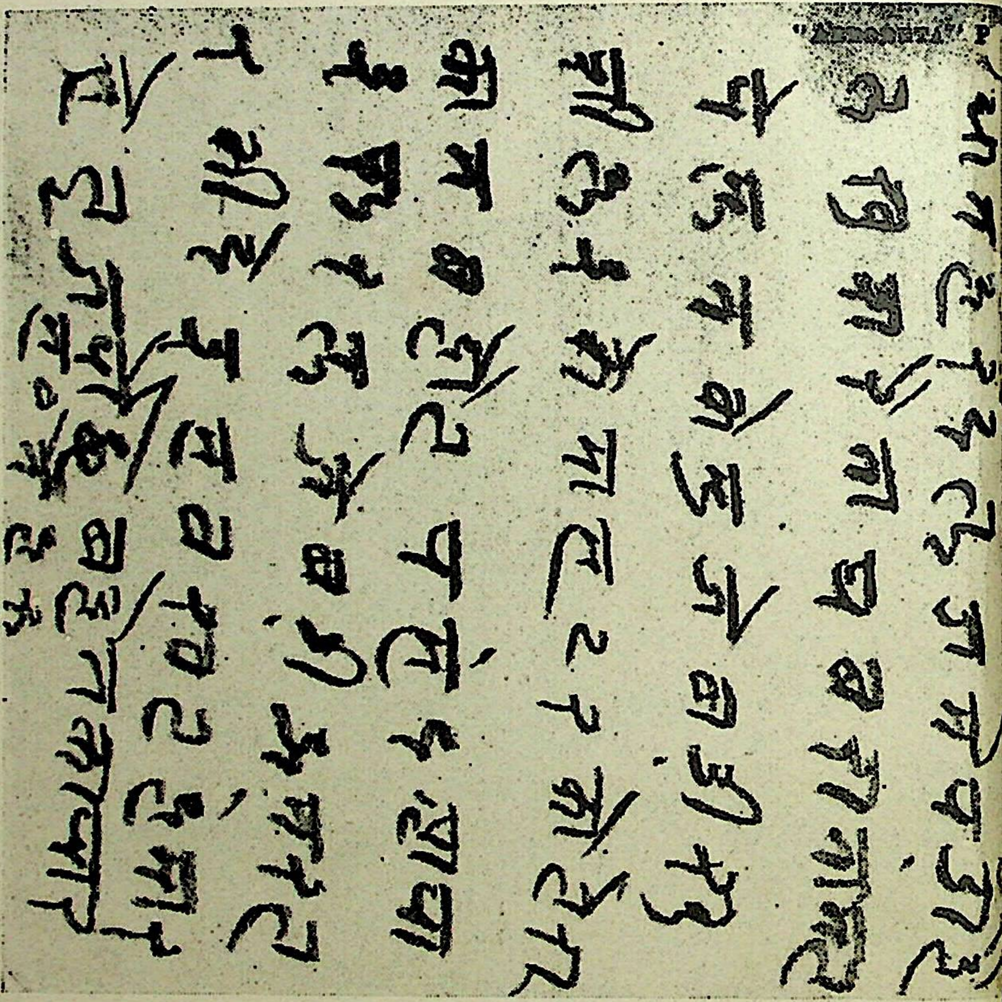

—बेटे के नाम

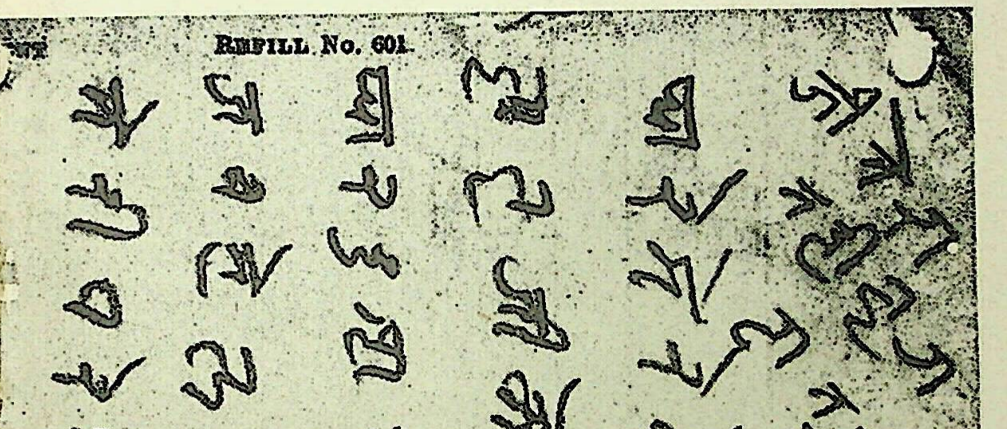

REFILL No. 601

[illegible]

प्यारे से ने बेटे जवाहर

[illegible] याद बहोत [illegible]

प्यार दुआ के [illegible]

जब से [illegible]

मेरी परेशान रेती है

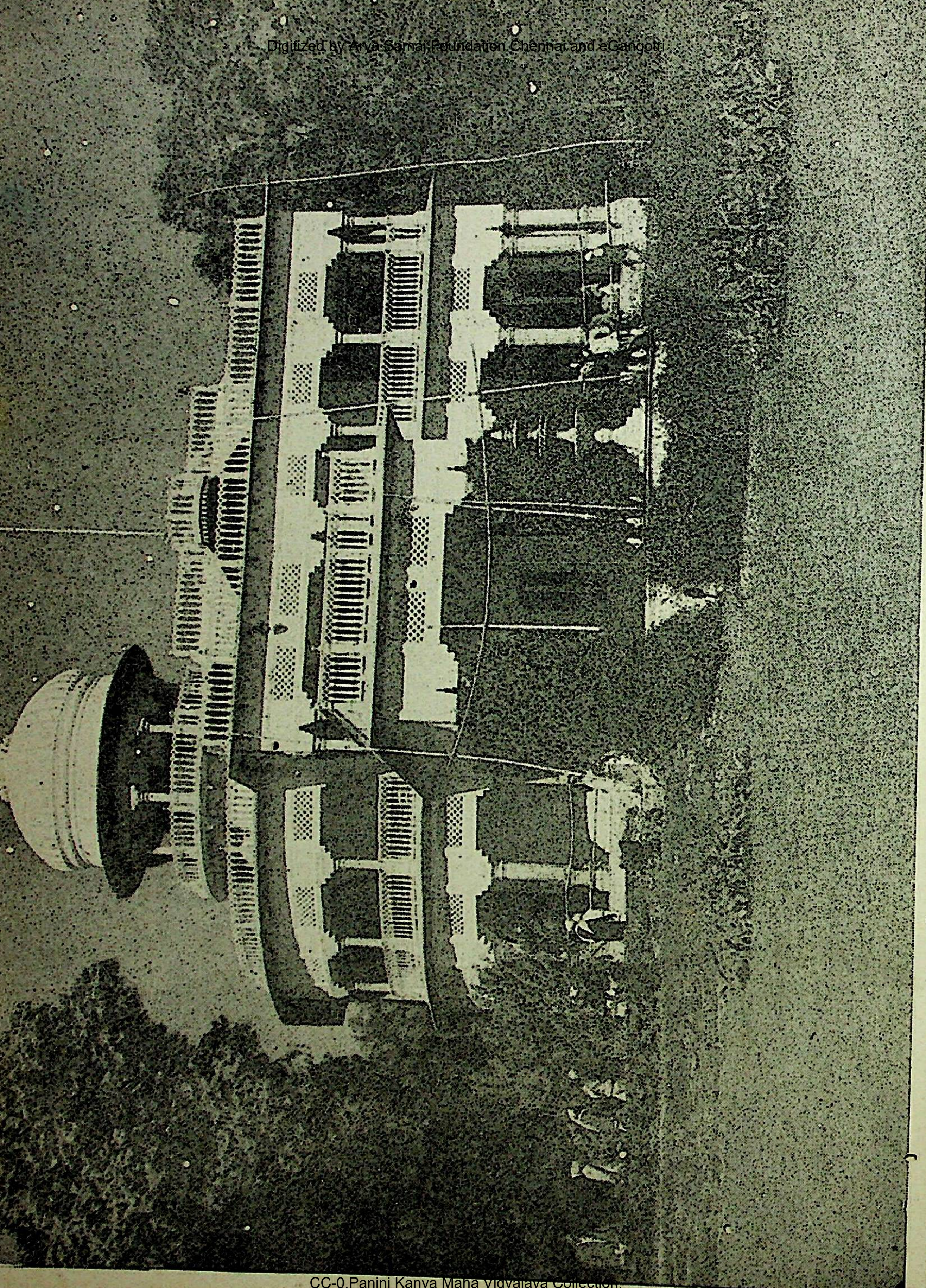

स्वराज्य भवन की कहानी

इन्दिरा गान्धी

पुराने बड़े शानदार पेड़ों की डालों के पीछे छिपा हुआ एक विशाल भवन है, जो अब बच्चों की किलकारियों से गूंजता रहता है। अगर दीवारें बोल सकतीं, तो वे कितनी दिलचस्प कहानियां कहतीं ?

इलाहाबाद अथवा प्रयागराज हमेशा से एक उनींदा-सा, छोटा-सा नगर नहीं था। कभी वह संयुक्त प्रदेश की राजधानी था। और यह भवन भी हमेशा इस तरह चुपचाप ज़िन्दगी नहीं गुज़ारता था। एक समय था, जब इसने आज़ादी की लड़ाई में बहुत बड़ा हिस्सा लिया, जब पूरे देश की आंखें इसमें आने-जाने वालों पर लगी रहती थीं। भारत की जनता इसकी ओर आशापूर्ण दृष्टि से तथा तत्कालीन सरकार रोष व विश्वास की दृष्टि से इसको देखती थी, क्योंकि यहां ऐतिहासिक फ़ैसले लिये जाते थे।

आनन्द भवन

जहां तक हमारी जानकारी है, शुरू में यह मकान श्री जस्टिस महमूद का था। उन्होंने इसे शाहजहांपुर के जज, मुरादाबाद के राजा परमानन्द के हाथ बेच दिया, जिनसे मेरे पितामह पंडित मोतीलाल नेहरू ने १९०० में इसे खरीदा। यह एक खुबसूरत और बड़ा मकान था। इसके बीच में एक बड़ा आंगन था और चारों तरफ लम्बा-चौड़ा मकान था। मेरे पितामह ने इसका नाम 'आनन्द भवन' रखा। जब मेरा परिवार इसमें आया, मेरे पिताजी १० वर्ष के हो चुके थे, पर उनकी बहनों (अब श्रीमती पंडित और श्रीमती हठीसींग) तथा मेरा जन्म इसी में हुआ। मेरे पितामह ने इसमें कई रद्दोबदल किए। अपनी ठाट-बाट की ज़िन्दगी और दिल खोलकर की जाने वाली मेहमान-नवाज़ी के लायक बनाने के लिए उन्होंने इसे बढ़ाया और नये ढंग से सजाया। उन्होंने तैरने के लिए एक तालाब बनवाया और बहुत बाद में, जब मेरे माता-पिता की शादी हुई, दूसरी मंजिल पर उनके रहने के लिए कमरे बनवाए। जहां इस मकान में बड़ी तादाद में मेहमानों को खिलाया-पिलाया और ठहराया जा सकता था, वहीं यह बच्चों को भी बहुत पसन्द था, क्योंकि इसमें खेलने और लुकाछिपी के लिए काफी जगह थी। चाहे खुशहाली के दिन रहे हों और चाहे मुश्किलों के दिन, घर के इंतजाम पर मेरे पितामह हमेशा बड़ी कड़ी नज़र रखते थे। उनके तेज़ मिजाज़ की वजह से सब पर उनका दबदबा रहता था। पर वह बड़ी ज़ल्दी सबको माफ कर देते थे। साथ ही दिल खोलकर हंसते थे, जिससे उनकी कठोरता कोमलता में बदल जाती थी। उनका अनुशासन बड़ा कड़ा था, पर अपने घर वालों के लिए उनके दिल में मुहब्बत का दरिया बहता था। वह बड़े ही ज़िंदादिल आदमी थे।

सी० एफ० एन्ड्रूज़ ने, जो मेरे पितामह के गहरे दोस्त थे, आनन्द भवन की पुरानी यादगार का बड़े चाव से वर्णन करते हुए लिखा है, "मैं पंडित मोतीलाल नेहरू से पहली बार आज से ३० साल पहले आनन्द भवन में मिला था। स्काटलैंड की पहाड़ियों पर जिस प्रकार एक कबीले के सभी लोग एक वंशानुगत मकान में रहते हैं, उसी प्रकार सारा नेहरू-परिवार आनन्द भवन में रहता था। संयुक्त परिवार में सभी निकट सम्बंधी मिल-जुलकर रहते हैं, यहां तक कि घर के जो नौकर-चाकर वहां पलते हैं, वे भी अपने को परिवार का अंग समझने लगते हैं। प्रमुख परिवारों के लोग एक-दूसरे से प्रायः, विशेषकर शादी-ब्याह के अवसर पर मिला करते थे। शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने के कारण मैं शीघ्र ही इलाहाबाद तथा

← नया आनन्द भवन

आनन्द भवन के सम्पर्क में आ गया।" वह आगे लिखते हैं, "आनन्द भवन इंगलैंड के देहात में किसी बड़े श्रीमंत के शाही मकान की तरह है।"

ऐतिहासिक सम्बन्ध

यह मकान ऐतिहासिक स्मृतियों से भरा पड़ा है और इसका सम्बन्ध देश की आज़ादी के लिए चलाए गए कई आन्दोलनों से रहा है। कांग्रेस-लीग की संयुक्त कमेटी की बैठक १९१६ में आनन्द भवन में ही हुई। इससे मेरे पितामह को बड़ी खुशी हुई। वह उन दिनों कहा करते थे कि नरम दल का काम करने का तरीका ठीक नहीं है, लेकिन जब तक हिन्दू-मुस्लिम समस्या का कोई हल नहीं निकल आता, तब तक कोई प्रभावशाली कदम नहीं उठाया जा सकता। कांग्रेस-लीग संयुक्त योजना से गरम दल और नरम दल के नेताओं के संयुक्त प्रयास का रास्ता खुल गया। मेरे पितामह अपने पुराने मॉडरेट साथियों को छोड़कर भी इस रास्ते पर आगे बढ़ने को तैयार थे।

आनन्द भवन का असहयोग-आन्दोलन के दिनों से गहरा सम्बन्ध है। यहीं पर १९२० में महात्मा गांधी ने असहयोग-आन्दोलन की पहली नींव डाली, जो उस समय यहां ठहरे थे। उन्होंने आनन्द भवन के मैदान में इस विषय में कई भाषण दिए। उसके बाद के वर्षों में वर्किंग कमेटी की अनेक बैठकें यहीं हुईं। आनन्द भवन की मेरी सबसे पहली याद अनेक रंग-बिरंगे कीमती कपड़ों की है, जो बरामदे में और बाहर सहन में बिखरे थे। ये सब हमारे विदेशी कपड़े थे, जिन्हें नगर में जलाई जाने वाली बड़ी भारी होली में डाला जाने वाला था। उसके बाद से पूरा परिवार खादी पहनने लगा।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय मेरे पिता और पितामह ६ दिसम्बर १९२१ को गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें ६-६ महीने कैद की सज़ा मिली। उस समय मैं चार साल की थी और अदालत का यह मेरा पहला तजर्बा था। मैं कटघरे में अपने पितामह की गोद में बैठी रहती थी। उनकी गिरफ्तारी के बाद, पुलिस बार-बार आनन्द भवन आने लगी। वे मेरे पितामह और पिताजी और बाद में परिवार के अन्य सदस्यों पर किये गए जुर्माने वसूल करने आती थी। मेरे पिताजी ने लिखा है, "कांग्रेस की नीति जुर्माना न अदा करने की थी, इसलिए पुलिस रोज़-ब-रोज़ आती थी और फर्नीचर वगैरह कुर्क कर ले जाती थी।" पुलिस कालीनें, चांदी का सामान, कार आदि अन्य सब चीज़ें भी ले गई, जिनकी कीमत जुर्माना की रकमों से कहीं ज़्यादा थी। यह रोज़मर्रा की लूटपाट बहुत खिझाने वाली थी और मेरे जैसी तेज़ मिज़ाज वाली बच्ची के लिए यह सब चुपचाप देखना बर्दाश्त के बाहर की बात थी। मैंने पुलिस से इसका सख्त विरोध किया और हर तरीके से उसके किए पर अपनी सख्त नाराज़गी ज़ाहिर की। एक बार तो मैंने एक पुलिस अफसर का अंगूठा मक्खन लगाने के चाकू से करीब-करीब काट डाला।

१९२२ में चौरी-चौरा काण्ड के बाद महात्मा गांधी द्वारा अकस्मात् सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिए जाने से उनके निकट सहयोगियों को भारी धक्का लगा और वे चकित रह गए। इसके कारण देश में सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के बारे में जनता की राय जानने और आन्दोलन फिर से शुरू करने के तरीके सुझाने के लिए सत्याग्रह जांच समिति नियुक्त की गई। इस कमेटी की आखिरी बैठकें आनन्द भवन में हुईं और कमेटी की रिपोर्ट भी यहीं तैयार की गई। बाद में इसी रिपोर्ट ने कौंसिल-प्रवेश का रास्ता तैयार किया। इस प्रकार एक प्रकार से स्वराज्य पार्टी का जन्म यहीं हुआ और मेरे पितामह ने १९२३ में अपना विख्यात चुनाव घोषणापत्र यहीं से प्रकाशित किया। घोषणापत्र में कहा गया था कि अगर औपनिवेशिक स्वराज्य तुरन्त नहीं दिया गया तो स्वराज्य-पार्टी "हर जगह व बराबर अड़ंगेबाजी की ऐसी नीति इख्तियार करेगी, जिससे असेम्बली और कौंसिलों के ज़रिये सरकार का कारबार चलाना नामुमकिन हो जाए।"

सब दलों को मान्य होने वाला भारत का संविधान तैयार करने के इरादे से सर्व-सम्मेलन की बैठकें भी आनन्द भवन में ही हुईं। यहीं पर नेहरू-रिपोर्ट तैयार की गई, जिसमें तुरन्त औपनिवेशिक स्वराज्य देने की मांग की गई थी।

विविध हलचलों का केन्द्र

आनन्द भवन गरमा-गरम बहसों, महत्वपूर्ण सभाओं और जलसों की ही जगह न था, बल्कि और भी बहुत तरह की हलचलों का केन्द्र था। यह केवल हमीं लोगों का घर न था, जोकि यहां पैदा हुए तथा पाले-पोसे गए, बल्कि और भी बहुत से लोगों, जवानों और बूढ़ों का घर था। कुछ लोग इसलिए यहां रहते थे कि वे अपने घरों से दूर थे (एक युवक लंका से आया था)। कुछ लोग यहां इसलिए रहते थे कि वे अपने घरों के मुकाबले यहां अधिक स्फूर्ति अथवा सहानुभूति पाते थे। उन दिनों अक्सर गोलियां चलती थीं और लाठियां बरसाई जाती थीं और अक्सर अनेक सरकारी अस्पताल इन जुल्मों के फलस्वरूप आहत लोगों को भरती करने से इन्कार कर देते थे। एक रात बहुत से कम उम्र के लड़के, जो गोली से घायल थे, लाये गए। उनकी हालत बहुत नाजुक थी। मेरी मां ने मेरे पितामह को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे उन लड़कों को घर में रखने की इजाज़त दे दें। इस तरह सितम्बर सन् १९२६ से मकान का एक हिस्सा अस्पताल बना दिया गया। शुरू में डाक्टर लोग आधी रात गुज़र जाने पर आते थे और घर की औरतें ही जिनमें मैं भी थी, नर्सों का काम करती थीं। मेरी उम्र उस समय १२ वर्ष की थी।

१९२६ में महात्मा गांधी ने मेरे पिता और पितामह से महत्वपूर्ण सलाह-मशविरा किया, जिसका असर घर के भविष्य पर पड़ने वाला था। उन लोगों ने जिन मसलों पर बातें कीं, उनमें एक प्रस्ताव आनन्द भवन का राष्ट्र को दान कर देने का था। गांधीजी ने बाद में सारी कथा खुद ही इस तरह बयान कर दी: 'बड़े पंडितजी ने जवाहरलाल को यह कहते सुन लिया कि आनन्द भवन जब मेरे हाथों में आएगा तब मैं उसे राष्ट्र को अर्पित कर दूंगा। इस पर उन्होंने अपने-आपसे कहा फिर इंतज़ार क्यों किया जाए। इस प्रकार राष्ट्र जिस समय एक महान् लड़ाई छेड़ने जा रहा था, उससे ठीक पहले, इस लड़ाई की भूमिका-स्वरूप उन्होंने आनन्द भवन राष्ट्र को अर्पित कर देने का फैसला कर लिया। उसके बाद से यह १९४६ तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रधान कार्यालय रहा। १९४६ में कांग्रेस कार्यालय दिल्ली चला गया। मेरे पितामह ने पुराने मकान के ही अहाते में एक दूसरा छोटा मकान बनाया था। उसका भी नाम उन्होंने पुराने मकान पर आनन्द भवन रखा। हम नये मकान में १९२८ में चले आए।

राष्ट्र को दान

आनन्द भवन राष्ट्र को अर्पित कर देने का प्रस्ताव ६ अप्रैल, १९३० को कार्यान्वित हुआ, जिस दिन भोर में दांडी तट पर गांधीजी ने नमक कानून तोड़कर राष्ट्रीय सप्ताह मनाया और इस प्रकार एक अभूतपूर्व और अत्यन्त उल्लेखनीय अहिंसात्मक आन्दोलन का श्रीगणेश किया।

मेरे पितामह की मृत्यु दानपत्र की बाकायदा लिखा-पढ़ी होने से पहले ही हो गई। इसलिए कांग्रेस के नाम से इसकी लिखा-पढ़ी मेरे पिता ने की। जिस दानपत्र के द्वारा यह मकान कांग्रेस के नाम लिखा गया, उसकी प्रस्तावना में लिखा है, "इनके पिता मोतीलालजी यह मकान राष्ट्र को अर्पित करना चाहते थे, पर वे बाकायदा लिखा-पढ़ी करने से पहले ही मर गए। पंडित जवाहरलालजी ने यह जायदाद भारत के लोगों में विद्या, स्वास्थ्य, सामाजिक व आर्थिक उन्नति के लिए और विशेष रूप से भारत के सभी वर्ग व मज़हब के लोगों में एकता कायम करने के उद्देश्य से डा० अन्सारी, सेठ जमनालाल बजाज, डा० विधानचन्द्र राय और अपने को ट्रस्टियों के रूप में सौंपी।" इस दानपत्र की लिखा-पढ़ी २४ नवम्बर, १९३१ को हुई।

राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने जो दमनात्मक कार्रवाइयां कीं उनके सिलसिले में उसने देश के अन्य अनेक मकानों की तरह स्वराज्य भवन को भी अपने कब्ज़े में ले लिया। यहां पर चलाये जाने वाले कांग्रेस अस्पताल का सारा कीमती सामान भी उसने ज़ब्त कर लिया। कुछ दिनों के लिए अस्पताल का काम-काज बिलकुल ठप हो गया, पर बाद में पास के पार्क में खुली जगह में एक दवाखाना चालू कर दिया गया, बाद में उसे स्वराज्य भवन से सटे एक छोटे मकान में ले जाया गया। तब से वह वहीं चल रहा है। उसमें हर साल लगभग ५० हज़ार मरीज़ों का इलाज होता है।

हमारा नया मकान, आनन्द भवन भी सरकार द्वारा ज़ब्त कर लिए जाने की चर्चा चली थी, पर आख़िर में उसने समझदारी दिखाई और हमें उसमें रहने दिया।

१९४२ के बाद स्वराज्य भवन सरकार के कब्ज़े में रहा है। ९ अगस्त, १९४२ को, भारत छोड़ो आन्दोलन के पहले दिन, वहां एक फौजी टुकड़ी तैनात कर दी गई और बाहर तथा आसपास के गांवों में दमन-चक्र चलाने के लिए उसे एक प्रकार का सदर दफ्तर बना दिया गया। उन दिनों स्वराज्य भवन से सटे नये आनन्द भवन में रहने वाले लोगों और नौकरों को संगीनें दिखाकर धमकाया जाता था।

१ जुलाई, १९४८ को वर्किंग कमेटी ने एक प्रस्ताव पासकर स्वराज भवन को शिशुगृह बनाने की अनुमति दे दी और मई १९४९ में राष्ट्रीय बाल संस्थान ने उसे अपने नियंत्रण में ले लिया। इस प्रकार स्वराज भवन पुनः राष्ट्रीय जीवन में योगदान दे रहा है। यहां ऐसे बहुत से बच्चों को, जिन्हें अन्यत्र घर की सुविधाओं तथा शिक्षा प्राप्त करने का मौका नहीं मिल सकता था, भारत के ऊंचे नागरिक बनने की ट्रेनिंग दी जा रही है।

जब तक आप वर्तमान पद्धति को बचा सकने की सोचते हैं, तब तक चलाते रहिए, भले ही प्रतिशोध की देवी की गति आपको पकड़वाने में धीमी रहे, लेकिन वह आपको पकड़कर ही रहेगी।

—मोतीलाल नेहरू

→
कमला नेहरू, पुत्रवधू

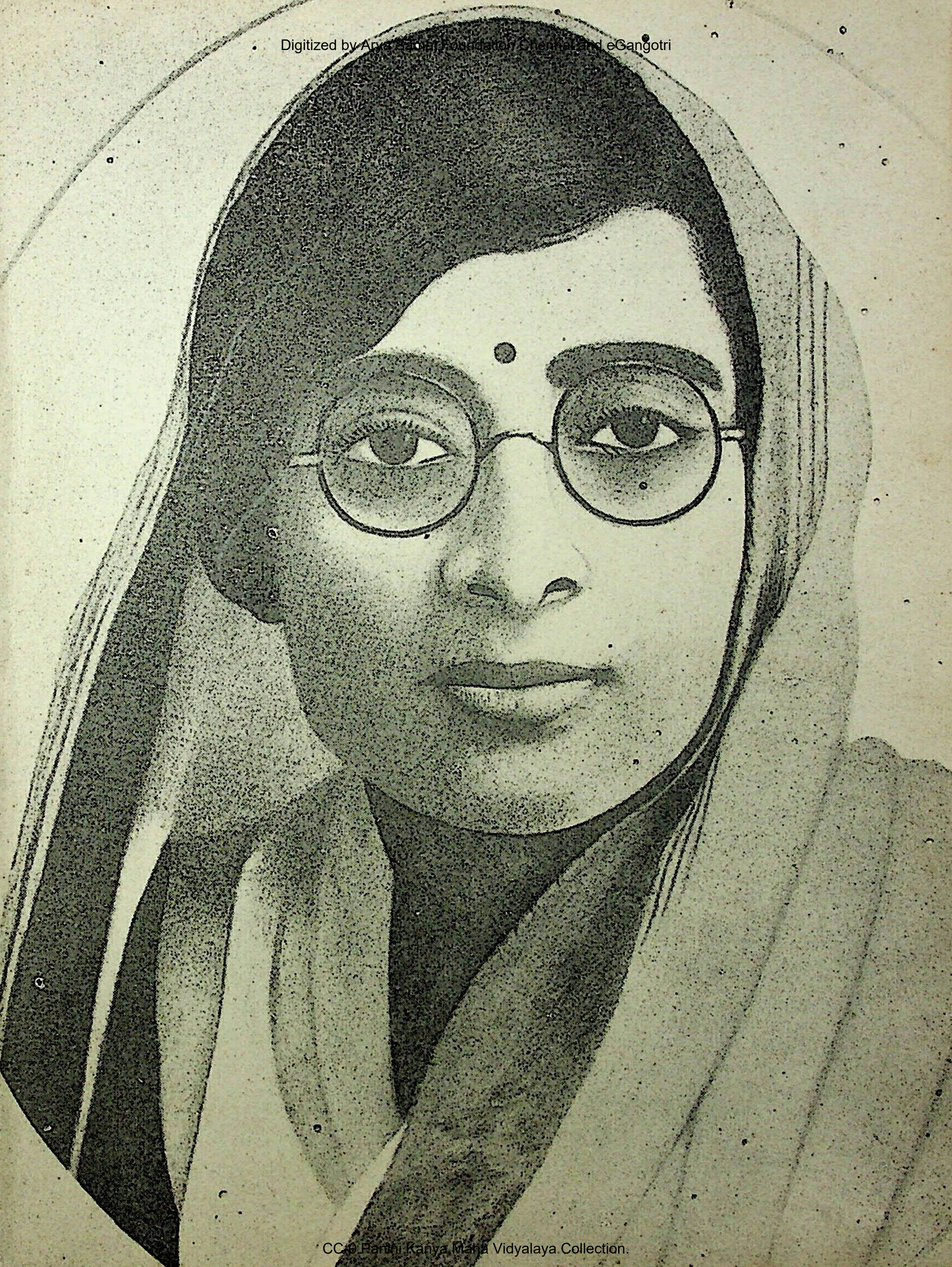

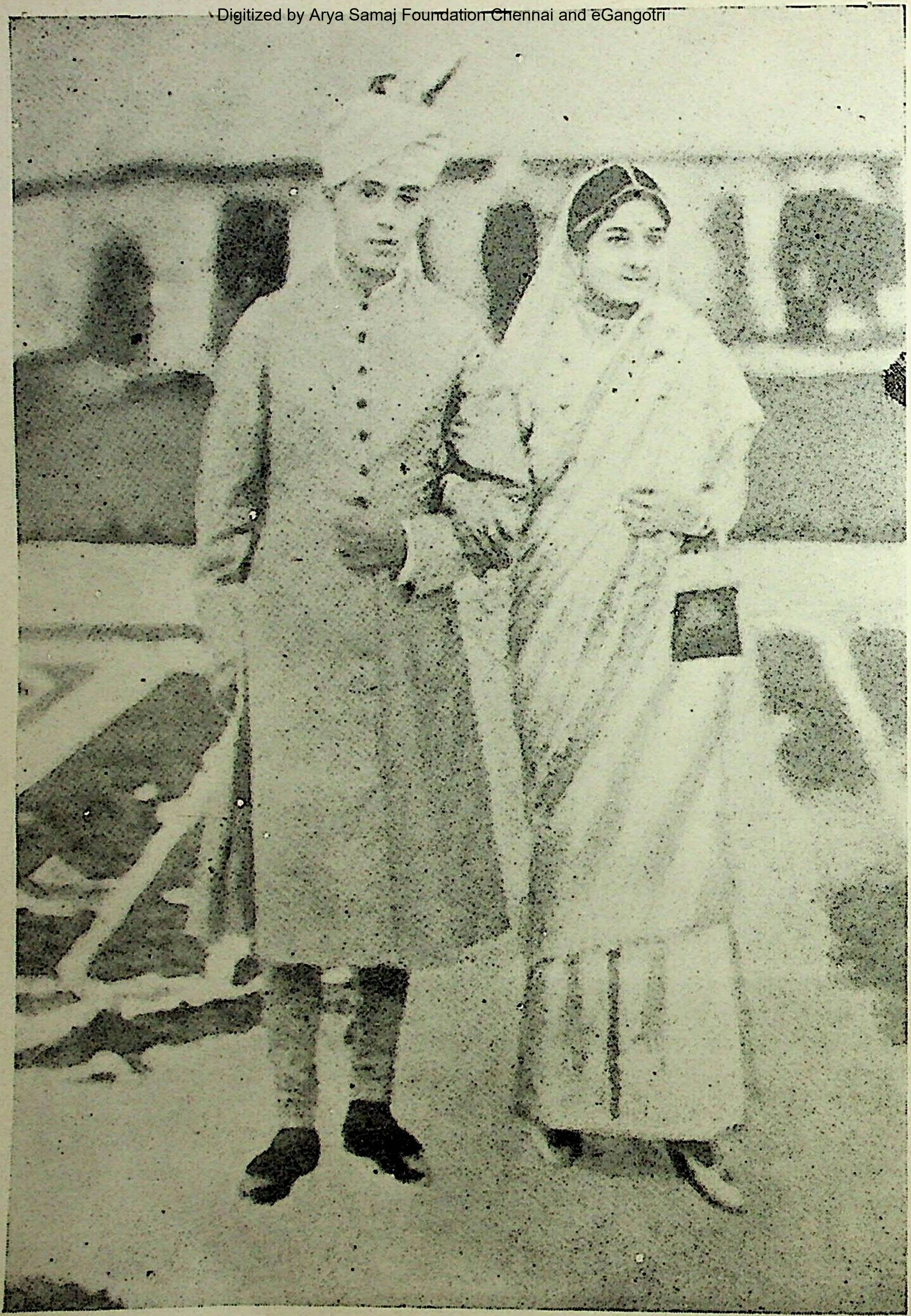

जवाहरलाल नेहरू और कमला दिल्ली में विवाह के बाद, ८ फरवरी १९१६

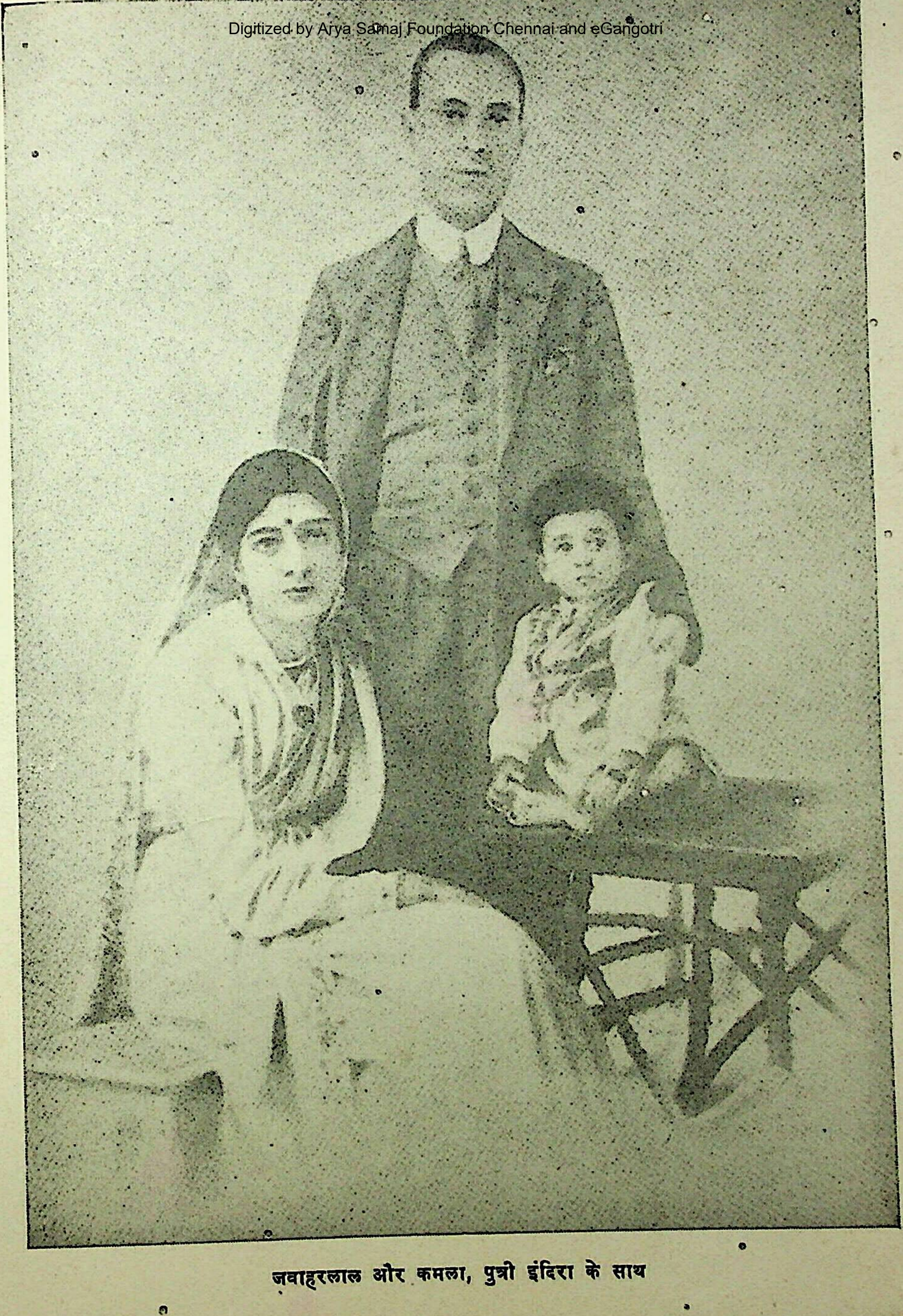

जवाहरलाल और कमला, पुत्री इंदिरा के साथ

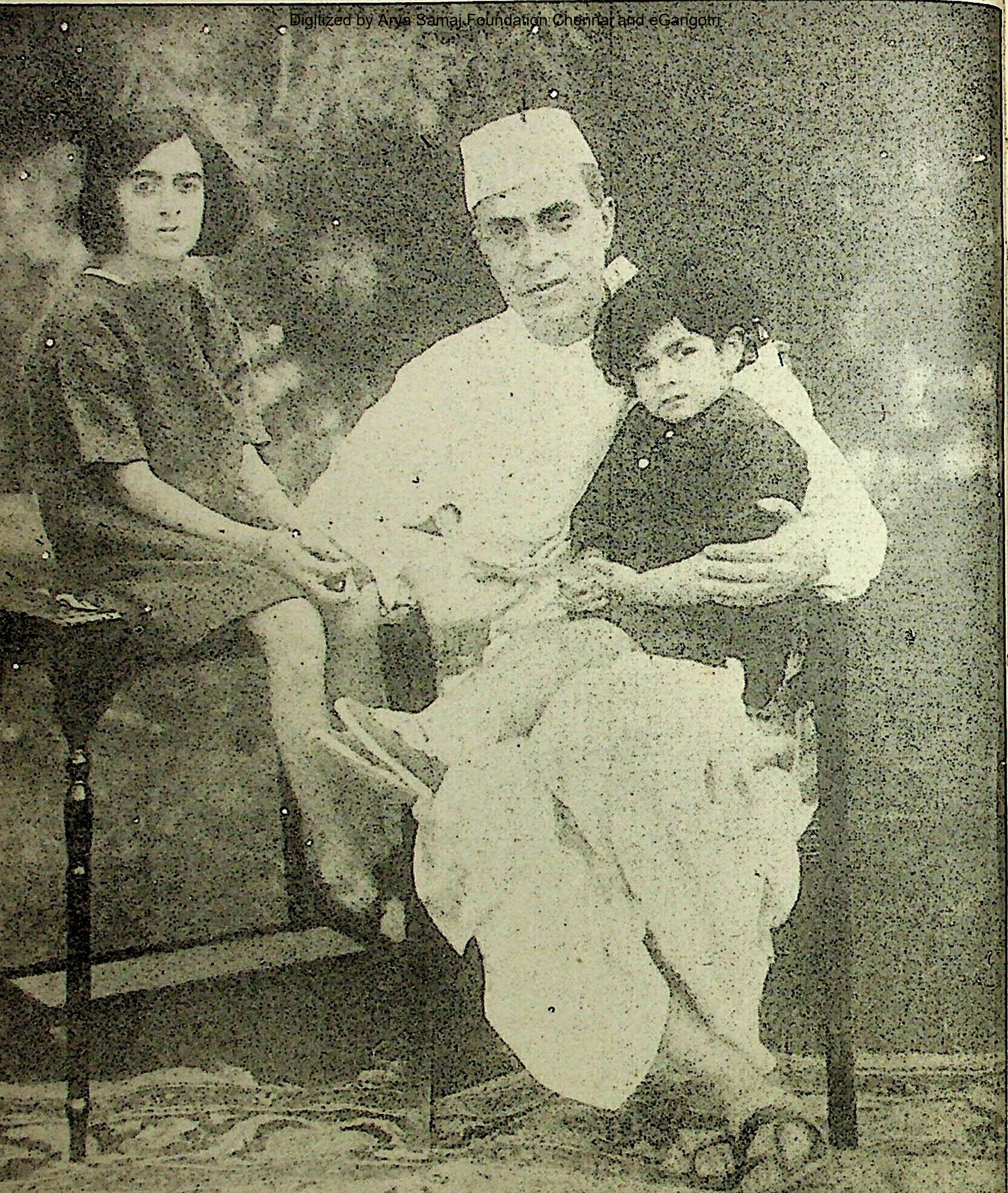

जवाहरलाल, इंदिरा और भांजी चन्द्रलेखा के साथ

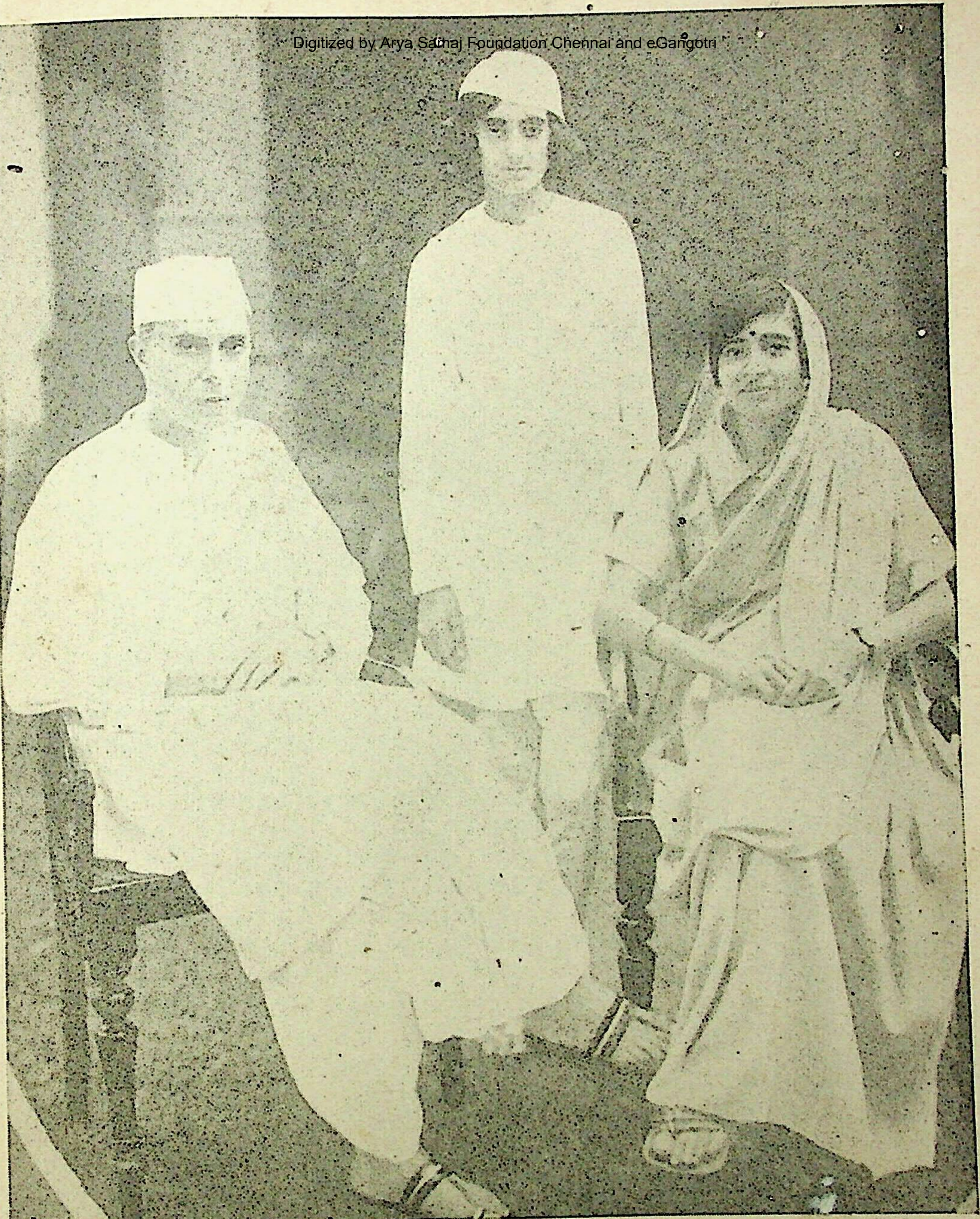

जवाहरलाल और कमला, इंदिरा के साथ, १९२९

त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

६ मई, १९६१ को सारे देश में स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू की जन्म शताब्दी मनाई गई थी। आम सभाओं में, दैनिक और मासिक पत्रों में साधारण जनता ने एक बार फिर उनके पुण्य-कृत्यों को स्मरण करके उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पण की थी। उनके निकट-सान्निध्य का सौभाग्य जिन लोगों को मिला था उन्होंने आजकल के युवक-युवतियों को उनकी प्रेरणादायक जीवनकथा सुनाई। इसी अवसर पर श्री मोहनलालजी सक्सेना ने जिन्होंने शताब्दी की योजना बनाई और उसे सारे देश में चलायमान किया उनकी याद में अंग्रेज़ी में एक सुन्दर ग्रंथ भी प्रकाशित किया था जिसमें उनका जीवन-वृत्त और बड़े-बड़े नेताओं के उनके सम्वंध में संस्मरण थे। चूंकि मुझे भी उस स्वर्गीय महापुरुष के निकट रहने का सौभाग्य मिला था इसलिए उन्होंने बहुत आग्रह किया कि मैं भी अपने कुछ संस्मरण लिखूं। परन्तु विषय की महानता को देखते हुए मुझे कुछ भी लिखने का साहस नहीं हुआ। इसलिए उनके वार-वार कहने पर भी मैंने कुछ नहीं लिखा। अव जव हिन्दी में भी वैसा ही ग्रन्थ निकालने का निश्चय हुआ तब उनका फिर से वही आग्रह शुरू हुआ जिसके सामने मुझे हार माननी पड़ी। परिणामस्वरूप जैसे हो सका कुछ शब्द लिखने का प्रयत्न कर रही हूं परन्तु मेरा वह अविश्वास अब भी बरकरार है। पाठकगण मेरी त्रुटियों को क्षमा करें और मेरे इस संस्मरण लेख को मेरी श्रद्धा की केवल एकमात्र श्रद्धांजलि ही मानें।

३१ मई, १९०२ को मेरा विवाह पडितजी के भतीजे श्री ब्रजलाल नेहरू से हुआ। बरात लेकर पंडितजी सपरिवार स्वयं आये थे। मेरी आयु उस समय केवल १५ वर्ष की थी। घर में ही माता-पिता ने कुछ थोड़ा-बहुत पढ़ा दिया था। घर से वाहर कभी निकली नहीं थी क्योंकि उन दिनों प्रतिष्ठित कश्मीरी घरानों में स्त्रियों को पर्दे में रखा जाता था अतएव मैं भी ११, १२ वर्ष की आयु से पर्दे ही में रहती थी। मैं मानती हूं कि मैं बहुत भोली थी और नये लोगों, नये वातावरण में आकर बहुत डरती थी। परन्तु पडितजी ने, जिनको मैं अपना ससुर मानती थी और जिन्हें हम सब भाईजी कहते थे, अपने प्रेम-व्यवहार से मेरे हृदय का डर बहुत कुछ निकाल दिया था। वे मुझ पर कृपा-दृष्टि रखते थे और जब तक मैं घर में पुरानी नहीं हो गई तब तक मेरा विशेष ध्यान रखते रहे ताकि मैं ससुराल-घर को अपना घर समझने लगूं। विवाह के वाद ही ढाई-तीन महीने में ब्रजलालजी शिक्षा के लिए विलायत चले गए और फिर ६ वर्ष बाद १९०८ में लौटकर आए। इस बीच में मैं अधिकतर अपने मायके में ही रही परन्तु फिर भी लगभग प्रतिवर्ष ही मैं दो महीने के लिए इलाहाबाद आकर आनन्द भवन में रहती थी। उस समय तक पंडितजी राजनीति के धंधे में नहीं पड़े थे। दूर रहकर ही उसका अध्ययन करते थे और नरम दल के साथ उनकी सहानुभूति थी। उनका तेजस्वी व्यक्तित्व स्वभावतः ही सूर्य के समान प्रकाशमान था। मुझ पर भी उसका भारी प्रभाव पड़ा। घर में सव ही उनसे डरते थे, मैं भी डरती थी उनसे प्रेम भी करती थी। घर का प्रबन्ध उन्हीं की मर्ज़ी के मुताबिक होता था जिस पर वह बड़ी कड़ी दृष्टि रखते थे।

कहावत है कि कानून एक ईर्ष्यालु पत्नी है। सफल वकीलों को अपना सारा समय ही अपने व्यवसाय के लिए देना होता है। उत्तर भारत में पंडितजी चोटी के वकील थे यह सब जानते हैं। बड़े-से-बड़े मुकदमे अनायास ही उनके पास आते थे और वह लाखों कमाते थे जो बिना परिश्रम के संभव नहीं था। अतएव वह अधिक परिश्रम करते थे। जिस मुकदमे को लेते थे उसका एक-एक नुकता बड़ी बारीकी

से देखते थे। इतना सब करते हुए भी उन्हें कौटुम्बिक कामों के लिए समय निकल आता था। सारे परिवार पर दृष्टि रखते थे। यदि घर में कोई बीमार हो जाये तो उसके इलाज, देखभाल का पूरा प्रबन्ध करते थे। मेरी सास माता स्वरूपरानी नेहरू सारी उम्र ही बीमार रहीं। उनके इलाज के लिए बहुतेरे डाक्टर आते थे परन्तु इलाज की विधि, कौन औषधि कब दी जाए इसका निश्चय डाक्टर के मशवरे से पंडितजी स्वयं करते थे। किसी डाक्टर की मजाल नहीं कि बिना उनकी आज्ञा के कोई दवा दे। इस काम में उनका बहुत समय खर्च होता था।

घर में मेहमान आते ही रहते थे। कौन कहां रहेगा, किसके लिए कैसा भोजन बनेगा यह सब उनकी आज्ञा से ही होता था। रात का भोजन सारा कुटुम्ब साथ ही करता था। इसके लिए कभी-कभी १० बजे रात तक ठहरना पड़ता था। क्योंकि जब काम अधिक होता था तो उसमें व्यस्त रहने के कारण भोजन का समय टलता जाता था। भोजन के बाद कुटुम्ब और मेहमानों के साथ घंटा-दो घंटा बैठकर बात करना उनका नित्य का नियम था। अधिकतर अपने मुकदमों की बातें बड़े रोचक ढंग से करते थे जिससे हमें शिक्षा भी मिलती थी। मैंने तो सुनते-सुनते हिन्दू-विधि की बहुत-सी बातें सीख भी ली थीं। यह समय हम सबके लिए बड़े आनन्द का होता था। जिसकी हम इन्तजारी में रहते थे।

जेवर कपड़ों के नमूने भी वे स्वयं ही बनाते थे। माताजी (श्रीमती स्वरूपरानी) के कितने ही वस्त्र-आभूषण उनके अपने डिज़ाइन किए हुए होते थे। सरूप कुमारी (विजयलक्ष्मी) और कमला नेहरू के आभूषण सुनार को घर पर बिठाकर बनवाये गए थे। हीरे, मोती और दूसरे बहुमूल्य नग सबकी उन्हें अच्छी परख थी। उनको स्थान-स्थान से ढूंढकर खरीद करने की झंझट सब उन्हीं के सर थी। इतना काम करने का समय वह कहां से लाते थे यह रहस्य हम आज तक नहीं समझे। उनके समान प्रेम करने वाला पिता मैंने दूसरा नहीं देखा।

सरूपकुमारी (जिसे वह नैन कहकर पुकारते, जो हिन्दी शब्द नन्नी का अंग्रेज़ी रूप था) की वर्षगांठ एक बड़ा उत्सव होता था। उस दिन हर वर्ष बहुत बड़ी पार्टी की जाती थी जिसमें हाईकोर्ट के सब जज, उनकी पत्नियां और नगर के बड़े-बड़े आदमी बुलाये जाते थे। रंग-बिरंगे परदों से आनन्द भवन (जो अब स्वराज्य भवन है) सजाया जाता था। सामने के बड़े लॉन में मेज़ों पर भांति-भांति के खाने चुन दिए जाते थे। उनके अपने बनवाए हुए कारचोबों व अतलस के बहुमूल्य वस्त्र पहनकर बालिका सरूप कुमारी अपने अनुपम सौन्दर्य से सब मेहमानों को मोहित कर लेती थी।

जवाहरलाल के रहने के लिए उसके विवाह से पहले कमरे बनवाएँ जिसका नमूना फर्नीचर, पर्दे, चित्रादि सब एक-एक वस्तु स्वयं देख-चुनकर बनवाई थी। बच्चे सुखी-सम्पन्न रहें यह उनके मन की सबसे बड़ी कामना थी।

वह एक अच्छे समाज सुधारक थे। कश्मीरी पंडितों में बिरादरी के भीतर परस्पर पर्दे की प्रथा नहीं थी। परन्तु बिरादरी के बाहर पर्दा किया जाता था। स्त्रियां खुले आम घूम-फिर नहीं सकती थीं। पंडितजी ने जीवन के आरम्भ काल में ही अपने घर में पर्दे की प्रथा को बहुत कम कर दिया और फिर धीरे-धीरे तो बिलकुल ही छोड़ दिया। कश्मीरी पंडितों ने आमतौर पर उनका अनुसरण किया। आज की बालिकाएं तो जानती ही नहीं कि पर्दा किसे कहते हैं।

जवाहरलालजी ने अपनी जीवन-कथा में कश्मीरी पंडितों में तीन पक्षों (धर्म सभा, बिशन सभा और सत्य सभा) के बनने की चर्चा की है। आज यह बहुत तुच्छ-सी बात दिखाई देती है परन्तु ६० वर्ष पहले वातावरण दूसरा था। समाज बाहरी कर्मकाण्ड को बहुत महत्व देता था। पहले तो समुद्र पार करके विदेश जाना ही धर्मविरुद्ध माना था। फिर कुछ प्रगतिशील लोगों ने उसको सहन भी कर लिया तो भी विदेश से लौटने पर प्रायश्चित्त करके व्यक्ति को शुद्ध कर लेना आवश्यक माना गया। प्रायश्चित्त एक निर्जीव क्रिया-मात्र थी। उसमें धार्मिक विश्वास किसी को भी नहीं रहा। फिर भी एक-दूसरे के भय से

समाज बहिष्कृत होने के डर से प्रायश्चित्त की क्रिया एक रस्म के तौर पर विदेशों से लौटने वाले व्यक्ति सब करते ही थे। पंडितजी जब विदेश-यात्रा से लौटे तब उनका सत्य-प्रेम यह सहन न कर सका कि प्रायश्चित्त की इस श्रद्धाविहीन रस्म को वह पूरा करें। उन्होंने प्रायश्चित्त करने से इंकार किया और खुले आम समाज को चुनौती दी कि मैंने कोई पाप नहीं किया है इसलिए प्रायश्चित्त नहीं करूंगा। समाज में घर-घर इसकी चर्चा होने लगी। इस चुनौती पर बहुत आलोचना हुई परन्तु पंडितजी अपनी बात पर डटे रहे। धीरे-धीरे दूसरे लोग भी उनके अनुयायी, सहमत हुए। धर्म सभा और बिशन सभा तो पहले से थीं ही अब पंडितजी के नेतृत्व में सत्य सभा भी बन गई पर धीरे-धीरे वह भी समाप्त हो गई और आजकल के कश्मीरी बालक-बालिकाएं तो इन सभाओं के नाम तक नहीं जानते। वे क्या जानें कि बंधन रहित आज के आडम्बरमुक्त समाज बनाने में पहले आदमियों का कितना पराक्रम और साहस लगा था।

एक और घटना का नीचे उल्लेख करती हूं जिससे पंडितजी के साहस और निर्भय होने का ज्वलन्त उदाहरण मिलता है।

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में पहले नक्षत्र से विजयादशमी तक १० दिन और चैत्र शुक्ल पक्ष के पहले नक्षत्र से रामनवमी तक के ९ दिनों को कश्मीरी पंडित देवी के दिन कहते हैं। इनका बड़ा महत्व माना जाता है।

सब जानते हैं कि कश्मीरी ब्राह्मण शैव सम्प्रदाय के होते हैं और शिव के उपासक हैं। इसीलिए वह परम्परा से मांसाहारी हैं। कश्मीर में पंडितों की दो इष्ट देवियां मानी जाती हैं। एक शर्का दूसरी राज्ञा। कुछ राज्ञा देवी और कुछ लोग शर्का देवी के उपासक हैं। राज्ञा देवी का मन्दिर श्रीनगर से लगभग १३-१४ मील पर बना है जिसके मध्य में एक कुण्ड है। वर्ष में दो बार देवी के दिनों में वहां बड़े महत्व का मेला होता है। देवी के उपासक दूर-दूर से आकर २-४ दिन वहां रहते और देवी की पूजा-अर्चना करते हैं। राज्ञा देवी निरामिष मानी जाती है। भेंट में भी बहुधा वहां दूध का क्षीर और मिठाई आदि चढ़ाई जाती है। राज्ञा के मानने वाले चाहे जहां भी रहें आज तक देवी के दोनों पखवाड़ों में मांस नहीं खाते। यह रिवाज अब भी बड़ी कड़ाई से माना जाता है। शर्का देवी जिसका मन्दिर श्रीनगर में हरिपर्वत पर बना है, मांसाहारी मानी जाती है। ऐसा सुनां है पहले यहां पशुओं की बलि होती थी परन्तु अब उसके प्रतीक मात्र नारियल फोड़कर देवी की भेंट किया जाता है। शर्का देवी के उपासक देवी के दिनों में भी मांस खाते हैं।

मांसाहारियों को निरामिष भोजन कभी स्वाद नहीं लगता। राज्ञा के उपासक पुरानी रीति के अनुसार इन दिनों मांस खाते तो नहीं परन्तु सदा दिन गिना करते हैं कि कब यह दिन समाप्त हो तो भोजन का यह बंधन छूटे। इस सबके होते हुए भी देवी के कोप से डरते हुए कोई इस बन्धन को छोड़ता नहीं है।

नेहरू-परिवार पुरानी परम्परा से राज्ञा का उपासक था। इसलिए इन दिनों में मांस का त्याग करना पड़ता था। पंडितजी को यह सब बहुत खटकता था। एक दिन अकस्मात् निश्चय कर लिया कि हम अपनी इष्ट देवी को बदल देंगे। परिवार की स्त्रियों में आकर अपना फैसला कह सुनाया। बोले आज से हमारी इष्ट देवी शर्का रहेगी, हम राज्ञा देवी को छोड़ते हैं। उस दिन से घर में देवी के दिनों में भी रसोई में मांस पकने लगा और अब नेहरू-परिवार शर्का देवी को ही मानता है। यह सब मेरे विवाह से बहुत पहले ही हो चुका था। इस तरह पंडितजी समाज को ही नहीं देवी-देवताओं को भी परिवर्तन करने और उनको चुनौती देने में नहीं झिझकते थे।

मैंने पहले लिखा है कि पंडितजी के राजनीतिक विचार नरम दल के थे। इसका एक अनुभव मुझे १९१० में हुआ। १९०९ में 'स्त्री दर्पण' नाम का एक मासिक पत्र हिन्दी में निकालना मैंने आरम्भ किया था। यह मुख्यतः स्त्रियों के लिए था जिसमें स्त्रियों के दृष्टिकोण से समाज-सुधारक प्रगतिशील लेख रहा करते थे। प्रसंगवश प्रचलित राजनीतिक घटनाओं की भी थोड़ी-बहुत चर्चा होती थी।

मंज़रअली सोख्ता और सुन्दरलाल (जिन्हें पंडित सुन्दरलाल के नाम से अब सब जानते हैं) इलाहाबाद विश्वविद्यालय में विद्यार्थी थे। बड़े निर्भीक और साहसी थे। विश्वविद्यालय में रहते हुए ही उन्होंने कुछ ऐसे लेख लिखे थे जिनको विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने विद्रोहात्मक माना और राज्य-विद्रोह का अपराध लगाकर इन दोनों को विश्वविद्यालय से बहिष्कृत कर दिया। अब वे किसी कालेज या विश्वविद्यालय में नहीं जा सकते थे इसलिए उन दोनों को पढ़ाई छोड़नी पड़ी। इन दिनों में सुन्दरलाल मसूरी या नैनीताल किसी पर्वतीय स्थान में रहते थे और लिखने-पढ़ने का काम किया करते थे। अच्छे प्रगतिशील लेखक थे। मेरी प्रार्थना पर मेरे 'स्त्री दर्पण' मासिक के लिए भी कभी-कभी लेख भेज दिया करते थे जिसके लिए मैं उनको थोड़ा पारिश्रमिक भेज दिया करती थी। उन दिनों मेरी कोई परिपक्व राजनीति तो थी नहीं परन्तु मेरी सहानुभूति सोख्ताजी व सुन्दरलालजी की विचारधारा के साथ थी जिसको मैं हृदय में ही छिपाए रखती थी। भाग्यवश एक बार दैनिक डाक पंडितजी के हाथ में आ गई और उन्होंने ज़रा त्योरी बदलकर पूछा—यहां इस घर में सुन्दरलाल को रुपये कौन भेजता है। मैंने डरते-डरते कहा, मैं उनसे 'स्त्री दर्पण' के लिए सामाजिक लेख लिखवाती हूं और उसी के लिए कभी-कभी कुछ पारिश्रमिक भेज देती हूं। कहीं आनन्द भवन में भी पुलिस की तलाशी न करा देना इसके सिवा उन्होंने और कुछ नहीं कहा। परन्तु मैं उनसे लेख मंगवाती ही रही।

१९१७ में मैं भारत से बाहर ब्रह्म देश चली गई और वहां से १९२२ में आई। इन पांच वर्षों में भारत में बड़े महत्व के परिवर्तन हुए। गांधीजी ने राजनीतिक आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। कांग्रेस एक सजीव, सर्वव्यापी, शक्तिशाली संस्था बन गई जिसने देश की आज़ादी का काम नए अनोखे ढंग से आरम्भ किया। देश का रंगरूप बदला, विचार आचार बदले। साथ ही नेहरू-परिवार में भी मौलिक परिवर्तन आया। जवाहरलाल कांग्रेस के सेक्रेटरी हुए सेक्रेटरी क्या हुए मानो भारत की स्वतंत्रता के दीवाने हो गए। उसी के लिए जिए और उसी के लिए मरने को सदा उत्सुक रहने लगे। पंडितजी गांधीजी के प्रभाव में आये। उधर जवाहरलाल का खिचाव था। अपने पूरे तेज और पराक्रम के साथ कांग्रेस में शरीक हुए। वह आधे दिल से तो कभी किसी काम को करना जानते ही नहीं थे। जीवन में जो कुछ किया पूरी शक्ति और पूरे दिल से किया। कांग्रेस के सर्व-मान्य नेता बने हज़ारों, लाखों को देश की आज़ादी की लड़ाई में शरीक किया। घर-गृहस्थी का रंग भी बदला, सारा परिवार सहर्ष आन्दोलन में कूद पड़ा। रेशम, किमखाव के स्थान पर मोटी खादी को धारण किया। कठिन जीवन का सारे परिवार ने व्रत लिया और शक्तिशाली अंग्रेज़ सरकार का डटकर मुकाबला किया। जेल गए, हँसते-हँसते जेलों की सख्तियां सहीं। सारांश यह कि खुले दिल से कुरबानी करके असहयोग की नीति को पूरी तरह निभाया।

गांधीजी ने कहा था कि यदि सब भारतीय चर्खा चलावेंगे, खादी पहनेंगे और सत्याग्रह आन्दोलन में शरीक होंगे तो एक वर्ष में स्वराज्य मिल जाएगा। सब तो नहीं परन्तु सहस्रों ने सत्याग्रह करके अनेक कुर्बानियां कीं परन्तु स्वराज्य नहीं मिला। इसलिए पंडितजी को लगा कि अब समय आ गया है कि असहयोग की नीति बदलकर, विधान सभाओं में जाकर, अन्दर से अंग्रेज़ी सरकार का विरोध किया जाए। गांधीजी और जवाहरलाल दोनों ही की राय इसके विरोध में थी। वे दोनों असहयोग को जारी रखना चाहते थे परन्तु सी० आर० दास और पंडितजी अपनी राय पर दृढ़ थे इसलिए गांधीजी की राय से यह निश्चय हुआ कि जो लोग सभाओं में जाना चाहें, उनको उसकी छूट दी जाए। गांधीजी अपने साथियों के साथ निर्माण के बुनियादी काम में लग गए और पंडितजी और सी० आर० दास ने स्वराज्य-पार्टी का निर्माण करके १९२४ के चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े करके चुनाव का काम ज़ोरों से आरम्भ कर दिया जिसके लिए सारे देश का दौरा करके प्रचार किया। इसी वर्ष कांग्रेस की स्वराज्य-पार्टी ने पंडितजी के नेतृत्व में विधान सभा में प्रवेश किया। अंग्रेज़ सरकार को पहली बार एक शक्तिशाली संग-

ठित विरोध का मुकाबला करना पड़ा। जिस शान और बुद्धिमत्ता के साथ उन्होंने स्वराज्य-पार्टी का नेतृत्व किया वह भारत की विधान सभा के इतिहास में अपना नमूना आप ही था जिसे देखकर अंग्रेज़ पदाधिकारी दंग रह गए। सब उनका दबदबा मानते थे। उनका दिल से आदर करते थे। जब वह बोलने को खड़े होते थे तो सब सदस्य चौकन्ना होकर गौर से सुनने को बैठ जाते। उनके विरोधी होते हुए भी वे सब उनसे प्रेम और उनका आदर करने लगे थे। उनके शरीर-त्याग के अवसर पर जिन दर्द-भरे शब्दों में सरकार के अधिकारियों ने अपना शोक प्रकट किया उससे साफ़ पता लगता था कि अंग्रेज़ सरकार भी उनकी कितनी कद्र करती थी।

१९२७ से १९३० तक जब विधान सभा की बैठक के लिए पंडितजी दिल्ली आते थे तो हमारे ही छोटे-से घर में रहने की कृपा करते थे। हमारा घर बहुत छोटा था केवल एक छोटा-सा कमरा था जिसमें वह रहते थे परन्तु इस छोटे कमरे में जिस प्रेम से वह रहे वह मुझे कभी नहीं भूलेगा। उन्होंने स्थान की कमी को कभी महसूस नहीं किया। सदा प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे जिससे हमको भी बहुत सन्तोष और आनन्द मिलता था। श्रीकृष्ण के निम्न वाक्य को—पत्रं पुष्पम् फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतम अश्नामि प्रियतात्मनः। उन्होंने चरितार्थ कर दिखाया। जितने प्रेम से हमने अपना छोटा घर रहने के लिए उनको भेंट किया उतने ही प्रेम से उन्होंने उसको स्वीकार किया। उन दिनों भी रात के भोजन के बाद वही घंटे-दो घंटे का वार्तालाप चलता था जिसमें अब अधिकतर विधान सभा, अंग्रेज़ी सरकार और कांग्रेस की बातें होती थीं जिनसे फिर बहुत कुछ सीखने को मिलता था।

उन दिनों में जो कोई भी हमारे घर आता उनके दर्शन और उनकी बातें सुनकर मन मुग्ध हो जाता था। हमारे वह थोड़े दिन बहुत आनन्द के बीते। परन्तु उन दिनों देश का रंग जल्दी-जल्दी बदला करता था। वर्षों का इतिहास महीनों में बन रहा था। स्वराज्य, जिसके बिना देश को शान्ति नहीं थी अभी तक नहीं मिला था इसलिए फिर नीति बदली और स्वराज्य-पार्टी में हुआ। विधान सभा से त्याग-पत्र देकर गांधीजी के नेतृत्व में बाहर काम करना शुरू किया। १९३० में नमक सत्याग्रह प्रारम्भ सबसे पहले यू० पी० में पंडितजी ने नमक बनाकर कानून तोड़ा और फिर सारे देश में नमक सत्याग्रह बला के समान फैल गया। पंडितजी फिर पकड़े गए और जेल गए। अब उनका स्वास्थ्य बहुत गिर चुका था। जेल की बंदिश बर्दाश्त न कर सके। बीमारी बढ़ती गई और अन्त में ६ फरवरी, १९३१ में उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। सारा देश दुःख की अग्नि में जलने लगा। वह तो इस असार संसार से उठ गए परन्तु अपनी याद लाखों दिलों में छोड़ गए। उनकी अमर कथा भारत के इतिहास में सदा ही स्वर्ण अक्षरों में लिखी जावेगी। कृतज्ञ भारत उनके पुण्य-त्याग बलिदान को कभी भूल नहीं सकता।

मुझे दुःख है कि मैं उनके अन्तिम दर्शन न कर सकी क्योंकि उन दिनों में मैं फिर इंग्लैण्ड चली गई थी जहां से १९३२ में लौटी।

> **इतने राष्ट्र अपनी जनता की इच्छा की अवहेलना करके तिरोहित हो गए हैं, और अब ब्रिटिश साम्राज्य भारत की इच्छा की अवहेलना कर रहा है और मैं कहता हूं कि इनके भाग्य के निपटारे का दिन अब बहुत दूर नहीं है।**
>
> —मोतीलाल नेहरू

सरोजनी नायडू और रामेश्वरी नेहरू (खड़ी हुई) के साथ

कांग्रेस अध्यक्षों की तीन पीढ़ियां

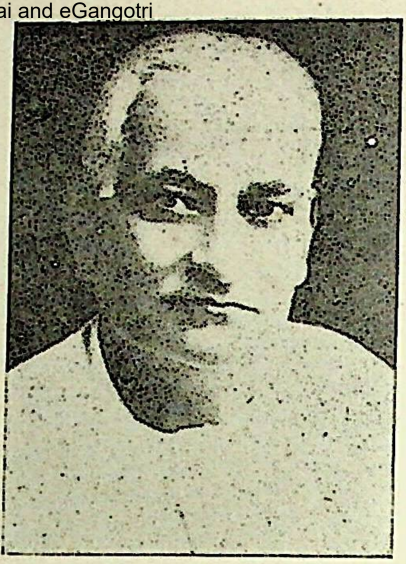

मोतीलाल नेहरू

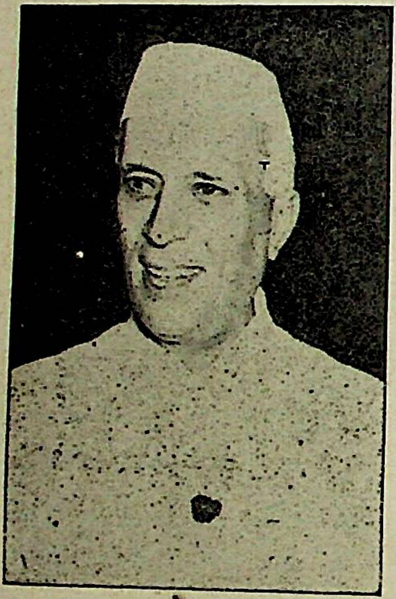

जवाहरलाल नेहरू

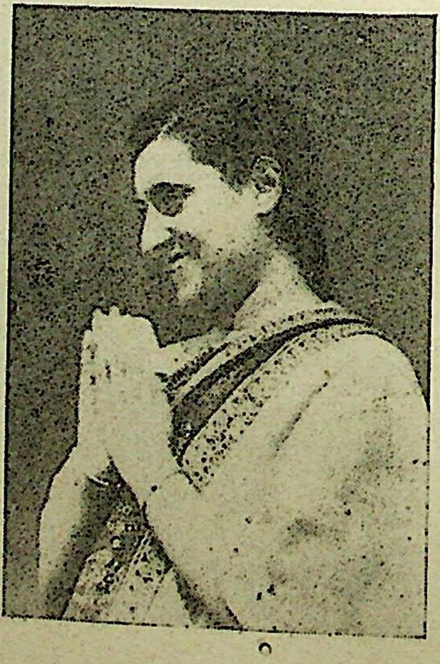

इन्दिरा गांधी

: ३ :

संस्मरण

आधुनिक भारत के निर्माता

सी० एफ० एन्ड्रूज

पंडित मोतीलाल नेहरू भारत के महान पुरुषों की उस पीढ़ी के व्यक्ति थे, जिसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर थे। यह विचित्र सहयोग की बात है कि मोतीलाल जी का जन्म उसी वर्ष तथा उसी दिन हुआ, जिस दिन कवि का जन्म हुआ था। वह ६ मई, १८६१ को पैदा हुए थे।

इलाहाबाद में उनके समकालीन व्यक्तियों में पंडित मदनमोहन मालवीय की अवस्था लगभग उनके समान थी। बंगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा. ब्रजेन्द्रनाथ सील उनसे कुछ छोटे थे। विख्यात रसायनशास्त्री सर प्रफुल्लचन्द्रराय भी उसी उम्र के थे। सर जगदीशचन्द्र बोस भी उनके समकालीन थे। सर नीलरतन सरकार भी उसी पीढ़ी के हैं। पंजाब के लाला लाजपतराय उनसे अवस्था में कुछ छोटे थे। अन्य प्रान्तों से भी कई नाम गिनाये जा सकते हैं, किन्तु स्थानाभाव के कारण ऐसा करना सम्भव नहीं है। मैं केवल इस बात की ओर संकेत करना चाहता हूं कि पिछली शताब्दी के छठे दशक में अनेकानेक महापुरुषों ने जन्म लिया। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि महात्मा गांधी का जन्म भी इसी दशक में हुआ था।

उत्तर भारत में कश्मीरी ब्राह्मण अपनी मेधा शक्ति तथा गौर वर्ण के सुन्दर शरीर के लिए विख्यात हैं। पंडित मोतीलाल नेहरू भी इसी वर्ग के थे। कश्मीरी ब्राह्मणों को वास्तव में उच्च-कुलीन वर्ग का प्रतीक माना जा सकता है। पंडित मोतीलाल इस विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि-स्वरूप थे। वृद्धावस्था में 'असेम्बली के सबसे अरिस्टोक्रेट व्यक्ति' के रूप में उनकी ख्याति हो गयी थी। उनके ऊपर शुभ्र श्वेत खादी और श्वेत कश्मीरी शाल बहुत ही फ़बता था। उनके जिस सुन्दर गौर वर्ण की मैंने चर्चा की है, वह पूरे परिवार में है तथा पिता से पुत्र को विरासत में मिला है।

प्रारम्भिक जीवन

यद्यपि पं. मोतीलाल ने अपनी बाल्यावस्था में स्कूल तथा कालेज की पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया, तथापि वह शुरू से कानून की पढ़ाई में रुचि लेने लगे थे। वह उच्च न्यायालय की वकालत की परीक्षा में प्रथम आये तथा उन्हें स्वर्णपदक मिला। उन्होंने इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का शीघ्र ही परिचय दिया। उनके जन्म के तीन महीने पहले उनके पिता का देहान्त हो गया था। उन्हें इसका अनुभव ही नहीं हुआ कि पिता का प्यार क्या होता है। लेकिन उनके बड़े भाई नन्दलाल, जो उनसे उम्र में काफी बड़े थे, उनके स्कूल और कालेज़ के जीवन-काल में उनके लिए पिता-तुल्य थे और उन्होंने ही बाद में मोतीलाल को अपने पदचिह्नों में चलाते हुए वकालत के पेशे में प्रवेश दिलाया। किन्तु उनकी मृत्यु तभी हो गई, जब मोतीलालजी ने वकालत शुरू की थी। इस तरह मोतीलालजी को शुरू से ही अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ा।

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार सारे परिवार के भरण-पोषण का भार अब मोतीलालजी पर आ पड़ा। इलाहाबाद उनका घर बन गया था। परिवार के भरण-पोषण के लिए मोतीलालजी को बहुत कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। वे अपनी वकालत को जमाने के लिए दिन-रात कड़ी मेहनत करते थे। इस मेहनत में उनको मजा आता और वह शीघ्रता से सफलता की सीढ़ी पर चढ़ते गये।

कई वर्षों तक जवाहरलाल उनकी एकमात्र संतान थे। काफी बड़ी उम्र में उनके दो कन्याएं हुईं।

इस प्रकार उनके तीन संतानें थीं। लेकिन उनके बहुत से चचेरे भाई और सगे-सम्बन्धी भी उनके साथ रहते थे। सारा संयुक्त परिवार एक बड़ी-सी कोठी में रहता था, जिसका नाम 'आनन्द भवन' रखा गया था।

पहली मुलाकात

पंडित मोतीलाल नेहरू से मैं पहली बार आनन्द भवन में मिला था। स्कॉटलैण्ड की पहाड़ियों पर जिस प्रकार एक कबीले के सभी लोग एक वंशानुगत मकान में रहते हैं, उसी प्रकार सारा नेहरू-परिवार आनन्द भवन में रहता था। संयुक्त परिवार में सभी निकट सम्बंधी मिल-जुलकर रहते हैं, यहां तक कि घर के जो नौकर-चाकर वहां पलते हैं, वे भी अपने को परिवार का अंग समझने लगते हैं। पंडित मोतीलाल से पहली मुलाकात की याद आज कुछ धुंधली पड़ गई है, परन्तु मुझे आनन्द भवन तथा उनके सुन्दर व्यक्तित्व की रूपरेखा आज भी अच्छी तरह याद है। उन दिनों दिल्ली और इलाहाबाद का बौद्धिक जीवन बहुत मिलता-जुलता था। विभिन्न बौद्धिक वर्ग के हिन्दुओं और मुसलमानों में घनिष्ठ बन्धुत्व की भावना थी। उर्दू जुबान, जिस पर हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को ही नाज़ था, उनके बीच एकता की कड़ी थी। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों के बीच एकता की एक और कड़ी पश्चिमी सभ्यता थी, जिसका काफी चलन हो गया था। प्रमुख परिवारों के लोग एक-दूसरे से प्रायः, विशेषकर शादी-ब्याह के अवसर पर, मिला करते थे। शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने के कारण मैं शीघ्र ही इलाहाबाद तथा आनन्द भवन के सम्पर्क में आ गया।

पंडित मोतीलाल नेहरू शुरू से ही अतिथि-सत्कार में बड़े दरियादिल थे। यूरोप की प्रत्येक यात्रा के बाद वह खर्चीले ढंग का पश्चिमी रहन-सहन अधिकाधिक अपनाते गये। उत्तर भारत में उनकी साहबी आदतों के बारे में बहुत-सी मूर्खतापूर्ण कहानियां प्रचलित थीं। जो लोग उन्हें जानते थे, उनके लिए ये कहानियां बिलकुल हास्यास्पद थीं, क्योंकि उन्होंने जो पश्चिमी रहन-सहन अपनाया था वह बिलकुल सतही था और उसे एक क्षण में त्यागा जा सकता था। वह अंग्रेज़ों के चरित्र के बड़े प्रशंसक थे। अंग्रेज़ी पब्लिक स्कूलों में पढ़े-लिखे जिन अंग्रेज़ों से वे मिले, उनका उनके ऊपर बहुत अच्छा असर पड़ा। इसलिए उन्होंने अपने इकलौते लड़के को हैरो पढ़ने के लिए भेजा और इसके लिए उन्हें कभी पछतावा नहीं हुआ। लेकिन वह अपने देश तथा अपने देश की परम्पराओं से इतना अनुराग रखते थे कि उन्हें एक क्षण के लिए भुला नहीं सकते थे।

फ़ौजी कानून

१९१९ की शरद् ऋतु में अमृतसर तथा लाहौर में मेरा उनसे घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। वहां कांग्रेस द्वारा पंजाब के उपद्रवों तथा फ़ौजी कानून के अन्तर्गत किये गए कारनामों की जांच के सिलसिले में हमारा उनका साथ हुआ।

शुरू में उनके पुत्र जवाहरलाल अकेले आए थे। वह, जैसे ही फ़ौजी कानून हटाया तथा पंजाब में प्रवेश करना सम्भव हुआ था, वहां पहुंच गये थे। उस समय तक वहां और कोई नहीं पहुंच पाया था। हम लोग कुछ दिनों तक लाहौर में हरकिशनलाल के मकान में साथ रहे। प्रतिदिन एक के बाद दूसरे उपद्रवग्रस्त क्षेत्र का दौरा करके लौटने के बाद हम शाम को अपने कार्यों का सिहावलोकन करते थे। इसके बाद पंडित मोतीलाल नेहरू को जैसे ही अन्य कामों में फ़ुरसत मिली वह स्वयं आए। महात्मा गांधी पर से जब निषेधाज्ञा हट गई तो वह भी वहां आये। जब इन दोनों ने मंजे हुए वकीलों की हैसियत से एक के बाद दूसरी गवाहियों की जांच की तब उन्हें मार्मिक ठेस पहुंची। फ़ौजी कानून के अन्तर्गत सबसे काले कारनामे लाहौर या अमृतसर में नहीं, वरन् गुजरानवाला ज़िले के उन गांवों में हुए थे, जिनके नाम

भी प्रकाश में नहीं आये थे, गांधीजी और मोतीलालजी जिस बारीकी से गवाहियों पर विचार करते थे, वह एक न भूलने वाला सबक था। उन्होंने मेरी उन तमाम गवाहियों को अविश्वसनीय ठहरा दिया, जिन्हें मैंने दूसरों से सुनकर एकत्र किया था और जिनके बारे में मेरी व्यक्तिगत जानकारी नहीं थी।

इस जांच के खत्म होने के पहले ही मुझे आवश्यक कार्य से केनिया और दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा। मुझे वहां से हटते हुए बहुत दुःख हुआ, लेकिन पंजाब छोड़ने के पहले मुझे इन दो महान् नेताओं के घनिष्ठ सम्पर्क में आने का स्वर्णिम अवसर मिला, जो फ़ौजी कानून से पीड़ित जनता की ओर से इन घटनाओं की मिल-जुलकर जांच कर रहे थे।

महान परिवर्तन

भारतीय इतिहास के चिरस्मरणीय वर्ष, सन् १९१९ ने मोतीलाल नेहरू के जीवन की धारा ही बदल दी। हम देख चुके हैं कि १९१९ से पहले यूरोप में बहुत से लोग और भारत में अनेक अंग्रेज अधिकारी उनके घनिष्ठ मित्र बन चुके थे। वह ब्रिटिश तौर-तरीकों के बड़े प्रशंसक थे और साथ ही उनकी आलोचना करने से भी नहीं हिचकते थे। भारत के उच्च-कुलीन वर्ग में उनके बहुत से मित्र थे। उनका दिमाग पूरी तरह से कानून और विधि-विधान के सांचे में ढला था। यद्यपि वह काफी समय से कांग्रेस में थे, तथा शुरू से उनका झुकाव गरम दल के बजाय नरम दल की ओर था। लेकिन अमृतसर कांड ने उनके जीवन की आस्था की नींव हिला दी और जब उन्होंने १९१९ में अमृतसर कांग्रेस के अधिवेशन की अध्यक्षता की तो उन्होंने अनुभव किया कि उनका और उनके पुराने माडरेट मित्रों का रास्ता अलग-अलग हो गया है। इसके बाद जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए बिगुल बजा, तब वह इसके लिए पूरी तरह से तैयार थे। वह बहुत ही धीरे-धीरे, बहुत सोच-विचार के बाद, इस स्थिति तक पहुंचे थे तथा इस बात से भली-भांति परिचित थे कि वह जो कदम उठाने जा रहे हैं, उसके क्या परिणाम होंगे।

यदि कोई पूछता तो वे स्वयं ही स्वीकार कर लेते कि उनके घर में ही लोग थे—उनमें पुरुष ही नहीं, महिलाएं भी थीं—जो महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन में शामिल होने का निर्णय लेने में उनको मदद देना चाहते थे। जैसे ही उन्होंने यह निर्णय लिया, सारे परिवार ने एकमत होकर उनका साथ दिया। मोतीलाल नेहरू के साथ जवाहरलाल, उनकी मां, उनकी पत्नी और पुत्री ने भी आन्दोलन में भाग लिया।

किन्तु, उनके मन में शुरू से ही जो मतभेद था, वह कुछ समय बाद प्रकट होने लगा। मैं पहले कह आया हूं कि मोतीलालजी का झुकाव नरम दल की ओर था। असहयोग आन्दोलन में शामिल होने के बाद भी उनका यह झुकाव बना रहा। इसलिए असहयोग आन्दोलन का पहला उफान ठंडा हो जाने के बाद, वह अपनी तर्कसंगत बुद्धि से यह अनुभव करने लगे कि केन्द्रीय असेम्बली में प्रवेश करके वह अधिक शक्ति-संग्रह कर सकते हैं। अपने महान् मित्र, बंगाल के देशबन्धु चित्तरंजनदास के साथ मिलकर वह ऐसा करने को तैयार भी थे। इस तरह 'महात्मा गांधी के साथ उनका मौलिक मतभेद शुरू हुआ। महात्मा गांधी के अनुयायियों को अपरिवर्तनवादी कहा गया। पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजनदास ने कांग्रेस के समानान्तर स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की। आयरलैण्ड के पार्नेल तथा उसके सहयोगियों ने ब्रिटिश पार्लियामेंट में सरकारी कार्य में बाधा डालने के जो संसदीय तरीके अपनाये थे, उनको दिल्ली में काम में लाया गया।

बम्बई में मुलाकात

दूसरी बार मैं पंडित मोतीलाल नेहरू से बम्बई के निकट जुहू में मिला। वहां गांधीजी पूना के सैसून अस्पताल में होने वाले नाज़ुक ऑपरेशन के बाद स्वास्थ्य लाभ करने के लिए गये थे। मोतीलालजी

महात्मा गांधीजी के साथ कुछ दिन जुहू में ठहरे, ताकि उनसे विचार-विमर्श कर सकें। मैंने वहां देखा कि वह कितने विनोद-प्रिय हैं। दोनों नेता आपस में एक-दूसरे का खूब मज़ाक उड़ाते थे। महात्माजी स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। इस तरह वह सबसे विनोद करने की मुद्रा में थे।

उन असाधारण दिनों में सारा नेहरू-परिवार जुहू में ठहरा था। मोतीलालजी और गांधीजी ने कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर आपस में बड़ी लम्बी वार्ता की, लेकिन कोई भी एक-दूसरे को अपने मत में परिवर्तित नहीं कर सका। इस लम्बी वार्ता के दौरान में पंडित मोतीलाल नेहरू को मैं जितना नज़दीक से जान गया, उतना नज़दीक से पहले नहीं जानता था। मुझे उनमें महात्मा गांधी के लिए अटूट श्रद्धा दिखाई दी। वह उनके 'महात्मापन' की ओर उतने आकर्षित नहीं थे, जितना उनकी मर्दानगी की ओर। इससे दोनों में सहज मानवोचित सम्बन्ध स्थापित हो गया था। वह गांधीजी से बड़े चुटीले मज़ाक करते थे और खूब कहकहे लगाते थे। काश, मुझे उनके मज़ाक में कहे गए कुछ शब्द याद होते, जो बहुत साधारण थे, लेकिन जिन्हें मैं भूल गया हूं। मुझे केवल एक ही मज़ाक याद है कि उन्होंने किस तरह से महात्मा गांधी को उनकी सफ़ेद खद्दर की पोशाक पर 'छैला' कहा था। इस हास-परिहास के बावजूद दोनों नेताओं में फौलाद-जैसी दृढ़ता थी, जिससे कभी-कभी पीड़ा पहुंचती थी, क्योंकि दोनों महान् मस्तिष्क, जो भिन्न-भिन्न सांचों में ढले थे, हमेशा मिल-जुलकर काम करने से इनकार कर देते थे। फिर भी इन मतभेदों के बावजूद दोनों में बहुत ही गहरा प्रेम था।

तेजस्वी व्यक्तित्व

जवाहरलाल ने अपनी आत्मकथा में अपने पिता का जो शब्द चित्र खींचा है, वह बहुत ही सुन्दर है। वह लिखते हैं, "उनका व्यक्तित्व बड़ा तेजस्वी था। उनमें बादशाहत की एक मात्रा थी। जिस किसी समाज में वह जा बैठते, उसके केन्द्र बन जाते। जैसा कि एक अंग्रेज़ जज ने पीछे कहा था, वह जहां कहीं भी जाकर बैठते वहीं मुखिया बन जाते। वह न तो नम्र थे और न मुलायम। उनका मिज़ाज शाही था। उनके प्रति या तो ज़बरदस्त आकर्षण का भाव उत्पन्न होता था या ज़बरदस्त विरोध का भाव। कोई शख्स उनके प्रति तटस्थ भाव नहीं रख पाता था। उसे या तो उन्हें पसन्द करना पड़ता था या नापसन्द। चौड़ा ललाट, कसे होंठ और सुदृढ़ ठोड़ी। उनकी शक्ल इटली के अजायबघरों में रखी रोमन-सम्राटों की मूर्तियों से काफी मिलती-जुलती थी। उनमें एक विशेष प्रकार की शालीनता और महत्ता थी, जो बदकिस्मती से आजकल दुनिया में बहुत कम दिखाई पड़ती है।"

उन्होंने आगे लिखा है, "मुझे याद है, मैंने गांधीजी को पिताजी का एक फ़ोटो दिखाया था। इस फ़ोटो में पिताजी के मूंछें न थीं। उस समय तक गांधीजी ने उन्हें हमेशा सुन्दर मूंछों-सहित देखा था। इस फ़ोटो को देखकर गांधीजी चौंक पड़े और बहुत देर तक उसे निहारते रहे, क्योंकि मूंछें न रहने से उनके मुंह और होंठ की दृढ़ता और भी उभर आई थी। कुछ सूखी-सी हंसी हंसते हुए उन्होंने कहा, "अब मैं समझ पाया कि मुझे किसका मुकाबला करना है।" पिताजी के फ़ोटो में उनके चेहरे पर जो कठोरता दिखाई पड़ती थी, उसे आंखों की तरलता तथा निरंतर हंसते रहने से जो रेखाएं पड़ गई थीं, उन्होंने कुछ कम कर दिया था और कोमलता ला दी थी, उनकी आंखें कभी-कभी चमक उठती थीं।"

उनके बारे में मेरी सभी यादगारों में उनकी इसी कोमलता की बहुलता है। मेरी स्मृति में सबसे अधिक उनकी विनोदप्रियता, विशेषरूप से गांधीजी के साथ उनका हास-परिहास अंकित है। मोतीलालजी गांधीजी के जितने बड़े प्रशंसक थे, उतना और कोई नहीं था। उनके बारे में उन्होंने लिखा है, "वह विनम्र और अकेला-सा दिखाई पड़ने वाला व्यक्ति अचल श्रद्धा और अजेय शक्ति के साथ सीधा तनकर खड़ा हुआ, अपने देशवासियों को अपनी मातृभूमि के लिए त्याग और कष्ट सहन का संदेश देता चला आ रहा है।"

मुझे बाद में अन्य अवसरों पर इन दोनों नेताओं को एक साथ देखने का सौभाग्य मिला। दोनों

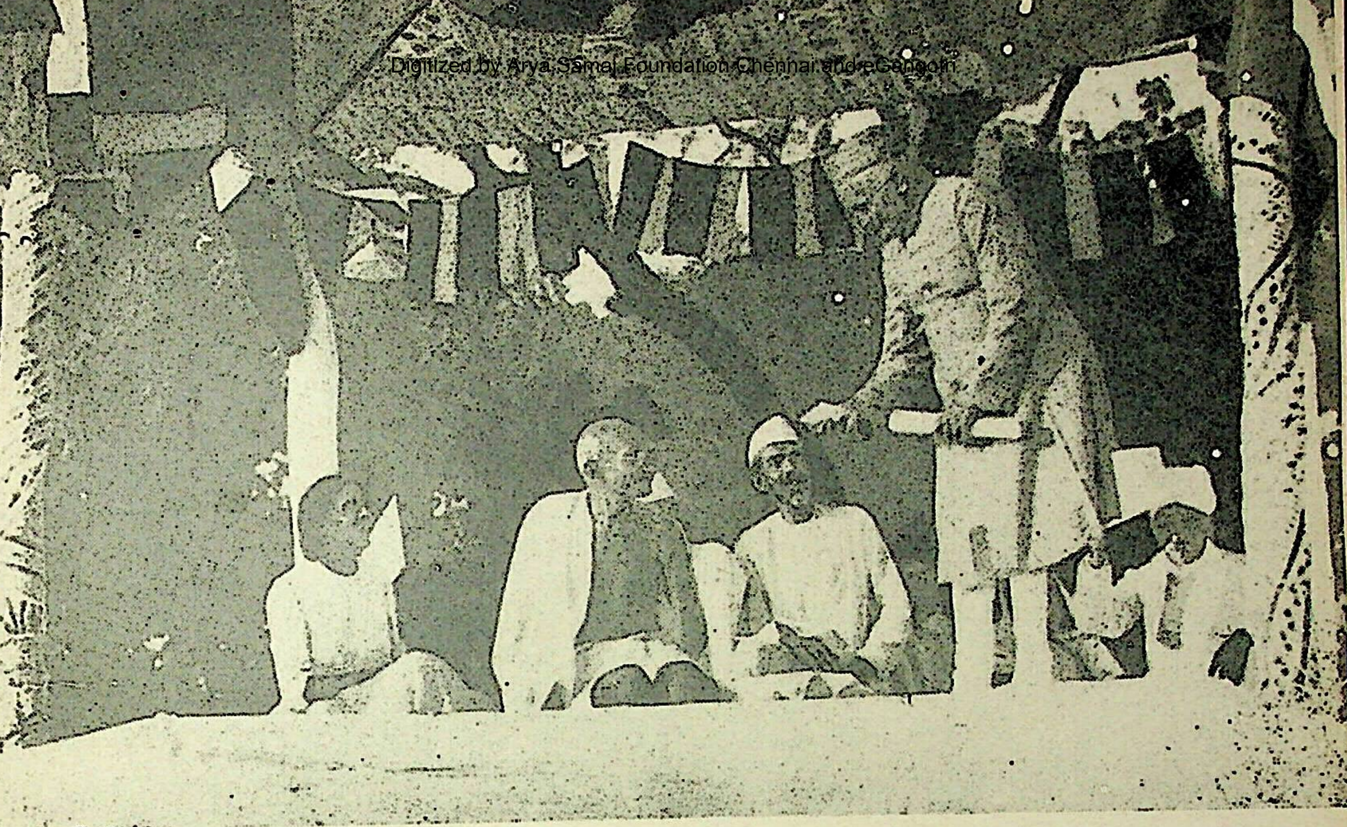

मंच पर (बायें से दाहिने) आचार्य कृपलानी, महात्मा गांधी, पुरुषोत्तमदास टंडन, मोतीलाल नेहरू और मदन मोहन मालवीय

नेता अपने-अपने ढंग से महान् थे, लेकिन दोनों में भारी अन्तर भी था। इससे मैं यह समझ पाया हूं कि कैसे महात्मा गांधी के प्रति यह स्नेह पिता से पुत्र को विरासत में मिला है। वस्तुतः पूरा नेहरू-परिवार गांधीजी से इसी प्रकार स्नेह करता है।

कौंसिल प्रवेश

असहयोग आन्दोलन के शुरू के दिनों में जो सबसे बड़ी घटना घटी, वह 'कौंसिल प्रवेश' के नाम से विख्यात है, जिसके लिए पंडित मोतीलाल नेहरू तथा देशबन्धुदास ज़िम्मेदार थे। सत्याग्रह-आन्दोलन की उपयोगिता पर दोनों ने महात्माजी के साथ बड़ी लम्बी बहस की।

अन्त में महात्माजी झुक गये और अगले चुनाव में स्वराज्य-पार्टी का संगठन हो गया और उसने चुनाव में भारी सफलता प्राप्त की। स्वराज्य-पार्टी के नेता की हैसियत से जब पंडित मोतीलाल नेहरू असेम्बली के विरोध-पक्ष के नेता चुने गये तो उन्हें अपना मनपसन्द काम मिल गया। यह काम उनके स्वभाव के उसी तरह अनुकूल था, जिस तरह पानी में मछली का तैरना। यह काम उनकी कानूनी और विधान-सम्बन्धी तालीम के लिए बिलकुल मौजूं था। वह ब्रिटिश सरकार के ही हथियारों से उनका मुकाबला करने के लिए बहुत उत्सुक थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि वह सरकार को घुटने टेकने के लिए मजबूर कर सकेंगे।

उनकी यह राय काफी हद तक ठीक थी, क्योंकि प्रत्यक्षतः सरकार को उनके हाथों शिकस्त खानी पड़ी। वस्तुतः सरकार को सभी महत्वपूर्ण मसलों पर सरकारी तथा मनोनीत सदस्यों पर ही निर्भर रहना पड़ता था और ये सब मिलकर भी बहुमत नहीं बना पाते थे। लेकिन उनकी यह विजय क्षणिक रही, क्योंकि जैसे ही कोई सरकारी बिल गिर जाता था, वायसराय उसे अपने विशेषाधिकार से स्वीकृति प्रदान कर देता था। साथ-ही-साथ उच्च सदन में असेम्बली के निर्णयों को पलटने के लिए बना-बनाया बहुमत तैयार रहता था।

इस बीच स्वराज्य-पार्टी को एक नये खतरे का सामना करना पड़ा। पार्टी के सदस्यों को एक या दूसरी समिति या पद पर काम करने का लालच दिया गया, जिसके लिए कुछ पैसा भी मिलता था। इन पदों को स्वीकार कर लेने पर पार्टी के लिए क्रान्तिकारी तरीके से काम करना कठिन हो जाता था। इन कठिन वर्षों में मोतीलालजी ने लगभग अकेले परिश्रम करके भारत का एक ऐसा संविधान तैयार किया, जिसमें भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य का दर्जा मिल जाता। उनके पुत्र जवाहरलाल, स्वाधीनता पर जिस प्रतिबन्ध के साथ संविधान बनाया जा रहा था, उससे सहमत नहीं थे। उनका लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता था। इस प्रश्न पर पिता-पुत्र में काफी संघर्ष हुआ। अन्त में बड़ी कठिनाई से यह समझौता हो गया कि 'औपनिवेशिक स्वराज्य' के लक्ष्य पर आधारित संविधान को स्वीकार करने की भी याद १९२९ के वर्षांत में समाप्त हो जाएगी।

कारावास और बीमारी

उनके जीवन के अन्तिम दिनों के बारे में, जिसमें वह सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण परिवार के अन्य सदस्यों के साथ जेल गये, विस्तार से लिखना सम्भव नहीं होगा। आन्दोलन में भाग लेने के बहुत पहले वह बहुत वर्षों से दमे से पीड़ित थे, जिसके कारण उन्हें बहुत तकलीफ होती थी और जिसका उनके हृदय पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा था। लेकिन उनके दृढ़ मनोबल ने यह गवारा नहीं किया कि जबकि और लोग कष्ट-सहन कर रहे थे, वह विश्राम करें; हालांकि उस समय तक वह करीब-करीब पंगु हो चुके थे और उनकी अवस्था ७० वर्ष की हो चुकी थी। जेल में उनकी बीमारी तेज़ी से बढ़ती गई। यह स्पष्ट था कि जेल-जीवन का उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा था, क्योंकि वहां उनके दमे तथा हृदय-रोग का कोई उचित इलाज नहीं हो सकता था। फिर भी यदि कोई यह इशारा करता था कि अस्वस्थता के कारण उन्हें रिहा कर दिया जाए तो वह बड़े नाराज़ होते थे, यहां तक कि उन्होंने वायसराय लार्ड ईर्विन को तार दे दिया कि उन्हें किसी तरह की छूट नहीं चाहिए। लेकिन डाक्टरों के स्पष्ट निर्देश पर वह गिरफ्तारी के दस सप्ताह बाद जेल से रिहा कर दिए गए। इसके बाद ही उनके इकलौते लड़के जवाहरलाल पांचवीं बार गिरफ्तार हो गए। वृद्ध पिता को इससे भारी धक्का लगा। उन्होंने अपनी सारी शक्ति को बटोरा और सब लोगों के सामने ऐलान कर दिया कि अब वह बीमार बनकर नहीं पड़े रहेंगे। कुछ समय तक उनका अजेय मनोबल कार्य करता रहा, लेकिन थोड़े दिनों के बाद उनके मुंह से बहुत अधिक खून आने लगा। इसलिए उनसे यह अनुरोध किया गया कि वह एक डाक्टर मित्र के साथ समुंद्री-यात्रा के लिए कलकत्ता चले जाएं। परन्तु उनकी हालत तेज़ी से बिगड़ती गई और वह कलकत्ता से आगे नहीं जा सके। उस समय भी उनका अजेय मनोबल हार मानने को तैयार नहीं होता था और वह सत्याग्रह आन्दोलन के कामों में पहले की तरह हिस्सा लेते रहते थे।

१९३१ में मृत्यु

वह इलाहाबाद लौट आये और उनको देखने के लिए उनके पुत्र जवाहरलाल औरों से कुछ पहले छोड़ दिए गए। यरवदा में महात्मा गांधी तथा अन्य कांग्रेस नेतागण भी छोड़ दिए गये। वे सब इलाहाबाद आ गये और इस प्रकार उनकी मृत्यु से पहले उन सबसे उनकी अंतिम मुलाकात हो गई।

उन्होंने महात्मा गांधी से कहा, "महात्माजी, मैं जल्दी ही चला जानेवाला हूं। मैं स्वराज्य देखने के लिए ज़िन्दा नहीं रहूंगा। लेकिन मैं जानता हूं कि आपने स्वराज्य जीत लिया है।"

६ फरवरी को उनका अंत हो गया। भारत के कोने-कोने में लाखों व्यक्तियों को ऐसा लगा कि जैसे उनका कोई अपना निकट सम्बन्धी उठ गया हो। उनके पुत्र लिखते हैं—

"मैं सारे दिन भौंचक्का-सा रहा। यह समझ नहीं पाया कि क्या हो गया है। घटनाओं के घटाटोप तथा बड़ी-बड़ी भीड़ों के कारण मैं कुछ सोच ही न सका। सूचना मिलते ही लखनऊ में भारी भीड़ जमा हो गई। वहां से शव के साथ इलाहाबाद आया। शव को राष्ट्रीय झंडे में लपेट दिया गया था और ऊपर एक बड़ा तिरंगा झंडा फहरा रहा था। मीलों तक अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए ज़बरदस्त भीड़ जमा थी। घर पर कुछ आखिरी रस्में की गईं। फिर एक ज़बरदस्त भीड़ के साथ गंगा-यात्रा शुरू हुई। जिस समय जाड़े की संध्या का अंधकार गंगा-तट पर धीरे-धीरे फैल रहा था, चिता से ऊंची-ऊंची लपटें उठीं और उस शरीर को भस्मीभूत कर दिया, जो हम सबके लिए तथा लाखों-करोड़ों देशवासियों के लिए इतना अधिक मूल्यवान था। गांधीजी ने उस भारी जनसमूह के सम्मुख एक छोटा-सा मर्मस्पर्शी भाषण दिया और फिर हम सब लोग चुपचाप घर चले आये। जब हम एकाकी और उदास मन लेकर घर लौटे तब आकाश में तारे निकल आये थे और तेज़ी से चमक रहे थे।"

सब ओर से संवेदनासूचक तारों का तांता लग गया। असेम्बली में जो उनके ज़बरदस्त विरोधी थे, उन्होंने भी संवेदना के संदेश भेजे। वायसराय लार्ड और लेडी इर्विन तथा सत्याग्रह-संग्राम में कंधे से कंधा भिड़ाकर साथ देने वाले प्रिय सहयोगियों से भी संवेदना के संदेश मिले।

जवाहरलाल लिखते हैं, "चारों ओर से अत्याधिक मात्रा में प्रकट की गई इस सद्भावना और सहानुभूति ने हमारे शोक की तीव्रता को कुछ कम कर दिया। लेकिन सबसे अधिक शांति और सांत्वना तो गांधीजी के वहां उपस्थित रहने से मिली। उन्होंने मां को तथा हम सब लोगों को अपने जीवन के उस संकटकाल का सामना करने के लिए बल प्रदान किया।"

इतने वर्षों बाद इन सारी घटनाओं का सिंहावलोकन करते हुए विश्व के सारे विचारशील व्यक्तियों के निकट यह स्पष्ट हो गया कि पं. मोतीलाल नेहरू ने जिस ध्येय को सामने रखकर जिस वीरता तथा शिष्टता से अपने विरोधियों के विरुद्ध संग्राम चलाया, उससे उनका यह ध्येय बहुत महान् और ऊंचा बन गया है। आज इस देश में न केवल हरेक भारतवासी, बल्कि अंग्रेज़ भी उनका नाम बड़े सम्मान से लेता है। एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से उनका दर्जा आज पहले से भी ऊंचा हो गया है। दिल्ली की केन्द्रीय असेम्बली में संसदीय बहस का स्तर उन्होंने जितना ऊंचा उठाया, उतना पहले कभी नहीं उठा था और न आज तक उठ पाया है। विरोधी दल का उनसे महान् नेता आज तक कोई नहीं हुआ। सब प्रकार से वह 'आधुनिक भारत के निर्माताओं' में से थे।[1]

---

[1] एल० पी० रशब्रुक विलियम्स द्वारा सम्पादित 'भारत के महापुरुष' नामक पुस्तक से।

पावन स्मृतियां

श्री प्रकाश

जनवरी १९०६ के दूसरे पखवारे की बात है। मैं तब १६ साल का था। इलाहाबाद में हर १२ वर्ष पर होने वाला कुम्भ का प्रसिद्ध मेला हो रहा था। श्रीमती एनी बीसेंट उन दिनों बनारस रहती थीं। उनका सेंट्रल हिन्दू कालेज भी बनारस में ही स्थित था और इंडियन थियोसॉफिकल सोसायटी का मुख्य कार्यालय भी वहीं था। शांति कुंज में उनके साथ दो अंग्रेज़ महिलाएं और रहती थीं—मिस विलसन और मिस डेवीज़ (जो बाद में मिसेज़ रैमजे हुईं)। अचानक इन महिलाओं के मन में यह बात उठी कि इलाहाबाद का कुम्भ का मेला देखना चाहिए। सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ऐनसांग ने इस मेले का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि सम्राट् हर्षवर्धन तथा असम के राजा भास्करवर्धन हाथियों पर सवार होकर साथ-साथ मेले में गये थे। देश में अनेकानेक राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन हुए हैं परन्तु कुम्भ के मेले का आज भी उतना ही महत्व है, जितना पहले था। आज भी हर १२ साल पर होनेवाले इस मेले में देश के सभी भागों से लाखों नर-नारी आते हैं। श्रीमती बीसेंट ने मेरे पिताजी (डॉक्टर भगवानदास) से कहा कि वे महिलाएं कुम्भ का मेला देखना चाहती हैं। उन्होंने पंडित मोतीलाल नेहरू को भी तार दे दिया कि इनके ठहरने का प्रबन्ध कर दें। पंडित मोतीलाल से उनकी अच्छी मैत्री थी। मुझे याद है कि एक बार पंडित मोतीलालजी ने मुझे बताया था कि एक समय वह थियोसॉफिस्ट बन गये थे। थियोसॉफिकल सोसायटी की महान् संस्थापिका मैडम ब्लैवत्स्की ने स्वयं उन्हें दीक्षा दी थी। दीक्षा लेने के बाद वे शाकाहारी हो गये थे। परन्तु अपने स्वास्थ्य के कारण वे अधिक दिन तक इस क्रम को नहीं चला सके। मेरे पिताजी ने मुझसे कहा कि मैं भी इन महिलाओं के साथ इलाहाबाद चला जाऊं।

आनन्द भवन

पंडित मोतीलालजी की अवस्था उस समय ४५ वर्ष की थी। वह बहुत ही सफल वकीलों में गिने जाते थे और समाज में उनका दर्जा बड़ा ऊंचा माना जाता था। उस समय के अंग्रेज़ लोग भी उनका बड़ा सम्मान करते थे। मुझे खेद है कि उस किशोरावस्था में मैंने उनका नाम तब तक नहीं सुना था और इसलिए मैं बिलकुल एक अजनबी की भांति उनके पास गया। रेलवे स्टेशन पर हमें लेने के लिए एक बहुत ही खूबसूरत और लकदक फिटन आई, जिसमें दो खूबसूरत घोड़े जुते थे। उस फिटन पर सवार होकर हम लोग पंडित मोतीलालजी के घर, आनन्द भवन, गए। दोनों महिलाओं को एक कमरे में ठहराया गया और उसके बगल के कमरे में मुझे ठहराया गया। बहुत साल बाद जब मैं आनन्द भवन दोबारा गया तो इन कमरों को देखते ही पहचान गया। इसके बाद तो कांग्रेस के काम से तथा सभाओं के सिलसिले में बराबर आनन्द भवन आना-जाना लगा रहा। हम लोग आनन्द भवन दोपहर को पहुंचे, परन्तु पंडित मोतीलाल से हमारी मुलाकात शाम तक हो पाई। मैंने पहली बार अंग्रेजी ढंग से सजा-सजाया एक मकान देखा। बनारस में थियोसॉफिकल सोसायटी के सदर मुकाम पर श्रीमती बीसेंट तथा अन्य बहुत से अंग्रेज़ रहते थे, जिनसे हमारे परिवार के बड़े तथा घनिष्ठ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। पर वे सब अपने ढंग से न रहकर भारतीय ढंग में रहते थे।

परिवार के साथ, (बैठे हुए) मोतीलाल नेहरू, बृजलाल, (खड़े हुए, बायें से दाहिने) डा. किशनलाल, जवाहरलाल, जीवनलाल काटजू और डाक्टर एस. एस. नेहरू

मुझे याद है कि हमारी जब पहली मुलाकात हुई तो पंडित मोतीलाल ने कांग्रेस की चर्चा छेड़ दी, जिसका इक्कीसवां अधिवेशन एक महीने पहले, दिसम्बर में बनारस में श्री गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता में हुआ था। मोतीलालजी ने मेरे साथ की महिलाओं से पूछा कि आप क्या कांग्रेस के जलसों में शरीक हुई हैं। वे उनमें शरीक हो चुकी थीं और मैं भी शरीक हो चुका था। मैं बहुत ही थोड़ी उम्र में राजनीतिज्ञ बन गया था, सो भी गरम विचारों वाला, जिससे मेरे घर के बड़े लोग परेशान ही नहीं, नाराज़ भी थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि पंडित मोतीलालजी ने कहा था, "क्या आप लोगों ने लाला लाजपतराय का बेवकूफी का भाषण सुना था?" लाला लाजपतराय कांग्रेस अधिवेशन से कुछ ही दिन पहले इंगलैंड से लौटे थे और अधिवेशन में ब्रिटिश शासन के खिलाफ बड़े ज़ोरों से बोले थे। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि वंग-भंग (अक्तूबर १९०५) के कारण, उस समय देश में गहरा राजनीतिक क्षोभ फैला हुआ था और वायसराय, लार्ड कर्जन का बहुत ही स्वेच्छाचारितापूर्ण शासन कुछ ही समय पहले समाप्त हुआ था। प्रिंस ऑफ वेल्स तथा प्रिंसेज ऑफ वेल्स, जो बाद में राजा जार्ज पंचम और रानी मेरी हुए, देश का दौरा कर रहे थे। मैं यह बता दूं कि मेरी सहानुभूति लाला लाजपतराय के साथ थी, जिन्होंने कांग्रेस अधिवेशन में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के साथ ब्रिटिश युवराज का बायकाट करने की बात कही थी, परन्तु अध्यक्ष श्री गोखले ने उनसे अपील की थी कि इस तरह की बातचीत खुल्लमखुल्ला न कही जाए।

मोतीलालजी ने लाला लाजपतराय के सम्बंध में जो कुछ कहा, उससे मैं बड़ा नाराज़ हुआ। जब हम लोग अपने कमरे में वापस लौटे तो इस सम्बंध में मेरी उन महिलाओं से गरमागरम बहस हुई। मिस डेवीज, जो उम्र में छोटी थीं, पंडित मोतीलाल के विचारों से पूरी तरह सहमत थीं। बड़ी मिस विलसन ने बीच-बचाव करके मुझे शांत किया, ताकि कोई अप्रिय स्थिति न उत्पन्न हो। दूसरे दिन सुबह हम फिर पंडित मोतीलालजी के शानदार ड्राइंग-रूम में ले जाए गए, ताकि हम उनसे तथा उनके परिवार वालों से मिल सकें। पंडित मोतीलाल ने मेरे साथ अंग्रेज़ महिलाओं को बताया कि वह अपने लड़के जवाहरलाल को हैरो के प्रसिद्ध स्कूल में दाखिल करने के लिए कुछ महीने पहले इंगलैंड गए थे। पंडित मोतीलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू भी वहां मौजूद थीं। उनकी सबसे बड़ी लड़की स्वरूप कुमारी को भी (बाद में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित), जो उस समय ७ साल की थीं, हमसे मिलाया गया। श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू विनम्रता और उदारता की मूर्ति थीं। अपनी लड़की से मेरा परिचय कराते हुए उन्होंने कहा, "यह तुम्हारे भाई हैं। यह तुम्हारे भाई के गहरे दोस्त हैं।" सच तो यह है कि उस समय तक मुझे जवाहरलाल के बारे में कुछ पता नहीं था। इस पहली भेंट की स्मृति आज इतने वर्ष बीत जाने पर भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। नेहरू-परिवार से यह मेरी पहली भेंट थी, जिनसे १२ वर्ष बाद मेरे बहुत घनिष्ट सम्बंध स्थापित होने वाले थे।

लंदन में

१९११ में, श्रीमती बीसेंट की इच्छा से मेरे पिताजी ने मुझे उनके साथ इंगलैंड भेज दिया। मैंने उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी. ए. परीक्षा पास की थी। मैं कैम्ब्रिज में ट्रिनिटी कॉलेज में कुछ कठिनाई से दाखिल हुआ, क्योंकि इस महान् विश्वविद्यालय में भारतीय विद्यार्थियों को प्रवेश आसानी से नहीं मिलता था। पहले सत्र के बाद मैंने बड़ा दिन लंदन में बिताया। इलाहाबाद के पंडित भगवानदीन दुबे उन दिनों लंदन में वकालत कर रहे थे। वह अपनी धर्मपत्नी के साथ हैम्पस्टेड के शाकाहारी बोर्डिंग हाउस के पास ही रहते थे। इस बोर्डिंग हाउस की स्थापना शाकाहारी भारतीय विद्यार्थियों के लाभार्थ श्रीमती बीसेंट ने की थी। शाकाहारी होने के कारण मैं भी इसी बोर्डिंग हाउस में ठहरा करता था। दुबे-परिवार भी शाकाहारी था। लन्दन पहुंचने के बाद ही दुबेजी की धर्मपत्नी ने

एक दिन शाम को मुझे ब्यालू के लिए बुलाया। वह शायद इस निमंत्रण की बात भूल गयी थीं। जब मैं उनके घर पहुंचा तो सारा परिवार ब्यालू कर चुका था। पति-पत्नी ब्यालू करने के बाद ड्राइंग रूम में बैठे गप-शप कर रहे थे। मैं बड़ी परेशानी में पड़ गया। मैं शायद उनसे यह नहीं कह पाया कि मैं ब्यालू करने आया हूं। उसी समय जवाहरलाल वहां आए। वह सिर से पैर तक अंग्रेजी पोशाक में थे। यह मेरी उनकी पहली मुलाकात थी। हमारा एक-दूसरे से परिचय कराया गया। दिसम्बर की रात थी, बड़ी ठंड पड़ रही थी। वह आतिशदान के पास पीठ करके खड़े थे। मेरे सौभाग्य से वह स्वयं कुछ देर बाद बोले, "बड़ी भूख लगी है, कुछ खाना मंगाओ।" इस पर कमरे में कुछ हल्का खाना लाया गया। मैंने बड़ी प्रसन्नता से खाया। जब हम लोग घर से बाहर निकले तो आधी रात बीत चुकी थी। हैम्पस्टेड लन्दन के बहिर्भाग में एक छोटी-सी बस्ती है। उस समय वहां पर कोई बस नहीं चल रही थी और कोई टैक्सी भी नहीं दिखायी पड़ती थी। मैंने जवाहरलाल से पूछा, "आप कैसे जायेंगे। रात काफी बीत गयी है और इस समय कोई सवारी भी मिलती नहीं दिखायी पड़ती।" उन्होंने उत्तर दिया, "मेरे बारे में चिन्ता मत करिए। मैं अपने ठिकाने पहुंच जाऊंगा।" उस समय भी उनमें उतना ही आत्मविश्वास था, जितना बाद में प्रकट हुआ।

स्वदेश वापस

जवाहरलाल १९१२ में स्वदेश लौटे, और मैं १९१४ में। १९१५ में इलाहाबाद में एक कान्फ्रेंस बुलाई गयी। युक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) में गवर्नर की एक एक्जीक्यूटिव कौंसिल गठित करने और उस पर एक भारतीय सदस्य की नियुक्ति करने का वादा किया गया था। बाद में यह वादा पूरा नहीं किया गया। इसी का विरोध करने के लिए यह कान्फ्रेंस बुलाई गयी थी। आज ये सब बातें कितनी हास्यास्पद लगती हैं। अगर मैं भूलता नहीं तो सर सुन्दरलाल, जो इलाहाबाद के बहुत बड़े वकील थे, भारतीय सदस्य नियुक्त होने वाले थे। इलाहाबाद के मेयो हाल में जो डेलीगेट इकट्ठे हुए थे, उनमें बड़ा जोश था। मैं वहां जवाहरलाल से दूसरी बार मिला। जब मैंने उन्हें टोक कर याद दिलाया कि हम लोग लन्दन में मिल चुके हैं तो उन्होंने कहा कि मुझे यह तो याद आता है कि हम लोग कहीं मिल चुके हैं, परन्तु यह याद नहीं आ रहा था कि कहां मिले थे। वह तथा उनके दूसरे नौजवान साथी डेलीगेटों में ठंडा शर्बत बांट रहे थे, क्योंकि सड़ी गर्मी के दिन थे। कान्फ्रेंस की सदारत महाराज महमूदाबाद कर रहे थे। पंडित मोतीलाल तथा प्रांत के दूसरे प्रमुख व्यक्ति भी वहां उपस्थित थे। मैं यहां इस घटना का उल्लेख सिर्फ यह दिखाने के लिए कर रहा हूं कि जवाहरलाल कैसे शुरू से हर काम में हाथ बंटाया करते हैं। काम चाहे छोटा हो, चाहे बड़ा, वह उससे दूर नहीं भागते थे। वह हाथ में ट्रे लिए हुए स्वयं डेलीगेटों को शरबत के गिलास दे रहे थे। इस काम को वह अपनी शान के खिलाफ नहीं समझते थे। मैंने इतने वर्षों के सम्बंध में उन्हें कभी झूठी शान करते नहीं देखा।

घनिष्ठ सम्पर्क

मैं नेहरू-परिवार से १९१७ में घनिष्ठ सम्पर्क में आया। उस समय मैं कोई काम-धाम नहीं कर रहा था और यह समझ में नहीं आ रहा था कि क्या काम करूं। मैंने श्री सी. वाई. चिंतामणि को, जो मेरे परिवार के मित्र थे और 'लीडर' के सुप्रतिष्ठित सम्पादक थे, लिखा कि मैं अपने खर्च से इलाहाबाद में रहकर आपके अधीन पत्रकारिता की शिक्षा ग्रहण करना चाहता हूं। उन्होंने मेरी विनती मान ली और मैं उनके पास चला गया। उन दिनों मैं 'लीडर' में काफी लिखा करता था और इलाहाबाद में कई व्यक्तियों का ध्यान मेरे लेखों की ओर आकर्षित हुआ। सम्पादकीय लेखों पर लेखक का नाम नहीं दिया जाता और मेरे लेख भी गुमनाम छपते थे। परन्तु मेरा खयाल है कि कई लोग पूछते रहते थे कि इन लेखों का लेखक कौन है। मैंने उन दिनों 'लीडर' में अनेक पुस्तकों की आलोचनाएं भी लिखीं।

मैं प्रतिदिन में दो-तीन कालम सम्पादकीय लिखता था। पंडित मोतीलाल नेहरू कचहरी से उठने के वाद, राजनीतिक मामलों पर श्री सी. वाई. चिंतामणि से वातचीत करने के लिए 'लीडर' के दफ्तर आया करते थे। सर तेजवहादुर-सप्रू भी अक्सर आया करते थे। पंडित जवाहरलाल अक्सर झुटपुटा होने के वाद आया करते थे और पंडित कृष्णाराम से, जो लीडर के मुख्य सहायक स्तम्भ थे, मुझसे और अन्य लोगों से घंटों बातें किया करते थे। सर माइकेल ओ'ड्वायर उस समय पंजाब के लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर थे और बड़े स्वेच्छाचारी थे। वह भारतीय राजनीतिज्ञों को बड़ी खरी-खोटी सुनाया करते थे। भारतीयों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं से उनको कोई हमदर्दी नहीं थी। उन दिनों श्रीमती बीसेंट और उनके साथ ही श्री अरंडेल और श्री वाण्डिया को नजरवंद कर रखा गया था। श्रीमती बीसेन्ट ने होमरूल लीग की स्थापना की थी और इलाहावाद में उसकी जो शाखा थी, उसके मंत्री जवाहरलाल थे। वह अपने काम में बड़े चुस्त थे। श्रीमती बीसेंट की नजरबन्दी का विरोध करने के लिए अन्य स्थानों की भांति इलाहावाद में भी सभा आयोजित की गयी। पंडित मोतीलाल उसकी अध्यक्षता करने वाले थे। इलाहावाद में तत्कालीन नौजवान ज़िला मजिस्ट्रेट ने उन्हें एक अशिष्टतापूर्ण पत्र लिखा, जिसमें बहुत-सी बुज़ुर्गाना सलाह दी गयी थी। चारों तरफ बड़ा जोश फैला था। सभा में बड़े गरम भाषण दिये गए। आशा की जाती थी कि कुछ गिरफ्तारियां होंगी, पर हुई नहीं। यह तय हुआ कि सभा में पास किये गये प्रस्तावों की नकलें सरकार माइकेल ओ'ड्वायर को व्यक्तिगत रूप से भेजी जाएं। मैंने श्री चिंतामणि को दस रुपये का नोट दिया और कहा कि सर माइकेल ओ'ड्वायर को जो तार भेजा जायगा उसके खर्च के लिए यह नोट है। उन्होंने वह नोट शायद जवाहरलाल को दे दिया। जवाहरलाल ने मुझे धन्यवाद का पत्र लिखा, साथ ही यह भी लिखा कि यदि इसी प्रकार की उदारता अन्य लोग भी दिखाएं तो उनका काम बहुत आसान हो जाए। मेरे नाम लिखा गया उनका यह पहला पत्र था। इसके वाद हम दोनों ने एक-दूसरे को हज़ारों पत्र लिखे हैं। श्रीमती बीसेंट की होमरूल लीग के ज़माने में हम लोगों का सम्पर्क पिछले ४३ साल से अटूट बना हुआ है। जवाहरलाल से मुझे जो स्नेह, उदारता और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।

इंडिपेन्डेंट

'लीडर' से मेरा सम्बन्ध लगभग दस महीने रहा। इसके बाद मैं घर बनारस लौट आया। १९१८ में मैं इलाहावाद गया था। मुझे पता नहीं है कि कैसे पंडित मोतीलालजी को मालूम हो गया कि मैं वहां हूं। मुझे उनका एक अत्यन्त स्नेहपूर्ण पत्र मिला। उसमें मेरे लिए ऐसी भाषा का व्यवहार किया गया था, जिसकी मैं उनसे आशा नहीं करता था, क्योंकि वह मेरे बुज़ुर्ग थे। उन्होंने लिखा था कि यदि मैं बनारस लौटने से पहले उनके घर आकर उनके साथ चाय-पान करूं तो वे इसे अपना गौरव समझेंगे। इस पत्र ने मेरे मर्म को छू लिया और उनकी इच्छानुसार मैं उनके घर गया। मुझे पता नहीं था कि उन्होंने मुझे किस लिए बुलाया है। वहां जाने पर उन्होंने मुझे बताया कि वह इलाहावाद से एक दैनिक पत्र निकालना चाहते हैं, क्योंकि 'लीडर' उन्नत विचारों का पत्र नहीं है। वह उसकी नीति से सन्तुष्ट नहीं हैं। उन्होंने मुझे नये पत्र के सम्पादकीय विभाग में सम्मिलित होने का न्यौता दिया। मुझे कुछ भय लगा, क्योंकि मेरा खयाल ऐसा हुआ कि शायद नये पत्र का पूरा भार मुझे सौंपा जाएगा, जिसके लिए मैं तैयार नहीं था। इस पत्र का नाम 'इंडिपेन्डेंट' रखा गया और उसका प्रकाशन फरवरी १९१९ से शुरू हुआ। पंडित मोतीलालजी ने सैयद हुसेन को, जो उस समय 'बाम्बे क्रानिकल' में काम करते थे, उसका सम्पादक बनाया और मुझे उनका सहायक बनाया। मेरा विश्वास है कि व्यवस्था यह की गई थी कि श्री सैयद हुसैन चूंकि बम्बई में रहकर पत्रकारिता का भारी अनुभव रखते हैं, इसलिए वह पत्र को व्यवस्थित रूप दे दें। उसके बाद संभवतः मैं उसका भार सम्हाल लूं। मुझे रात में काम करने का कोई अनुभव नहीं था और अब भी रात में जाग नहीं पाता। श्री सैयद हुसैन रात-रात भर काम करने के आदी थे। वह रात में एक बजे

दफ्तर आते थे और सुबह ८-९ बजे आनन्द भवन जाते थे, जहां वह ठहरे हुए थे। 'लीडर' की भांति मैं उसके लिए भी विविध विषयों पर लेख देने लगा। किन्तु मैंने पाया कि मेरे लेख सम्पादक की मेज़ से रद्दी की टोकरी में चले जाते हैं।

श्री सैयद हुसैन ने मुझसे कहा कि मैं अपने लेख उनके पास भेजता रहूं। वे देखेंगे कि उनका क्या उपयोग किया जा सकता है। परन्तु मैंने जो कुछ लिखा, उसका वह शायद ही कोई उपयोग कर पाए। इसके वाद मेरे ज़िम्मे प्रूफ पढ़ने का भार आ पड़ा। मैं रात १० बजे से प्रातः ६ बजे तक प्रूफ पढ़ता रहता था। यह काम मेरे लिए बड़ा थका देने वाला था। कुछ समय तो मैं इसमें जुटा रहा, परन्तु मैं दो महीने से आगे गाड़ी नहीं घसीट सका। मैंने पंडित मोतीलालजी से कहा कि इस काम से मुझे मुक्त कर दिया जाय। उन्होंने मुझे मुक्ति दे दी। 'इंडिपेन्डेंट' का संगठन शुरू से ही त्रुटिपूर्ण रहा। हालांकि पंडित मोतीलालजी और जवाहरलाल जब-तब दफ्तर में आया करते थे और मोहनलाल नेहरू तथा श्यामलाल नेहरू, दोनों भाई उसके लिए कड़ी मेहनत करते थे, किन्तु पत्र की शुरुआत ही कमज़ोर नींव पर हुई और वह कभी उभर नहीं पाया। कुछ साल चलने के वाद वह बन्द हो गया, जिससे सबको बड़ा खेद हुआ। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास साबित हुआ और इसमें पंडित मोतीलालजी को अपनी जेब से काफी रुपया खर्च करना पड़ा। वह बड़े ही दृढ़ संकल्प के व्यक्ति थे और जब किसी कार्य को हाथ में ले लेते थे तो फिर उसके लिए चाहे जितना समय और धन क्यों न व्यय करना पड़े, वह पीछे नहीं हटते थे। पत्रकारिता से उनका कोई परिचय नहीं था। यह उनका क्षेत्र नहीं था। कुछ समय बाद उन्होंने एक दूसरा साप्ताहिक निकालने का विचार किया (१९२६)। उसका नाम उन्होंने 'फ्रीडम' रखा और मुझे उसमें काम करने का न्यौता दिया। पर पत्र निकल नहीं पाया। मुझे याद है कि 'इंडिपेन्डेंट' से मुक्ति पाने के वाद, बनारस रवाना होने से पूर्व मैं पंडित मोतीलाल नेहरू से विदा लेने गया था। वह बड़ी अच्छी तरह मेरे साथ पेश आए। उन्हें मेरे जाने का रंज था, क्योंकि उन्होंने मुझे बुलाया था और उन्हें मुझसे बड़ी आशाएं थीं। मुझे याद है कि बातचीत के दौरान में उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं वहुत ही 'सावधान' व्यक्ति हूं। उन्होंने यह भी कहा था कि "मैं आदमी को देखते ही पहचान लेता हूं और उसका सही मूल्यांकन करता हूं। इसमें मुझसे कभी गलती नहीं होती।" मुझे इसमें भारी संदेह है कि उन्होंने अपने वारे में जो कुछ कहा, वह सही था। कम-से-कम मेरे सम्बन्ध में तो उन्हें निराशा हुई होगी और स्पष्ट है कि मेरे बारे में उनका मूल्यांकन सही नहीं उतरा। जब मैं चलने के लिए खड़ा हुआ तो वे भी खड़े हो गए। मैंने उन्हें किसी व्यक्ति के आने अथवा विदा लेने पर खड़े होते बहुत कम देखा था। इसलिए उनके इस व्यवहार ने मेरे अन्तर को स्पर्श किया और मुझे आश्चर्य भी हुआ। उन्होंने मेरे दोनों हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "मैं उम्मीद करता हूं कि हम दोस्त की हैसियत से विदा ले रहे हैं।" मैं अत्यन्त भावाभिभूत हो गया और उन्हें आश्वासन दिया कि आपको जब कभी मेरी सेवा की आवश्यकता होगी, मैं उपस्थित हो जाऊंगा। वह बाहर से कठोर दिखाई पड़ते थे, लेकिन अन्दर से बड़े कोमल और स्नेही थे। वह दूसरों के भले और आराम का बहुत ध्यान रखते थे।

उदारता

पंडित मोतीलाल नेहरू बड़े ही उदार व्यक्ति थे और उनका आतिथ्य-सत्कार अपूर्व था। वह अपने सभी अतिथियों की बड़ी फिक्र रखते थे। एक बार मैं उनके निमंत्रण पर आनन्द भवन में ठहरा हुआ था। रात में लगभग १० बजे वह मेरे कमरे में आए और बोले, "तुम आराम से तो हो। कहो तो तुम्हारा पलंग बाहर बरामदे में लगवा दूं।" इस महान् व्यक्ति द्वारा इस प्रकार मेरे आराम की फिक्र किए जाते देखकर मैं द्रवीभूत हो गया। मैं उनका एक जूनियर वकील था और उनके नये आनन्द भवन में, जो महल जैसा था, सब तरह का आराम था। मेरा खयाल है कि उस पीढ़ी के बुजुर्ग लोग इसी प्रकार से आतिथ्य-सत्कार

करते थे। मैंने अपने पिताजी में भी यही गुण देखा था। यद्यपि वह संस्कृत के भारी पंडित थे, परन्तु सामाजिक व्यवहार में वह उर्दू का व्यवहार करते थे, जैसी कि पंडित मोतीलालजी करते थे। मैंने दोनों को समान शब्दों का भी व्यवहार करते पाया। यदि कमरे में उनके आते-जाते हुए हम बार-बार खड़े होते थे तो मैंने दोनों के मुंह से यही सुना, "इस कवायद की क्या ज़रूरत है।" रात को भोजन के बाद जब आराम करने का समय हो जाता तो मैंने दोनों के मुंह से यही सुना, "अब मजलिस बर्खास्त।" उस युग में उत्तर प्रदेश की संस्कृति मुस्लिम संस्कृति से पूर्णतया प्रभावित थी। मुझे याद है कि मेरे पितामह के बहुत से मुसलमान दोस्त थे और उनके पुस्तकालय में केवल फ़ारसी और अरबी की किताबें थीं। उस पीढ़ी के लोग बहुत थोड़ी हिन्दी जानते थे। आधुनिक हिन्दी का उस समय जन्म हो रहा था। हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही यद्यपि अपने-अपने धर्म का बड़ी दृढ़ता से पालन करते थे, तथापि उनमें बड़ा मेल-जोल था। दोनों एक-दूसरे के रीति-रिवाजों को जानते थे और उनका सम्मान करते थे। उनमें सच्ची मैत्री थी, दिखावट नहीं थी। दुर्भाग्य से बाद में ज़माना बदल गया और उनके जो नतीजे हुए, हम सब जानते हैं।

महासमिति की बैठक

१९२० की गर्मियों में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बहुत ही महत्वपूर्ण बैठक होने वाली थी। दिसम्बर १९१९ में लाहौर कांग्रेस की अध्यक्षता पंडित मोतीलालजी ने की थी। इस प्रकार वह कांग्रेस के अध्यक्ष थे। अप्रैल १९१९ में जलियांवाला बाग में जो कांड हुआ, उसने सारे देश को हिला दिया था और लोगों के हृदयों में घाव हो गये थे। १९१९ मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के अंतर्गत गठित कौंसिलों के चुनाव १९२० के उत्तरार्द्ध में अर्थात् दिसम्बर में होने वाले कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन से पहले होने वाले थे। यह फ़ैसला करना ज़रूरी था कि चुनावों के प्रति कांग्रेसजन क्या रवैया ग्रहण करें। उस समय पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजनदास, दोनों ही बिहार की डुमरांव रियासत के मुकदमे की पैरवी कर रहे थे। गर्मियों में मोतीलालजी ज़्यादातर बनारस में रहते थे और होटल डिपेरिस में ठहरकर मुकदमे की मिसिलों का अध्ययन करते थे। मुझे पता नहीं है कि इस कार्य के लिए उन्होंने बनारस को क्यों चुना था। हो सकता है कि बनारस एक सुविधाजनक स्थान रहा हो, जहां से डुमरांव शीघ्रता से और आसानी से जाया जा सकता है, और शायद डुमरांव के लोग भी मुकदमा समझाने के लिए इलाहाबाद की बनिस्बत यहां आसानी से आ-जा सकते थे। एक दिन सुबह जब मैं अपने कमरे में बैठा हुआ काम कर रहा था तो फाटक से पंडित मोतीलालजी को भीतर घुसते देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैं उनकी अगवानी के लिए दौड़ पड़ा। मैं समझ नहीं पाया कि पंडितजी किस काम से मेरे घर आये हैं। मेरे पिताजी भी उस समय घर में थे। वे भी उनका स्वागत-सत्कार करने के लिए कमरे में आ गए।

पंडित मोतीलालजी की इच्छा थी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक बनारस में हो। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या इसका इंतज़ाम कर सकता हूं? उन्होंने कहा कि इससे मुझे और श्री दास, दोनों को सुविधा होगी। मैंने खुशी-खुशी यह ज़िम्मेदारी ले ली और कुछ समय बाद थियोसॉफिकल सोसाइटी के हॉल में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। बैठक में तय हुआ कि चुनाव से पहले कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन किया जाए। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उसके अध्यक्ष होने वाले थे। वह बनारस की बैठक में उपस्थित थे। परन्तु इस बीच उनकी मृत्यु हो गई और कलकत्ता में होने वाले कांग्रेस के विशेष अधिवेशन की अध्यक्षता लाला लाजपतराय ने की। वहां तय हुआ कि नये चुनावों का बायकाट किया जाए, जिससे पंडित मोतीलालजी और देशबंधु दास, दोनों को दुःख हुआ। पंडित मोतीलालजी के चले जाने पर मेरे पिताजी ने मुझसे कहा, "मुझे ताज्जुब है, वह कैसे यहां तक चले आये। वह बड़े

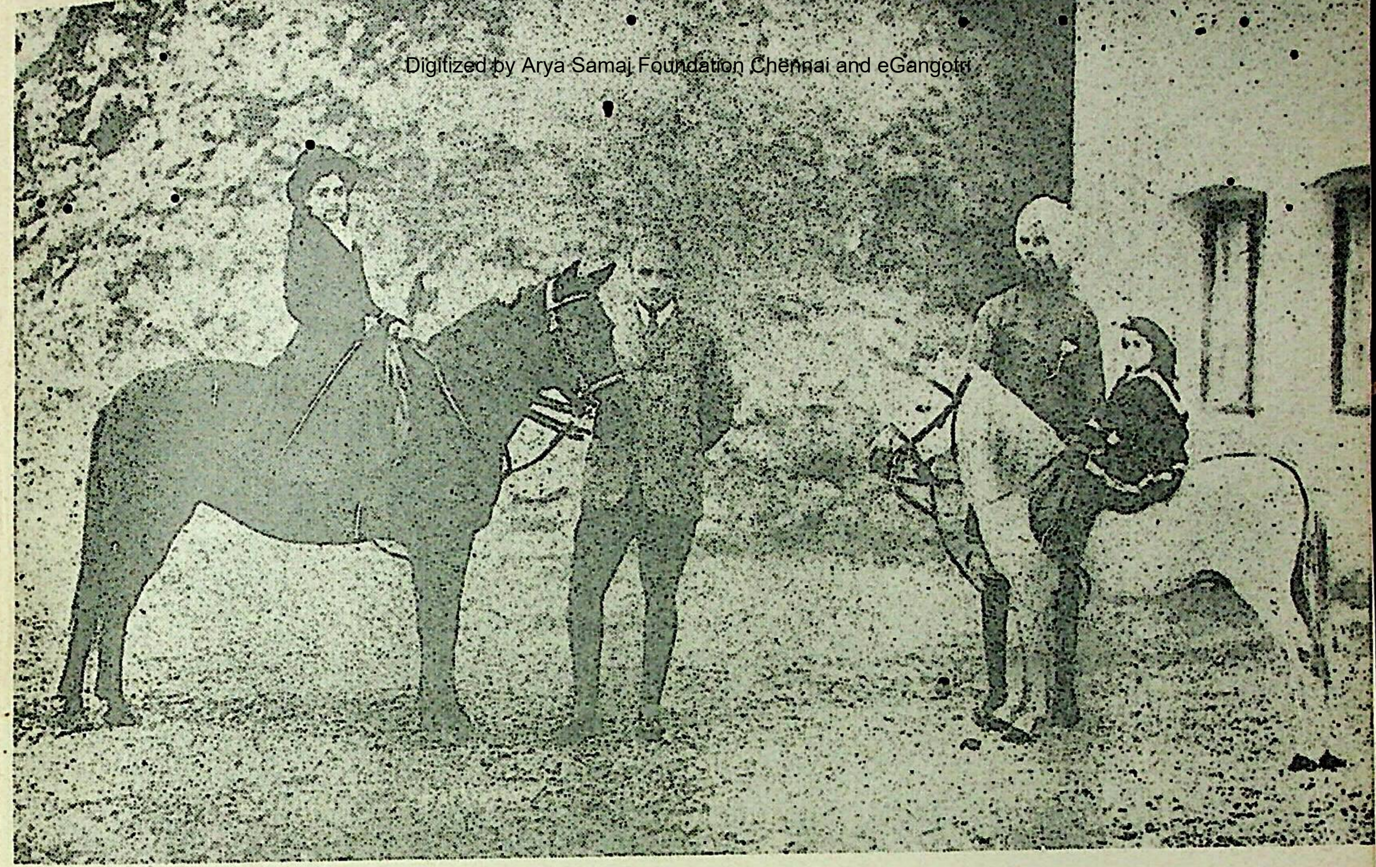

मोतीलाल नेहरू, विजयलक्ष्मी और कृष्णा को घुड़सवारी की शिक्षा दे रहे हैं

अभिमानी व्यक्ति हैं। मैं उन्हें बहुत वर्षों से जानता हूं।" मुझे तब तक पंडित मोतीलालजी के चरित्र के इस पहलू का परिचय नहीं था। मैं उनसे उम्र में बहुत छोटा था और हमेशा उनका बड़ा सम्मान करता था। मेरी उम्र के अन्य नौजवान भी उनका इसी रीति से सम्मान करते थे। वह भी हमारे साथ वैसा ही व्यवहार करते थे, जैसा छोटों के प्रति किया जाता है। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि वह मुझको भी जवाहरलाल की तरह अपना लड़का मानते हैं और मैं जब इलाहाबाद आया करूं तो उनके पास ठहरा करूं। यह विचित्र बात है कि मेरे पिताजी ने जवाहरलाल के सम्बन्ध में भी यही बात कही। उन्होंने २५ बरस पहले की एक घटना सुनाई। १९वीं शताब्दी के अंतिम दशक में मेरे पिताजी इलाहाबाद में डिप्टी-मजिस्ट्रेट थे। वह अपने पिता की इच्छावश सरकारी नौकरी कर रहे थे और पिता का देहांत होते ही सरकारी नौकरी त्याग दी। उन्होंने पूरी घटना इस प्रकार बताई।

अभिमानी व्यक्ति

इलाहाबाद में जब वह सरकारी नौकरी करते थे तो उनके दो गहरे दोस्त हो गए थे श्री ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती और श्री (बाद में सर) अकबर हैदरी। तीनों को थियोसॉफी से प्रेम था। श्री ज्ञानेन्द्रनाथ और मोतीलालजी भी गहरे दोस्त थे। पिताजी ने बताया कि एक दिन वह और ज्ञानेन्द्रनाथ पंडित मोतीलालजी के मकान के फाटक से गुजर रहे थे। श्री चक्रवर्ती ने मेरे पिताजी से कहा, "आइए पंडित

मोतीलालजी से मिल लें।" मेरे पिताजी सहमत हो गए और दोनों अंदर चले गए। कुछ समय बाद पंडित मोतीलालजी मेरे पिताजी की तरफ मुड़े और बोले, "डिप्टी साहब, आपने मुझसे मिलने के लिए यहां तशरीफ लाकर बड़ी इनायत की। लेकिन यह उम्मीद मत करिएगा कि अब मैं भी आपसे मिलने के लिए आपके मकान पर आऊंगा।" मेरे पिताजी ने कुछ नाराज़ होकर जवाब दिया, "वकील साहब, आप परेशान मत होइए। मैं आपसे मिलने के लिए यहां नहीं आया। मैं तो अपने दोस्त ज्ञानेन्द्रनाथ के साथ था। असल में मिलने के लिए तो वह आए हैं।" यद्यपि मेरी हिम्मत नहीं पड़ी कि मैं इस घटना के बारे में पिताजी से छान-बीन करूं—उस ज़माने में पिताजी की बड़ी इज़्ज़त की जाती थी, तथापि मुझे संदेह है कि इस घटना के बाद मेरे पिताजी ने तय कर लिया कि अब वे कभी पंडित मोतीलालजी के घर नहीं जाएंगे। जब वह हमारे घर आए तो उनका यह निश्चय भंग हो गया। सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के निमित्त धन संग्रह के लिए वह जब श्रीमती एनी बीसेंट के साथ दौरे पर जाया करते थे तो अक्सर इलाहाबाद भी जाते थे। उन दिनों श्रीमती बीसेंट हमेशा पंडित मोतीलाल नेहरू के यहां ठहरा करती थीं। जब दोनों प्रयाग रेलवे स्टेशन पर उतरते और चर्च रोड (अब मोतीलाल नेहरू मार्ग) जाते थे तो मेरे पिताजी रास्ते में बेलवेडियर हाउस उतर जाया करते थे। वहां हमारे एक निकट सम्बन्धी रहते थे। बेलवेडियर हाउस आनंद भवन के बिल्कुल पास है। यद्यपि श्रीमती बीसेंट पिताजी पर हमेशा ज़ोर देती थीं कि वह उनके साथ पंडित मोतीलालजी के यहां ठहरें, वह बड़ा आतिथ्य-सत्कार करते हैं, लेकिन वह हमेशा इनकार कर देते थे। लेकिन जब मोतीलालजी हमारे मकान, सेवाश्रम आए तो वह भी उनके मकान पर जाने लगे और उनके यहां ठहरने लगे। वह स्वराज्य-पार्टी के काम से तथा स्वराज्य की सही परिभाषा तैयार करने के लिए अक्सर उनके पास जाया करते थे। विजयलक्ष्मी पंडित के विवाह में भी वह स्वयं गए, हालांकि इसके बाद जो शादियां हुईं, उनमें परिवार की तरफ से मैं ही गया।

गया अधिवेशन

इसमें संदेह नहीं कि पंडित मोतीलाल नेहरू बड़े अभिमानी व्यक्ति थे। कांग्रेस के गया अधिवेशन (दिसम्बर १९२२) में परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों—कौंसिल-प्रवेश के समर्थकों (उस समय कौंसिलों के दूसरे चुनाव होने वाले थे) और कौंसिलों का बायकाट जारी रखने के समर्थकों में बड़ी लम्बी बहस चली, यहां तक कि इस प्रश्न पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को फैसला ले लेने का मौका देने के लिए कांग्रेस का खुला अधिवेशन बार-बार स्थगित किया गया। कांग्रेस का यह अधिवेशन सबसे लम्बा चला। अध्यक्ष, देशबंधु चित्तरंजनदास और पंडित मोतीलाल नेहरू, दोनों ही थककर चकनाचूर हो गए और अत्यन्त क्रुद्ध हो गए। एक रात लगभग दो बजे जब एक सदस्य बोलने के लिए खड़ा हुआ तो श्री दास ने कहा, "हां, बोलिए, अभी तो रात बहुत बाकी है।" पंडित मोतीलालजी कभी खत्म न होने वाले भाषणों से बड़े नाराज़ हुए, क्योंकि इन भाषणों की वजह से सारा काम रुका हुआ था। वह बोले, "मैं आप लोगों को बता दूं कि मैं यहां या बाहर के अन्य किसी व्यक्ति को अपना नेता नहीं मानता।" सुना तो यह गया कि उन्होंने एक बार एक आदमी से यहां तक कह दिया कि मैं अपने से बड़ा किसी को नहीं मानता और मुझे ताज्जुब होता है कि मैंने कैसे गांधीजी को अपने से बड़ा मान लिया। मैं नहीं कह सकता कि यह सच है, परन्तु ऐसा मुझसे कहा गया। मुझे स्वयं याद है कि वर्किंग कमेटी की बैठक से बाहर निकलने पर उन्होंने मुझे देखकर कहा, "मैंने जो सही समझा, कह दिया। अब फैसला गांधीजी के हाथ में है।" फरवरी १९३० में जब वह वर्किंग कमेटी की बैठक में भाग लेने के लिए अहमदाबाद जा रहे थे तो उन्होंने मुझसे रास्ते में ट्रेन में कहा कि नमक-कानून तोड़ने की बात बिलकुल वाहियात है। यही बात उन्होंने दूसरे दिन एक सभा में कह दी, जब गांधीजी ने नमक सत्याग्रह शुरू करने का सुझाव रखा। गांधीजी का जादू-भरा प्रभाव उन पर भी उतना ही था, जितना अन्य लोगों पर। वह स्वयं बड़े उदारमना थे। मुझे याद

है कि एक बार मेरी उनसे थोड़ी झड़प हो गई, किन्तु बात वहीं रफा-दफा हो गई। उन्होंने कहा कि मुझसे मुहब्बत करने वाले जूनियर लोग क्या कहते या करते हैं, इस पर मैं ध्यान नहीं देता। यह बात सन् १९२३ के चुनाव-आंदोलन के समय की है, उस समय परिस्थिति हमारे अनुकूल नहीं थी, इसलिए यह बहुत ज़रूरी था कि सब छोटे और बड़े मिलकर काम करें। हमारे लिए वह पहला चुनाव था। स्वराज्य-पार्टी को चुनाव लड़ने की इजाज़त दे दी गई थी, परन्तु बहुत से कट्टर कांग्रेसजन उसमें भाग नहीं ले रहे थे।

आतिथ्य-सत्कार

पंडित मोतीलालजी के आतिथ्य-सत्कार की सीमा नहीं थी। छोटे-बड़े सबका वह खुले दिल से स्वागत करते थे। उनका खाने का कमरा अंग्रेजी ढंग से सजा था। देहात से आने वाले बहुत कांग्रेसजनों को, जो खानपान का अंग्रेज़ी तरीका नहीं जानते थे, वह वहीं बिठाकर चाय पिलाते थे तथा खाना खिलाते थे। मुझे उनके साथ अनगिनत बार खाने का मौका मिला। कभी-कभी जब मेरे साथ के अतिथि केले अथवा संतरे का छिलका फर्श पर फेंक देते थे तथा मेज़ गंदी कर देते थे तो मुझे झुंझलाहट हो आती थी। पंडित मोतीलालजी इन बातों की तरफ ध्यान नहीं देते थे, क्योंकि मैंने उनको कभी खीझते नहीं देखा। एक बार जब उनके सामने अंडा लाया गया तो मेज़ पर बैठे एक व्यक्ति ने पूछा, "पंडितजी, आप क्या अंडा खाते हैं? पंडितजी ने हँसकर जवाब दिया, "अभी इसकी मां भी आती होगी।" इसके बाद एक प्लेट में मुर्गी का गोश्त लाया गया। उन दिनों एक प्रकार का पवित्रतावादी दृष्टिकोण चारों ओर व्याप्त था और कांग्रेसजन न तो गोश्त खाते थे और न शराब हाथ से छूते थे। हम लोगों को थालों में शाकाहारी भोजन परोसा जाता था। जब कभी मैं उनके साथ मेज़ पर बैठकर खाता था तो वह परोसने वालों से कहते थे कि इनके लिए 'वैष्णवी खाना' लाओ। निरामिष भोजन के लिए 'वैष्णवी' शब्द का प्रयोग मैंने पहले-पहल उनके यहां सुना। वैष्णव तथा जैन लोग शाकाहारी होते हैं। कश्मीरियों में इक्का-दुक्का लोग शाकाहारी होते हैं। वे लोग समझते हैं कि जो लोग शाकाहारी होते हैं वे सब प्रायः वैष्णव होते हैं। पंडितों के अनुसार वे कश्मीर में जाकर बसने वाले सारस्वत ब्राह्मण थे, जो मांस खाते हैं। मोतीलालजी अपने अतिथियों को बड़े प्रेम से भोजन कराते थे और अनेक किस्से-कहानी सुनाकर उनका मनोरंजन करते थे। वह बड़े ही विनोदप्रिय थे और जब खाने की मेज़ पर बैठते थे तो सारी चिन्ताएं भुला देते थे। वह बड़े प्रेम से भोजन करते थे और दूसरों को भी कराते थे। मुकदमों के सम्बन्ध में सलाह-मशविरा देने के लिए उनका समय निर्धारित था। इस निर्धारित समय के बाद वह पेशे की बात नहीं करते थे। मुझे याद है कि एक बार देहात से आया एक कांग्रेसजन उनसे बात कर रहा था। उसका कोई मुकदमा चल रहा था। पंडितजी को बहुत ही प्रसन्न मुद्रा में देखकर उसने सहसा अपने मुकदमे की बात छेड़ दी और उनसे सलाह मांगी। पंडितजी के चेहरे पर थोड़ा खिचाव आ गया। उन्होंने कुछ-कुछ विनोद-भरे और गंभीर स्वर में कहा कि मैं मुकदमों में फीस लिए बगैर सलाह नहीं देता। इस पर वह ग्रामीण कार्यकर्त्ता मौन हो गया।

कानूनी सलाह

सौभाग्य से, मुझे अपने जीवन में वकीलों अथवा कचहरी की शरण में जाने की आवश्यकता बहुत कम पड़ी है। यहां पर मुझे एक बात याद आती है, जिसका बयान करना उचित होगा। उक्त घटना के बाद मैं अच्छी तरह समझ गया कि मोतीलालजी अपने सार्वजनिक काम को अपने अदालत के काम से बिलकुल अलग रखते हैं। एक बार मुझे उनके एक कानूनी प्रश्न पर सलाह लेने की जरूरत पड़ी। उनको फीस देते हुए मुझे संकोच हो रहा था और मुझे उनकी कानूनी सलाह की भी आवश्यकता थी। घटना इस प्रकार थी। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक की बात है। मेरे भाई और मैं दोनों ही बनारस म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य थे। सार्वजनिक मार्गों पर ग़ैर-कानूनी तरीके से कब्जा कर लेने की प्रवृत्ति हमारे

यहां के शहरी लोगों में बहुत पाई जाती है। जिन लोगों के मकान सड़क के किनारे होते हैं, वे छोटे-मोटे अधिकारियों से गुप्त सौदा करके चुपचाप अपना मकान सड़क तक बढ़ा लेते हैं। मेरे भाई जिस वार्ड से म्युनिसिपेलटी के सदस्य चुने गए थे, उसमें एक सज्जन ने डंका की चोट पर अपना मकान सड़क पर बढ़ा लिया था। बोर्ड के ज्यादातर मेम्बर इस तरह के कामों पर आंख मूंद लेते हैं। इसी आधार पर वह मतदाताओं में लोकप्रिय बनते हैं, परन्तु मेरे भाई अपने सार्वजनिक कर्त्तव्य से च्युत होना पसन्द नहीं करते थे। उनका मत था कि यह कब्ज़ा ग़ैर-कानूनी है और उन्होंने म्युनिसिपल बोर्ड की सम्बन्धित कमेटी में उस ग़ैर-कानूनी कब्ज़े को हटाने का प्रस्ताव किया। मकान-मालिक ने न केवल म्युनिसिपल बोर्ड पर नालिश की, अपितु मेरे भाई को भी प्रतिवादी बना लिया। उसने उन पर ईर्ष्या-द्वेष रखने का अभियोग लगाया। अदालत ने मेरे भाई के विरुद्ध लगाए गए अभियोग को सही नहीं माना, किन्तु म्युनिसिपल बोर्ड के विरुद्ध अभियोग को सिद्ध मान लिया। इस मामले में मेरे भाई ने जो दिलचस्पी दिखाई, उस पर जज ने अपने फैसले में कुछ अनुचित और अनावश्यक टिप्पणी की। मेरे भाई ने और मैंने प्रकाशन के लिए एक पुस्तिका तैयार की, जिसमें इस मामले का पूरा विवरण दिया गया था और जज की टिप्पणी की आलोचना की गई थी। मैं पंडित मोतीलालजी की राय लेना चाहता था कि इस प्रकार की पुस्तिका को अदालत का अपमान तो नहीं माना जाएगा। मैंने कुछ डरते हुए यह मामला उनके सामने रखा। मुझे याद है कि मेरी सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा था, "किसी जज को इस बात का अधिकार नहीं है कि वह अपने फैसले में किसी व्यक्ति के विरुद्ध अनुचित टिप्पणी करे और उस व्यक्ति को एक सार्वजनिक वक्तव्य द्वारा अपनी सफाई देने से रोक दे।" मैंने जब उनसे कहा कि मैंने इस सम्बन्ध में एक पुस्तिका तैयार की है और मैं चाहता हूं कि आप उसे देख लें तो वह इसके लिए तैयार हो गए। उनसे कांग्रेस स्वराज्य-पार्टी तथा दूसरे मसलों पर घंटों बातचीत करने अथवा खाली गप-शप लगाने में मुझे कोई संकोच नहीं होता था, परन्तु इस प्रश्न पर बातचीत छेड़ने में मुझे बड़ा संकोच हुआ, क्योंकि यह एक अर्द्ध-कानूनी मसला था। उन्होंने मुझसे पहले लखनऊ में और फिर इलाहाबाद में मिलने के लिए कहा। अन्त में मैं ट्रेन से एक काफी तकलीफदेह यात्रा के बाद उनसे आनन्द भवन में भेंट कर पाया। उन्होंने मुझसे पुस्तिका पढ़कर सुनाने को कहा। उन्होंने उसमें केवल एक शब्द बदला और उसकी आलोचना में केवल इतना कहा कि मज़मून बहुत लम्बा हो गया है। उन्होंने उसे पास कर दिया। पुस्तिका छपी और कुछ हुआ नहीं। यदि मैं भूलता नहीं तो अपील में हाईकोर्ट ने म्युनिसिपल बोर्ड के फैसले को बहाल कर दिया। मैंने केवल इस मामले में उनसे एक प्रकार की कानूनी सलाह ली और पाया कि उनसे यह काम लेना सरल नहीं है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह इस देश के सबसे बड़े वकीलों में थे और उनकी बहस से सभी जज बहुत प्रभावित होते थे। वह बड़े ही मेहनती थे और अपने सभी मुकदमों का बड़ी सतर्कता से अध्ययन करते थे। डुमरांव के मुकदमे में जब वह हार गए और श्री चित्तरंजनदास जीत गए तो मुझे श्री चित्तरंजन-दास से बात करने का मौका मिला। उन्होंने मुझे बताया कि वह शुरू से जानते थे कि उनकी जीत होगी। उन्होंने बताया, "मोतीलाल बड़ी मेहनत करते हैं और सभी ब्योरे की बातें दिमाग़ में नक्श कर लेते हैं। मैं मुख्य-मुख्य बातें पकड़ता हूं और जीत जाता हूं।" मैं यह निर्णय इन दोनों बड़े वकीलों पर छोड़ता हूं कि मुकदमा जीतने का सर्वोत्तम तरीका क्या है। मोतीलालजी अपने मुवक्किलों के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार करते थे। वह फीस भले ही कस कर लेते हों, किन्तु एक बार जब वह मुकदमा हाथ में ले लेते थे तो उसे उसी प्रकार लड़ते थे, जिस प्रकार कोई अपना मुकदमा लड़ता है। उनके हाथ में अपना मुकदमा सौंप कर कोई भी मुवक्किल आराम से चादर तानकर सो सकता था। वह यह विश्वास कर सकता था कि मुकदमा जिताने के लिए मोतीलालजी अपनी ओर से कुछ उठा नहीं रखेंगे, जो कुछ उनसे हो सकेगा, अवश्य करेंगे। मैं अपने अनुभव से जानता हूं कि मुवक्किल लोग किस प्रकार वकील को घेरे रहते हैं। उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं पेशी की पुकार होने पर वकील साहब अदालत में जाना न भूल जाएं।

परन्तु, मोतीलालजी के साथ ऐसा नहीं था। वह जब कोई मुकदमा हाथ में लेते थे तो उसकी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लेते थे। उन्हें यह याद दिलाने की जरूरत नहीं पड़ती थी कि पेशी की अमुक तारीख है या आप अमुक काम कर दीजिए।

स्वराज्य पार्टी

मेरी समझ में पंडित मोतीलालजी ने जब देशबन्धु चित्तरंजनदास के साथ स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की तो अपने लिए सबसे बड़ा सिरदर्द मोल ले लिया। अगर मैं भूलता नहीं तो १९२२ में पार्टी की स्थापना के समय इसका बड़ा भारी-भरकम नाम रखा गया था: 'कांग्रेस खिलाफत स्वराज्य पार्टी'। इस पार्टी की स्थापना में उन्हें श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सरदार वल्लभभाई पटेल, डा० एम० ए० अंसारी आदि प्रमुख कांग्रेसजनों के संयुक्त विरोध का सामना करना पड़ा। महात्मा गांधी उस समय जेल में थे। पंडित मोतीलालजी का विश्वास था कि कांग्रेस सही रास्ते पर नहीं चल रही है और गांधीजी की अनुपस्थिति में उसका सही ढंग से नेतृत्व नहीं हो रहा है। उनका मत था कि कौंसिलों में प्रवेश करके वहां भी असहयोग का झंडा फहराना चाहिए। सत्याग्रह जांच-समिति के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने सारे देश का दौरा किया और सत्याग्रह-आन्दोलन पर एक रिपोर्ट पेश की। देशबन्धु चित्तरंजनदास, विट्ठलभाई पटेल, हकीम अजमल खां तथा अन्य नेताओं के साथ उनका भी यह दृढ़ विश्वास था कि अब समय आ गया है जब कांग्रेस को कौंसिलों पर कब्ज़ा जमा लेना चाहिए। परन्तु, उनके अन्य सम्मानित सहयोगियों का दूसरा मत था। सचमुच एक बड़ा कठिन प्रश्न उपस्थित हो गया था और सारे प्रश्न पर विचार करने के लिए विविध स्थानों पर अनेक सभा-सम्मेलन हुए। गया कांग्रेस के बाद भी अनिश्चित स्थिति बनी रही। पंडित मोतीलालजी की इच्छा से मैंने उनकी रिपोर्ट का हिन्दी में अनुवाद किया। स्वराज्य-पार्टी का अधिकांश काम मोतीलालजी के ज़िम्मे आ पड़ा था और वह देश को अपने विचारों के अनुकूल बनाने के लिए घोर परिश्रम कर रहे थे।

चुनाव संघर्ष

मैंने ऊपर सन् १९२३ के चुनावों का उल्लेख अत्यन्त संक्षिप्त रीति से किया है। यह चुनाव स्वराज्य-पार्टी की तरफ से लड़ा गया और इसके फलस्वरूप विविध स्थानों पर बड़ी कटुता उत्पन्न हुई। इसके बाद १९२६ में जो चुनाव लड़ा गया, वह और भी कटु था। मोतीलालजी के ज़िम्मे सारे देश के चुनाव का प्रबन्ध था। यद्यपि कांग्रेसजनों का प्रत्यक्ष रीति से चुनाव से सम्बन्ध नहीं था, किन्तु वे चुनाव में मदद दे रहे थे, क्योंकि स्वराज्य-पार्टी के सभी उम्मीदवार कांग्रेस के आदमी थे। कुछ कांग्रेसजनों का खयाल था कि वे स्वराज्य-पार्टी के विरोधी उम्मीदवारों का खुल्लमखुल्ला समर्थन कर सकते हैं, क्योंकि कांग्रेस ने अपने सदस्यों को स्वराज्य-पार्टी के उम्मीदवारों का समर्थन करने का कोई स्पष्ट आदेश नहीं दिया था। उस समय के अत्यन्त कटु चुनाव-संघर्षों में मेरा चुनाव-संघर्ष भी था। पंडित मदनमोहन मालवीय ने, पता नहीं क्या सोचकर, श्री घनश्यामदास बिड़ला को मेरे विरुद्ध खड़ा कर दिया था। मालवीयजी एक महापुरुष थे और इस घटना को तीन दशक बीत चुके हैं। आज मैं यह सोचना नहीं चाहता कि मालवीयजी ने किस विचार से बिड़लाजी को मेरे विरुद्ध चुनाव में खड़ा किया था। युक्त प्रान्त की मतदाता-सूची में उनका नाम तक नहीं था। उनका नाम शीघ्रता से एक अनुपूरक सूची में दर्ज कर लिया गया था। एक विचित्र बात यह हुई कि उनका नाम जिस निर्वाचन-क्षेत्र की मतदाता सूची में सम्मिलित था, वहां से वह उस समय की निर्वाचन नियमावली के अनुसार मेरे निर्वाचन-क्षेत्र के लिए खड़े हो सकते थे।

श्री बिड़ला ने एक और बड़ी गलती की। उन्होंने कई नामांकन-पत्र दाखिल किए और हरएक पर नये-नये चुनाव-एजेन्टों के नाम लिख दिए। नियमानुसार वह कई नामांकन-पत्र दाखिल कर सकते थे। हरएक नामांकन-पत्र का प्रस्ताव और अनुमोदक अलग-अलग हो सकता था। पर चुनाव-एजेन्ट अलग-अलग

नहीं हो सकते थे। मैंने इन बातों की ओर रिटर्निंग आफिसर का ध्यान दिलाया, जो ज़िले के कलेक्टर थे और भारतीय थे। वह स्वयं श्री बिड़ला के सक्रिय समर्थक थे, इसलिए उन्होंने मेरा आवेदन-पत्र अस्वीकृत कर दिया। यही नहीं, उन्होंने मुझसे कहा कि मैं श्री बिड़ला के विरुद्ध खड़ा न होऊं। इससे मैं झुंझला गया और मैंने उत्तर दिया कि इससे आपको कोई सरोकार नहीं हैं। आम चुनाव में जो दखल दे रहे हैं, उसका आपको कोई अधिकार नहीं है। परन्तु उस समय मेरे पास कोई इलाज नहीं था, रिटर्निंग-आफिसर का आदेश अंतिम होता था और उसके निर्णयों को चुनाव समाप्त होने पर चुनाव-याचिका के द्वारा ही चुनौती दी जा सकती थी। जवाहरलाल उस समय स्विटज़रलैंड में थे। उन्होंने वहां से मुझे लिखा कि मैं उम्मीद करता हूं कि चुनाव में तुम्हारी जीत होगी और तुम्हारे विरोधी की दौलत का मतदाताओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु मैं बहुत ही पस्त था। मतपत्रों की गणना के बाद चुनाव के नतीजे की घोषणा जब कलेक्टर के दफ्तर में की गयी तो मैं सीधे बिड़ला भवन गया, जहां उनके पिताजी कुछ समय से रहने लगे थे। मैं बिड़ला भवन इससे पहले कभी नहीं गया था, इसलिए शहर की पतली गलियों में पता पूछता हुआ मैं वहां पहुंचा। मैं उनको उनकी विजय पर बधाई देने के लिए वहां गया था। इससे पहले मैं श्री बिड़ला-चुनाव से पूर्व केवल एक बार मिला था। चुनाव के समय अक्सर हम दोनों का आमना-सामना हो जाता था। मालवीय-परिवार के लोगों ने जिस रीति से श्री बिड़ला का धुआंधार चुनाव-प्रचार किया था और मेरे बारे में बहुत-सी गलत बातें प्रचारित की थीं, उससे मैं स्तब्ध रह गया था। मैं सोच रहा था कि अगर मैं स्वयं जाकर उनको बधाई न दूंगा तो आपस में कटुता पैदा हो जायगी, जैसा कि हमारे देश में दुर्भाग्य से चुनाव के बाद अक्सर होता है। मुझे यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि श्री बिड़ला और मेरे बीच हमेशा बड़े मैत्रीपूर्ण सम्बंध रहे हैं। वह स्वयं मुझसे कई बार यह कहकर दुख-प्रकाश कर चुके हैं। हालांकि उस घटना को बीते बीसियों बरस हो गए--कि पंडित मदनमोहन मालवीय के कहने से मैं आपके विरुद्ध खड़ा हो गया। मोतीलालजी और मालवीयजी दोनों ही निर्विरोध चुन लिये गए। उन्होंने आपस में तय कर लिया था कि कोई एक-दूसरे की सीट से नहीं खड़ा होगा। परन्तु जैसा कि श्री बिड़ला ने मुझसे एक बार कहा, यह बड़े दुःख की बात हुई कि उनकी आपस की लड़ाई हमें लड़नी पड़ी। मोतीलालजी ने मेरे चुनाव-प्रचार में पूर्वी ज़िलों की धूल-भरी सड़कों पर मोटर से बड़ी लम्बी यात्रा की, परन्तु उससे कोई फल नहीं निकला, क्योंकि दूसरे पक्ष से हिन्दू धर्म के नाम पर मतदाताओं के नाम लम्बी-चौड़ी अपीलें की जा रही थीं। कुछ अन्य बातें भी थीं, जो मेरे विरोधी के पक्ष में थीं। मुझे खुशी है कि इस चुनाव के बाद श्री घनश्यामदास बिड़ला से मेरी जो व्यक्तिगत मैत्री शुरू हुई, वह इतने बरस बीतने पर आज भी कायम है और इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं।

ज़िंदादिल आदमी

मुझे पंडित मोतीलालजी को बनारस में कई बार अपने घर पर आमंत्रित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यद्यपि वह अपने घर पर अंग्रेज़ी ढंग से रहते थे, तथापि जब किसी के घर मेहमान होकर जाते थे तो फ़ौरन अपने को वहां के रहन-सहन के अनुसार ढाल लेते थे। मेरा उनका साथ लगभग २५ वर्ष रहा। उन दिनों को जब याद करता हूं तो बहुत सी सुखद व दुखद स्मृतियां आकर घेर लेती हैं। वह अपने स्वास्थ्य तथा अपने काम के बारे में बहुत सावधान रहते थे वह रोज़ाना कसरत करते थे। एक बार उन्होंने जवाहरलाल की लापरवाही की शिकायत करते हुए कहा कि मैं किसी बात में अति नहीं करता। हम सब उनकी यह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। मुझे याद है कि एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि चित्तरंजनदास ने, जो उनसे कई साल छोटे थे, अपनी ज़िन्दगी-भर की खाने-पीने तथा धूम्रपान की आदतें त्याग कर अच्छा नहीं किया। मोतीलालजी को देशबन्धु का स्वास्थ्य तेज़ी से बिगड़ते देखकर बड़ा दुःख हो रहा था। वह इतने कठोर संयम पर विश्वास नहीं करते थे और इसलिए उनका स्वास्थ्य अच्छा बना

हुआ था। देशबन्धु चित्तरंजनदास का इसके बाद ही देहान्त हो गया। पंडित मोतीलालजी जीवन का आनन्द लेना जानते थे और मैंने उन्हें कभी उदास अथवा निराश नहीं देखा। वह बड़े ही स्नेही और विनोदप्रिय व्यक्ति थे। खूब हंसी-मज़ाक करते थे और किस्से-कहानियां सुनाकर सबका मनोरंजन करते थे। वह अपनी निजी बातें भी सहज भाव से दूसरों के सामने कह देते थे। बहुत से लोग इस प्रकार की बातें दूसरों के सामने, विशेष रूप से अपने छोटों के सामने, कहने में हिचकते हैं। मैं उनसे उम्र में ३० साल छोटा था। जिन दिनों वह नये आनन्द भवन को बनवा रहे थे, उन दिनों की बात है। एक बार उन्होंने मुझे बताया कि मैंने पुराना आनन्द भवन कांग्रेस को दान कर देने का निश्चय किया है। अब मेरी तीन इच्छाएं रह गयी हैं। एक तो वकालत छोड़ देने के बाद खर्च घटा न पाने के कारण मेरे ऊपर जो कर्ज़ा लद गया है उसे बेबाक कर देना; दूसरे, नये आनन्द भवन को बनवा देना; तीसरे, अपने लड़के के लिए काफी पैसा छोड़ जाना। उन्हें इस बात में सन्देह था कि जवाहरलाल कभी पैसा पैदा कर सकेंगे, क्योंकि उनका सारा समय सार्वजनिक कार्यों में चला जाता था। मेरा खयाल है कि वह अपनी इन तीन इच्छाओं में केवल नया आनन्द भवन बनवा देने की इच्छा पूरी कर पाए। अपने पिता की मृत्यु के बाद पंडित जवाहरलाल को पुराने कर्ज़े निबटाने में काफी परेशानी उठानी पड़ी। जहां तक उनकी तीसरी इच्छा का सवाल है, मेरा खयाल है कि पंडित मोतीलाल जी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि जवाहरलाल एक दिन विश्व-राजनीतिज्ञ का दर्जा प्राप्त कर लेंगे और उनके लिए किसी प्रकार की कोई कमी नहीं रहेगी।

बम्बई की घटना

मैंने केवल एक अवसर पर अनुभव किया कि मोतीलालजी का व्यवहार अनावश्यक रूप से असहनशील और अभद्रतापूर्ण रहा। बम्बई में जिन्ना-हॉल में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हो रही थी। मेरा खयाल यह है कि यह घटना १९२९ की है, जब वह कांग्रेस के अध्यक्ष थे। मुझे अच्छी तरह याद नहीं है, लेकिन मेरा खयाल है कि बहस धारा सभाओं और उसमें हमारे हिस्से के बारे में हो रही थी। मैं कुछ कहने के लिए खड़ा हुआ। उस प्रसंग में मैंने चुनाव की चर्चा की, जिसमें मैं हार गया था। मैंने कहा कि ऐसी स्थिति में मैं जो कुछ कह रहा हूं, उसमें कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं हो सकता। पंडित मोतीलालजी ने इतने में मुझे बीच में रोक कर बिठाल दिया। उन्होंने कहा कि हमें आपकी राम कहानी सुनने में कोई दिलचस्पी नहीं है। इससे मुझे चोट लगी और मैं चुपचाप बैठ गया। मैं समझ नहीं पाया कि अब आगे क्या कहूं। इसके बाद ही पंडित मोतीलालजी बोले। वे धारा सभाओं में स्वराज्य-पार्टी के कार्य तथा अपने बारे में बताने लगे। मेरे मन में आया कि मैं भी खड़ा होकर कह दूं कि हम लोगों को आपकी राम कहानी सुनने में कोई दिलचस्पी नहीं है, परन्तु मैंने ऐसा नहीं किया। एक तो ऐसा कहना मेरे लिए अनुचित होता। दूसरे, वहां पर जितने लोग बैठे थे वे सब मोतीलालजी के प्रबल समर्थक थे। यदि मैं कोई गुस्ताखी करता तो वे मुझे नोच डालते। इस घटना के बाद ही वह किसी मुकदमे के सिलसिले में बनारस आए। एक कांग्रेसी दोस्त से अचानक मुलाकात हो जाने पर उन्होंने उनके द्वारा मुझसे कहलाया कि उन्हें यह देखकर ताज्जुब हुआ कि उनके नगर में आने पर भी यहां के कांग्रेसजन उनसे मिलने नहीं आए। इस पर वह जहां पर ठहरे थे, उस पते से मैंने उन्हें एक पत्र डाल दिया। पत्र में मैंने बम्बई की घटना का सारा ज़िक्र किया और लिखा कि उनके व्यवहार से मुझे भारी दुःख हुआ है। मेरा ऐसा खयाल है कि हम छोटे लोगों ने व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उनके राजनीतिक कार्यों में जो मदद दी, उसकी कोई कीमत उनके निकट नहीं है। श्री बिड़ला से चुनाव लड़ना मेरे लिए हंसी-खेल नहीं था। अन्त में मैंने लिखा कि अब शायद आपको मेरी आवश्यकता नहीं रह गयी है। इस पर उन्होंने एक बड़ा अच्छा पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने सारी घटना पर खेद प्रकट किया और मुझे विश्वास दिलाया कि उनका इरादा मुझे चोट पहुंचाने या किसी प्रकार की अभद्रता प्रदर्शित करने का नहीं था। उन्होंने

मुझे उस ट्रेन का समय भी सूचित किया, जिससे वह जा रहे थे। मैं उनसे मिलने रेलवे स्टेशन पर गया और वहां उनसे बड़ी मैत्रीपूर्ण बातचीत हुई। वह कभी-कभी अधीर हो जाते थे। दूसरों को ऐसा लगता था कि उनका व्यवहार बड़ा रूखा और अभद्रतापूर्ण है, परन्तु उनका दिल बड़ा ही कोमल था और वह बड़े स्नेही व्यक्ति थे। आमतौर से लोगों का खयाल है कि वह समझते थे कि मैं कभी गलती नहीं कर सकता और वह जो कुछ कहते या करते थे, उसके लिए कभी खेद प्रकाश तक नहीं करते थे। ऐसा सुनने के कारण ही बम्बई की घटना के बाद मैं उनसे दूर रहने लगा, परन्तु मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि उन्होंने स्वयं उस घटना को समाप्त कर दिया।

पंडित मोतीलालजी से मेरी अन्तिम भेंट १९३० के आखिर में हुई। मैं जेल से छूट कर आया था और वह अस्वस्थ थे। इसके कुछ ही सप्ताह बाद उनका देहावसान हो गया, जिससे हम सबको भारी दुःख हुआ। यदि मैं भूलता नहीं तो वह कुछ दिन पहले विश्राम, वायु-परिवर्तन तथा इलाज के लिए कलकत्ता के पास मटियाबुर्ज गए थे और वहां से लौटे थे। उन्होंने मुझे मिलने के लिए इलाहाबाद बुलाया। १९३० की जेलयात्रा उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर सिद्ध हुई थी और वह गंभीर रूप से बीमार थे। जवाहरलाल उस समय भी जेल में थे। उन्होंने मुझसे आन्दोलन की भावी रूप-रेखा के बारे में पूछा। जब हम लोग खाने बैठे तो उन्होंने मेरे लिए वैष्णवी खाना मंगाया और उनके लिए परहेज़ी खाना लाया गया। अचानक वह क्रुद्ध मुद्रा में कुरते की आस्तीन खींचकर बोले, "यह सब वाहियात है। मेरे लिए भी थाल लाओ।" इस पर उनके सामने से चीनी की तश्तरियां हटा दी गईं और जैसा थाल मेरे लिए लाया गया था, वैसा ही उनके लिए भी लाया गया। उसमें निरामिष और सामिष दोनों प्रकार का भोज्य था। किसी में हिम्मत नहीं थी कि उनकी बात को काट दे। इसलिए उनकी आज्ञा होने पर, उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकर होने पर भी, वह भोजन उनके सामने लाया गया। मेरा उनका यही अन्तिम मिलन था। वह भोजन के बड़े प्रेमी थे। उनकी पीढ़ी के सभी लोग भोजन-प्रेमी होते थे। मेरे पिताजी को भी भोजन से प्रेम था। वह बड़े धीरे-धीरे और निश्चिन्तता से भोजन करते थे। हम, उनकी बाद की पीढ़ी के लोग भोजन के प्रति इतनी रुचि नहीं प्रदर्शित करते, उस समय के लोग बड़े प्रेम से भोजन करते थे। उसमें जल्दी नहीं करते थे। हम लोग खाने के समय भोजन की उतनी चिन्ता नहीं करते जितनी और सब बातों की। मैं जब उनसे आदेश प्राप्त करके लौटा तो बड़ा उदास था। उनकी हालत देखकर बड़ा दुःख हुआ। इसके बाद फिर उनके दर्शन नहीं हुए। दूसरी बार जब मैं इलाहाबाद गया तब उनका स्वर्गवास हो चुका था। मैं उस समय कांग्रेस का जनरल सेक्रेटरी था। वर्किंग कमेटी की बैठक में आगे का कार्यक्रम निश्चित होने वाला था। उसी के लिए मैं गया था। जवाहरलाल जेल से छूट चुके थे और गांधीजी सुप्रसिद्ध गांधी-इर्विन समझौता-वार्ता शुरू करने के लिए दिल्ली जाने की तैयारी कर रहे थे।

सबसे बड़ी विशेषता

मेरी समझ में पंडित मोतीलालजी के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि परिवार के सब लोगों से उनके बड़े मधुर सम्बन्ध थे और सबको उनसे पूर्ण सन्तोष प्राप्त था। जहाँ तक मेरा खयाल है—हो सकता है कि मैं गलती पर होऊं—सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने वाले वही एकमात्र प्रमुख व्यक्ति थे, जिनका पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी था। जब परिवार का मुखिया सार्वजनिक कार्यों में पड़ जाता है तो स्वाभाविक रूप से परिवार के लोगों की उपेक्षा होने लगती है। फलस्वरूप वे नाराज़ और असतुष्ट रहने लगते हैं। परन्तु, पंडित मोतीलालजी के साथ ऐसा नहीं हुआ। यद्यपि वह अपनी वकालत के कामों में तथा सार्वजनिक कामों में बड़े व्यस्त रहते थे तथापि वह अपने परिवार के सब लोगों की बराबर चिन्ता रखते थे। वह केवल अपने ही लड़कों की नहीं, अपने भाई के लड़कों तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों की भी बहुत चिन्ता रखते थे। हरेक उनसे बहुत सन्तुष्ट रहता था और हर व्यक्ति की सुख-

सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता था। वह अपने परिवार से बड़ी मुहब्बत करते थे। कांग्रेस नेताओं में वही एकमात्र व्यक्ति थे जिनके परिवार का एक-एक व्यक्ति पत्नी, पुत्र, पुत्रियां, जामाता और पौत्री ही नहीं, भतीजे और अन्य सम्बन्धी तक जेल गए थे। मुझे याद है, स्वाधीनता-संग्राम में एक बार एक महिला कार्यकर्त्ता ने मुझसे कहा था, "श्रीप्रकाशजी, यदि आप किसी महिला को सार्वजनिक क्षेत्र में काम करते पाएं तो यह समझ लें कि उसका पारिवारिक जीवन संतोषपूर्ण नहीं है। मेरा खयाल है कि यह बात महिलाओं पर ही नहीं, पुरुषों पर भी लागू होती है। पंडित मोतीलालजी इसके पूर्ण अपवाद थे और मैं उनकी इस महान् सफलता के लिए उनकी बड़ी सराहना करता हूं। मैं समझ नहीं पाया कि उनकी इस सफलता का रहस्य क्या था। वह अपने ढंग से बड़े अनुशासनप्रिय थे। मुझे याद है कि एक बार मैं उनसे मिलने के लिए बनारस से इलाहाबाद गया। उस समय दोपहर हो चुकी थी। जवाहरलाल को न पाकर मैंने स्वाभाविक रूप से पूछ-ताछ की। पंडित मोतीलालजी ने कुछ क्रुद्ध भाव से बताया कि उन्होंने जवाहरलाल को उस दिन देखा ही नहीं। वह बहुत सुबह घर से चले गए थे और तब तक लौटे नहीं थे। हमारी पीढ़ी के लड़के अपने पिता से बहुत डरते थे। मैं समझता हूं कि जवाहरलाल इसके पूर्ण अपवाद नहीं थे। संयोग से वह उसी समय आ गए। मैंने देखा कि पंडित मोतीलालजी ने जब उनसे कहा, 'तो आप आ गए। आपको खाने-पीने की कोई ज़रूरत तो है नहीं,' तब उनके चेहरे पर दबे हुए क्रोध का भाव था। मोतीलालजी से यद्यपि सब डरते थे, तथापि सभी उनके प्रति सच्चा आदर और प्रेम का भाव रखते थे। वह सब प्रकार से बड़े सफल व्यक्ति थे। वह बड़े सौभाग्यशाली थे। एक पिता के रूप में, एक मित्र के रूप में, एक वकील के रूप में, एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के रूप में, सभी रूपों में वह सचमुच बड़े असाधारण व्यक्ति थे।

अपूर्व व्यक्तित्व

यह विचित्र बात है कि अपने जीवन-काल में मैं जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आया, उनमें पंडित मोतीलाल नेहरू की याद सबसे अधिक आती है। मैं बराबर पुराने दिनों की और उनसे अपने सम्बन्धों की याद करता रहा हूं। वह सब प्रकार से एक महान् व्यक्ति थे। हमारे देश में उपकार करनेवाले व्यक्तियों को बहुत जल्दी भुला दिया जाता है। महान्-से-महान् व्यक्ति विस्मृति के गर्भ में चले जाते हैं। हो सकता है कि उनकी याद भी मिट जाए। परन्तु जो लोग उनके सम्पर्क में आए, वे हमेशा बड़े प्रेम और सम्मान के साथ उनको याद रखेंगे। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त महान् था। उनमें अनेकानेक गुण थे। वह जिस समाज में भी बैठते थे, उस पर अपनी छाप डाल देते थे। वह यदि नीचे या दूर बैठे होते थे तो भी अलक्ष्य रूप से सबसे ऊपर पहुंच जाते थे। मनुष्य होने के नाते उनमें मानव-स्वभाव की स्वाभाविक कमज़ोरियां हो सकती हैं, परन्तु वह सच्चे अर्थों में एक महापुरुष थे। उनके जीवन में हम सब अनेक शिक्षाएं ग्रहण कर सकते हैं और देश के लिए उनका उपयोग कर सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के शब्दों में उनके लिए भी कहा जा सकता है :

यद् यद् विभूतिमत् सत्वम् श्रीमद् ऊर्जितम् एव वा।
तत् तदेवावगच्छ त्वम्, मम तेजोऽश संभवम्॥

—हे अर्जुन, जो कुछ भी विभूतिमान, लक्ष्मीवान या प्रभावशाली है, उसको मेरे तेज के अंश से ही हुआ समझ।

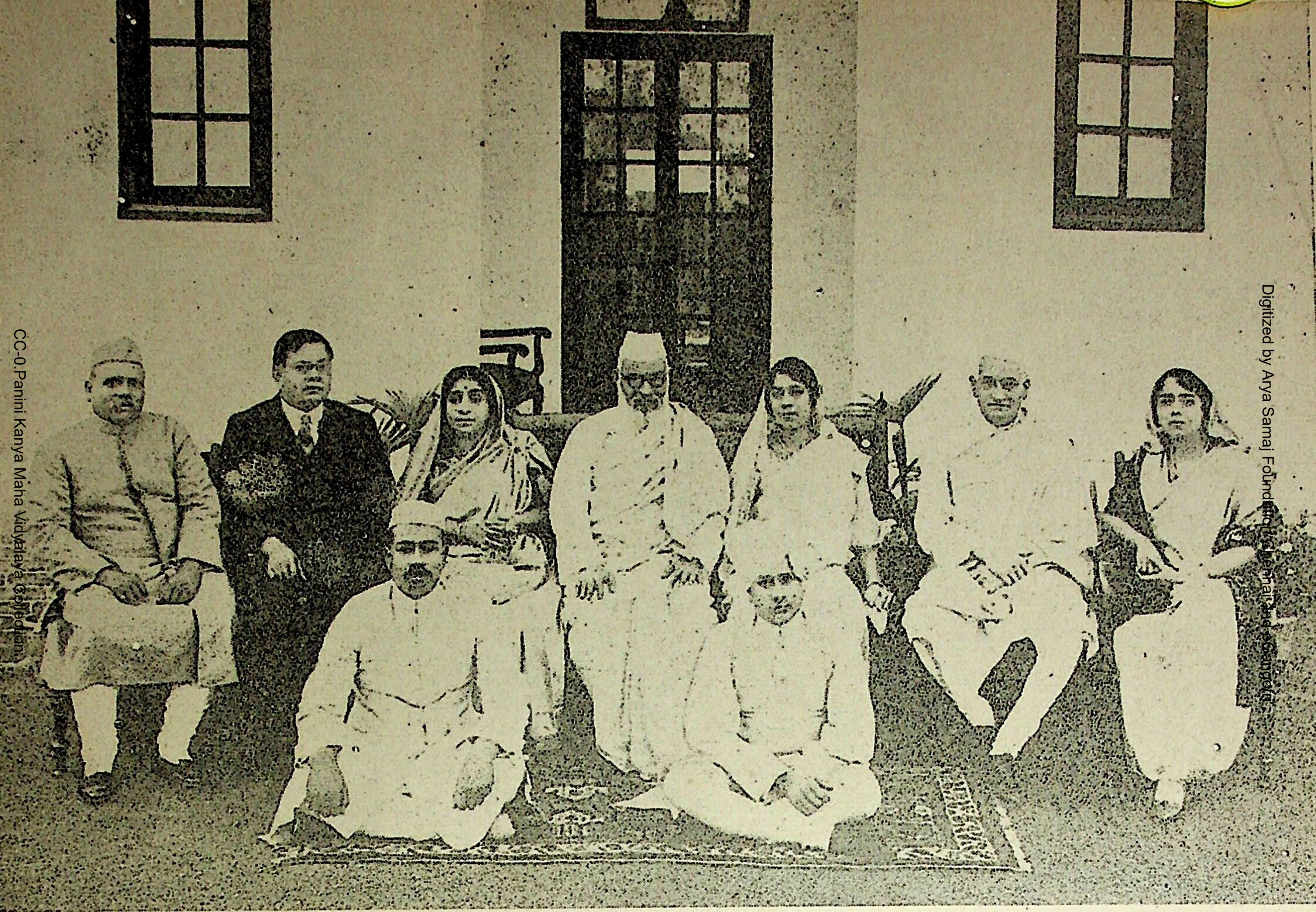

श्री विट्ठलभाई पटेल (बीच में) के स्वागत में आयोजित समारोह के अवसर पर

स्वतन्त्रता-संग्राम में उनका योगदान

दुनीचन्द

मुझ से ९१ वर्ष की इस आयु में पंडित मोतीलाल नेहरू के जीवन और उनके महान् व्यक्तित्व के संपर्क में आने वाले मित्रों और अन्य व्यक्तियों के बारे में निजी यादगारें लिखने को कहा गया है। मैं समझता हूं कि मैं अब भी उन व्यक्तियों और घटनाओं को साफ-साफ समझ सकता हूं और उनका सही मूल्यांकन कर सकता हूं। कांग्रेस-अध्यक्ष और केन्द्रीय असेम्बली में विरोधी दल के नेता, दोनों ही रूपों में मुझे उनके साथ काम करने का मौका मिला है, तथा मैंने इस महान् राष्ट्रीय नेता के जीवन के विविध पहलुओं को देखा है। यद्यपि मैं कांग्रेस या केन्द्रीय असेम्बली में कोई प्रमुख व्यक्ति नहीं था, पर मेरा दावा है कि कांग्रेस के ध्येय में निष्ठा और असेम्बली के सदस्य के रूप में उनके प्रति वफादारी में मैं किसी से पीछे नहीं रहा। भारतीय राष्ट्र के इस महान् निर्माता के जीवन के बारे में अपने विचार प्रकट करना मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूं। मैं इस लेख में अपने विचार और कुछ निजी संस्करण प्रस्तुत करूंगा।

वकील के रूप में

ब्रिटिश शासन-काल में देश के शासकों और अधिकारियों की दृष्टि में वकीलों का बड़ा महत्व था। ये लोग जनता की इच्छाओं और शिकायतों को सरकार तक पहुंचाने के माध्यम समझे जाते थे। इनमें से पंडित मोतीलाल नेहरू जैसी ऊंची हस्तियों की ब्रिटिश शासक खास तौर पर इज्जत व अदब करते थे। वे उन्हें ब्रिटिश शासन का पाया समझते थे और उन्हें हर तरह से खुश रखने की कोशिश करते थे। महात्मा गांधी के जीवन-संस्मरण सुनना हम सभी पसन्द करते हैं, इसलिए मैं उनकी शिमला-यात्रा की एक घटना का उल्लेख कर रहा हूं। वे वहां भारत के तात्कालीन गवर्नर-जनरल व वायसराय लार्ड रीडिंग से मिलने गये थे। वहां उन्होंने एक सार्वजनिक सभा में पं. मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजनदास का उल्लेख करते हुए कहा था, "जबकि उनके जैसे चोटी के वकीलों ने ब्रिटिश अदालतों का बहिष्कार कर दिया है तो मैं दूसरे वकीलों के वकालत छोड़ने को खास महत्व नहीं देता।" मुझे अच्छी तरह याद है कि उन्होंने कहा था मैं परिमाण की अपेक्षा योग्यता को अधिक महत्व देता हूं। इसके कुछ दिन पहले ही मैंने प्रमुख मुसलिम देशभक्त श्री एम. आर. रशीद बैरिस्टर के साथ वकालत छोड़ी थी। महात्मा गांधीजी ने अपने भाषण में इस घटना का भी उल्लेख किया था।

कौंसिल-प्रवेश

कौंसिल-प्रवेश के सवाल पर महात्मा गांधी के साथ पं. मोतीलाल नेहरू तथा देशबन्धु दास के साथ कैसे मतभेद हुआ, स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में यह बहुत महत्वपूर्ण घटना है। कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर सी. आर. दास गांधीजी का विरोध कर रहे थे। इस मसले पर सामान्य कांग्रेसजनों का मत लेने के लिए ही सितम्बर १९२० में कलकत्ता में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। देशबन्धु पराजित हुए और उन्होंने शालीनतापूर्वक गांधीजी के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। कांग्रेस का नियमित वार्षिक अधिवेशन जब उसी वर्ष नागपुर में हुआ तो उन्होंने गांधीजी का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया।

इसके बावजूद कौंसिल-प्रवेश का मसला चलता रहा और कांग्रेसजन दो हिस्सों में बंट गये। एक तो परिवर्तनवादी और दूसरे को अपरिवर्तनवादी कहा जाता है। मैं कांग्रेस के कलकत्ता के विशेष अधिवेशन और नागपुर के नियमित अधिवेशन, दोनों में उपस्थित था। मैं १९०७ में सूरत कांग्रेस में भी उपस्थित था, जब कि कांग्रेस-मंच पर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने ज़बरदस्ती कब्ज़ा कर लिया था और गरम दल और नरम दल के नेताओं ने एक-दूसरे पर कुर्सियां फेंकी थीं। गरम दल के नेता लोकमान्य तिलक और नरम दल के सर फीरोजशाह मेहता थे। वस्तुतः यह उस सिलसिले की शुरुआत थी, जिसके फलस्वरूप आगे चलकर स्वराज्य-पार्टी का निर्माण हुआ। स्वराज्य-पार्टी के संस्थापक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कौंसिलों के अन्दर लड़ाई चलाना चाहते थे, जबकि महात्मा गांधी ने अहिंसा व असहयोग के ज़रिये स्वाधीनता प्राप्त करने की योजना बनाई थी। कांग्रेस के अन्दर दोनों दलों में रस्साकशी काफी समय तक चलती रही।

एक-दूसरे के मुकाबले पर डटे दोनों शिविरों में एक के नेता पंडित मोतीलाल नेहरू एवं देशबन्धु चित्तरंजनदास और दूसरे के महात्मा गांधी तथा राजगोपालाचार्य थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू उस समय तक कांग्रेस के अन्दर बहुत ऊंची कोटि के नेता बन गये थे और उनका अपने पिता से मत नहीं मिलता था। कुछ समय बाद दोनों दलों के बीच संघर्ष चरम-बिन्दु पर पहुंच गया। मुझे वह समय अच्छी तरह याद है जब कौंसिल-प्रवेश का अपरिवर्तनीय निर्णय लिया गया था और दोनों दलों का रास्ता अलग-अलग हो जाना अनिवार्य हो गया था। महात्माजी ने कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर एक ऐतिहासिक भाषण दिया था। उनका वह भाषण इतना कारुणिक और दिल पर इतना गहरा प्रभाव करने वाला था कि मालूम पड़ता था मानो कोई पैगम्बर बोल रहा हो। महात्माजी के स्वभाव की यह विशेषता थी कि वे अपने विरोधी के खिलाफ कोई बुरी लगने वाली बात नहीं कहते थे, चाहे उससे उनका कितना ही तीव्र मतभेद क्यों न हो। अत्यन्त करुणा-भरे शब्दों में, जिससे विशाल जन-समूह का दिल पसीज गया, उन्होंने अपने विरोधियों की सफलता की कामना की, पर साथ ही उन्होंने भविष्यवाणी की कि नया कार्यक्रम असफल होगा और ये लोग कौंसिलों से बाहर निकल आयेंगे।

असेम्बली में

कांग्रेस टिकट पर चुनाव लड़े गए और स्वराज्य-पार्टी ने शानदार सफलता पाई। वह पंडित मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में केन्द्रीय असेम्बली में पर्याप्त शक्ति के साथ प्रविष्ट हुई। स्वराज्य-पार्टी के नेता के रूप में मोतीलालजी ने जो कार्य किया, वह बहुत ही सराहनीय है। यह शेर से उसकी मांद में जाकर लड़ने जैसा था। असेम्बली के अन्दर बड़े ज़ोरों की टक्कर और दहाड़ होती थी। सरकार की तरफ से सर बैसिल ब्लैकेट, सर अलैक्जेण्डर मुडिमैन, सर चार्ल्स इन्निस और भारतीय सदस्य सर अतुल चटर्जी और श्री जोसेफ भोरे टक्कर लेते थे। ये सभी अत्यन्त मेधावी और ऊंची किस्म की बहस करने वाले वक्ता थे। सर बैसिल ब्लैकेट इनमें अत्यधिक प्रतिभावान थे। उनके बहस करने के अद्भुत कौशल और चमत्कारी स्मरण-शक्ति की याद कर मुझे अब भी बड़ी पुलक होती है। हम सब जानते हैं कि संसद तथा विधान मंडलों में पेश किये जाने वाले बजट आंकड़ों से भरे रहते हैं। सर बैसिल ब्लैकेट ने सदन में जब पहली बार बजट पेश किया तो मैंने उन्हें सारा वित्तीय वक्तव्य लगभग अपनी स्मृति से प्रस्तुत करते देखा। मैं समझता हूं लिखित वक्तव्य उनके सामने मेज़ पर रखा था, पर उस पर उन्होंने बहुत कम नज़र डाली। भारत सरकार के इन प्रतिभाशाली अंग्रेज व भारतीय सदस्यों के मुकाबले में स्वदेश पक्ष से उन्हीं की टक्कर के पंडित मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल, सर चमनलाल सीतलवाड़, लाला लाजपतराय और कांग्रेस के अन्य चोटी के नेता थे।

सरकारी पक्ष के समर्थक या तो चुने हुए अंग्रेज़ अथवा ऐसे भारतीय थे, जो प्रतिभा अथवा नैतिक

वल के कारण नहीं, वल्कि हर कीमत पर ब्रिटिश शासकों के प्रति वफादारी दिखाने के कारण केन्द्रीय असेम्वली के सदस्य बनाये गए थे, किन्तु स्वराज्य-पार्टी के सदस्य अपने नेताओं के प्रति वफादार होने के साथ ही उच्चकोटि के देशभक्त भी थे। उनमें दीवान चमनलाल व रंगा अय्यर जैसे सदस्य भी थे, जो वड़ी उच्चकोटि की वहस करते थे। वे अक्सर वहस से सरकारी पक्ष को वड़ी परेशानी में डाल देते थे। पंडित मोतीलाल नेहरू सभी के सरताज थे। उनका सदन में सभी सम्मान करते थे और उनके भाषण वड़े अदव और दवदवे के साथ सुने जाते थे।

मिलनसार व्यक्तित्व

स्वराज्य-पार्टी के नेता के रूप में तो पंडित मोतीलाल नेहरू की सदन क अन्दर और वाहर भारी इज़्ज़त थी ही, साथ ही वे नई दिल्ली में वहुत ही मिलनसार तथा सौहार्दपूर्ण व्यक्ति माने जाते थे। वे वाइसराय की कौंसिल के सदस्यों के सामाजिक आमन्त्रण भी स्वीकार कर लेते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि सरकार के उच्च-पदासीन सदस्यों के साथ चाय पीने पर उनके कुछ अनुयायियों ने उनकी आलोचना की थी। उन्होंने इसका संक्षिप्त उत्तर दिया कि, "मैं चाय के एक प्याले के वदले देश को वेच दूंगा, ऐसा कोई सन्देह नहीं कर सकता।" उनके भाषण संक्षिप्त, नपे-तुले शब्दों में और विषयवस्तु तक सीमित होते थे। उनके वारे में कहा जाता है कि उनके भाषणों को सुनने के वजाय जव छपे हुए रूप में पढ़ा जाता है तो वे मर्म पर अधिक चोट करने वाले तथा प्रभावशाली लगते।

कुछ समय वाद पंडित मोतीलाल नेहरू विरोधी दल के नेता और श्री विट्ठलभाई पटेल स्पीकर हो गए। उस समय विरोधी दल की ताकत वहुत वढ़ गई। कई मौकों पर विट्ठलभाई ने संसदीय पद्धति एवं परम्परा की अपनी अपार जानकारी के फलस्वरूप सरकार पर ऐसे तीखे संवैधानिक हमले किए कि सरकारी पक्ष, यहां तक कि गवर्नर-जनरल तथा वायसराय भी तिलमिला उठे। उनके स्पीकर चुने जाने से पहले एक वार एक सरकारी सदस्य ने भारत में ब्रिटिश शासन का औचित्य सावित करने के लिए यह कहकर चुनौती दी कि "क्या सदन में कोई भी ऐसा सदस्य है, जो छाती पर हाथ रखकर कह दे कि वह चाहता है कि ब्रिटिश शासक भारत से चले जाएं।" उस पर विट्ठलभाई पटेल ने अपने दोनों हाथ छाती पर रख कर यह घोषणा कर नाटकीय दृश्य उपस्थित कर दिया कि "मैं ऐसा सदस्य हूं और चाहता हूं कि सभी ब्रिटिश शासक अपना वोरिया-विस्तर वांध कर भारत से विदा हो जाय। हम अपने देश का शासन खुद चला लेंगे।"

विट्ठलभाई पटेल और पंडित मोतीलाल नेहरू ने क्रमशः स्पीकर तथा विरोधी दल के नेता के उच्च पदों पर रहकर अपने विरोधियों की नज़रों में एक-दूसरे का महत्व वढ़ाया। यद्यपि सदन में कुछ इने-गिने महत्वपूर्ण भारतीय सदस्य थे, जो एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के पदों पर निगाह रखकर ब्रिटिश शासकों को खुश करने में लगे रहते थे, किन्तु उनके मुकावले में स्वराज्य-पार्टी के वहुसंख्यक सदस्य थे, जो भारत की स्वतंत्रता के अलावा और कुछ नहीं चाहते थे। इस वातावरण को उत्पन्न करने का श्रेय दल के नेता के व्यक्तित्व और उनके अनुशासन को था।

यद्यपि महात्मा गांधी की भविष्यवाणी सही सावित हुई, भारत को विधान मण्डलों के ज़रिये आज़ादी नहीं मिल सकी और ब्रिटिश शासक चतुराई से विधान मण्डलों में उनके साथ खिलवाड़ करते रहे और उनके अन्दर किये गए हमलों का मुकावला करते रहे, फिर भी इनसे एक अच्छी वात यह हुई कि भारतीयों ने विधायकों के रूप में अपनी योग्यता सावित कर दी और यह दिखला दिया कि भारत के देशभक्त सफलतापूर्वक संसदीय प्रशासन चला सकते हैं। पंडित मोतीलाल नेहरू केन्द्रीय असेम्वली में कोई पद लेने नहीं गए थे, वल्कि अनिच्छुक ब्रिटिश हाथों से स्वतंत्रता छीनने गए थे। अपनी उद्देश्य-पूर्ति

न होती देख उन्होंने असेम्बली छोड़ने और उसमें वापस न लौटने का फैसला किया। दल के सभी सदस्यों ने उनके आदेश का पालन किया।

आज़ादी की लड़ाई

यह वड़े दुःख की वात है कि पंडित मोतीलाल नेहरू भारत को स्वतंत्र देखने के लिए पर्याप्त समय तक जीवित न रह सके। ६ फरवरी, १९३१ को जब उनकी मृत्यु हुई तो उनकी अवस्था सत्तर वर्ष से भी कम थी। वे यदि कुछ वर्ष और जीवित रहते तो भारत को आज़ाद देख सकते थे। पहली व दूसरी फरवरी, १९३१ को उनके मकान पर हुई वर्किंग कमेटी की बैठक में मैं शामिल हुआ था। उस समय तक भारत के आज़ाद हो जाने के आसार दिखाई पड़ने लगे थे। मैंने देखा कि पण्डित मोतीलाल नेहरू की मौत नज़दीक आती देख पंडित जवाहरलाल नेहरू और परिवार के अन्य सदस्यों के चेहरों पर गहरा शोक व्याप्त था। दुखी परिवार को सान्त्वना देने के लिए महात्मा गांधी वहां उपस्थित थे।

इस समय तक पंडित जवाहरलाल नेहरू, जो कि योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं, भारत के उच्चतम नेताओं में गिने जाने लगे थे। भारतीय जनता के लिए यह एक अपूर्व दृश्य था कि पिता ने पुत्र को कांग्रेस का अध्यक्ष-पद सौंपा। उन दिनों यह कहा और माना जाता था कि पुत्र के जादू-भरे प्रभाव ने पिता के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिए हैं।

मुझे कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन की याद वड़ी प्यारी लगती है। उस अधिवेशन में पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग त्यागकर भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की गई और उससे कुछ भी कम स्वीकार न करने की घोषणा की गई। इस घोषणा के वाद हर्षोन्माद का जो दृश्य वहां देखने में आया, वह अविस्मरणीय है। गर्व-भरे पिता वहां यह दृश्य देखने के लिए उपस्थित थे कि इस मांग को उपस्थित करने वाला उनका प्रिय पुत्र है; उस समय इस मांग को कुछ असाधारण समझा जाता था और कुछ वड़े कांग्रेसी नेता भी इसे उद्दण्डतापूर्ण मानते थे। ब्रिटिश शासकों को हटाने के लिए अहिंसात्मक असहयोग और सविनय अवज्ञा आन्दोलन का क्या रूप हो, यह तय करने का भार महात्मा गांधी पर था, क्योंकि वही इस नीति के विशेषज्ञ समझे जाते थे। इस समय तक पण्डित जवाहरलाल नेहरू महात्मा गांधी के दाहिने हाथ माने जाने लगे थे। स्वाधीनता-आन्दोलन को सफल वनाने में जितना योगदान नेहरू-परिवार ने दिया, उतना अन्य किसी परिवार ने नहीं दिया है। ऐसा समझा जाता है कि पुत्र ने पिता को ऐशो-आराम की ज़िन्दगी छोड़कर जेल जाने के लिए तैयार किया।

असहयोग

पंडित मोतीलाल नेहरू के असहयोग-आन्दोलन में कूद पड़ने से आन्दोलन में नई जान आ गई और उनके फैसले का देश की जनता पर वहुत अधिक असर पड़ा। न केवल पण्डित मोतीलाल नेहरू और पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने, वल्कि परिवार की महिलाओं ने भी नतीजे की परवा न करते हुए अपने को स्वाधीनता-आन्दोलन में झोंक दिया। यह कहना किंचित् भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि स्वाधीनता-आन्दोलन को सफल वनाने और देश में स्वतन्त्रता की स्थापना करने में नेहरू-परिवार का योगदान सबसे वड़ा है।

कभी-कभी मेरे मन में विचार आता था कि अपने परिवार का भविष्य खतरे में डालना मेरे लिए भारी दुस्साहस का काम है। जिस समय मैं अपनी पत्नी के साथ असहयोगी वना, मेरे तीन पुत्र इंगलैण्ड में पढ़ रहे थे। कांग्रेस के कुछ क्षेत्रों में मेरे फैसले की आलोचना भी की जाती थी, किन्तु मैं इसका यही उत्तर देता था कि उन्हें आगे आने वाले जीवन-संघर्ष के लिए तैयार न करने का मुझे कोई कानूनी या नैतिक अधिकार नहीं है। इस तरह क: साहसपूर्ण कदम उठाने के लिए नेहरू-परिवार के त्याग ने मुझे तथा अन्य अनेकानेक लोगों को भारी वल प्रदान किया। यह नेहरू-परिवार का ही भाग्य था कि देश-भर

में सबसे शानदार हैसियत रखते हुए भी इसके सबसे प्रतापी सदस्य को कभी-कभी ब्रिटिश नौकरशाही के हाथों अपमानित तथा लांछित होना पड़ता था।

नाभा-जैसी छोटी रियासत में, जहां पण्डित जवाहरलाल नेहरू स्वतन्त्रता का अलख जगाने गए थे, एक मामूली मजिस्ट्रेट ने उन्हें किसी छोटी-सी बात पर गिरफ्तार करके बहुत ही गन्दी जगह में कैद कर दिया। इस छोटी-सी बात पर रियासत के शासक क्या जानते थे कि एक दिन यही नौजवान न केवल केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से देश को मुक्त कराएगा, बल्कि स्वतन्त्र भारत का प्रधान मन्त्री भी होगा। मेरे लिए व्यक्तिगत रूप से सबसे अधिक गर्व की बात यह है कि जब एक दिन मैं अम्बाला में अपने घर के बरामदे में बैठा था, तो मैंने फाटक पर पण्डित जवाहरलाल को देखा। मैं तुरन्त कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और उनका स्वागत करने के लिए तेज़ी से फाटक पर पहुंचा। उनके पास पहनने के कपड़ों के सिवा कोई सामान न था। अपने घर पर उनके साथ कुछ घंटे गुज़ारना मेरी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी खुशी थी। मैंने देखा उनके अन्दर भारत की स्वतन्त्रता के लिए कितनी उत्कट और अदम्य भावना एवं संकल्प है। इसके एक-दो हफ्ते पहले ही उनके महान् पिता पण्डित मोतीलाल नेहरू मेरी अनुपस्थिति में मेरे घर कुछ कानूनी किताबें देखने और यह मालूम करने आए थे कि उनके पुत्र को किस कानून के अंतर्गत पकड़कर जेल में डाला गया है।

मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने ही अपने परिवार के सब सदस्यों में देश की स्वतन्त्रा का उत्कट प्रेम भर दिया और उन्हें स्वतन्त्रता-प्राप्ति के संघर्ष में प्रमुख भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उनकी मां और उनकी पत्नी ने भी इस संघर्ष में प्रमुख भाग लिया। नेहरू-परिवार परम सौभाग्यशाली है, जिसने आज़ादी की लड़ाई में वीरतापूर्ण भाग लिया और उसकी प्राप्ति के बाद उसका उपभोग किया।

> **शिक्षा और प्रगति का ध्येय यह है कि वह मानव की सामूहिक भावना का विकास करे। उसे अपने पड़ौसी के साथ सहयोग करना सिखाए और उसे यह अनुभव कराए कि उसका व्यैयक्तिक कल्याण समूचे समाज की भलाई पर निर्भर करता है। केवल इसी प्रकार स्वार्थी और अहंकारी भावनाओं को दबाया जा सकता है और मानव जाति की शक्ति को पारस्परिक प्रतिस्पर्धा से सबके हित के लिए सहयोग की दिशा में मोड़ा जा सकता है—**
>
> **—मोतीलाल नेहरू**

पं० मोतीलाल नेहरू की उच्चता और महानता

सुन्दरलाल

पंडित मोतीलाल नेहरू से मेरा परिचय सन् १९०७ से हुआ। मैं उन दिनों इलाहावाद लॉ कालिज में पढ़ता था। पंडित मोतीलालजी वकालत करते थे और इलाहावाद हाई कोर्ट के चोटी के वकीलों में से थे। उनका रहन-सहन अधिकतर अंगरेज़ों का-सा और ठाट-वाट का था। मैंने 'अधिकांश' शव्द का उपयोग इसलिए किया कि पं० मोतीलालजी में कुछ हिन्दुस्तानी आदतें हमेशा रहीं। उदाहरण के लिए उन्हें पान खाने का शौक था अगरचे अदालत जाने से पहले वह हमेशा अच्छी तरह मुंह साफ कर लेते थे ताकि पान की लाली न दिखाई दे। उन्हें हिन्दुस्तानी ढंग की कसरत, डंड-बैठक करने और कुश्ती लड़ने का भी जवरदस्त शौक था। रोज़ सुवह डंड-वैठक निकालना उनका मृत्यु से कुछ वर्ष पहले तक जारी रहा। आखीर में डाक्टरों की सलाह से उन्हें इस तरह की कसरत वन्द कर देनी पड़ी। इसे वन्द कर देने का अन्त समय तक उन्हें अफसोस रहा। हिन्दुस्तानी नाच और गाने से भी उन्हें वड़ी दिलचस्पी थी। ये दोनों शौक उनमें इतने बढ़े हुए थे कि वे अनेक वार मशहूर हिन्दुस्तानी पहलवानों और गवैयों को अपने साथ यूरोप ले गए जहां उन्होंने उनकी कला के वड़े-वड़े प्रदर्शन कराए। हिन्दुस्तानी खाने भी खास कर कश्मीरी ढंग के खाने उन्हें कम-से-कम उतने ही पसन्द थे जितने अंगरेज़ी ढंग के खाने। एक वार अपने वड़े भाई पं० वंशीधरजी की मृत्यु पर पं० मोतीलालजी सोलन गए। मैं उन दिनों सोलन में ही रहता था। वंशीधरजी से मेरा घनिष्ठ परिचय था। एक दिन पं० मोतीलालजी सोलन के डाक-वंगले में मेज़ पर खाना खा रहे थे। मैं भी बैठा हुआ था, खाना खत्म करते ही मोतीलालजी उठकर सीधे वाथरूम में चले गए। दो मिनट वाद जव वे लौटे तो मैंने पूछा—'आप इतनी जल्दी में कहां गए थे।' पं० मोतीलालजी ने हँसकर जवाव दिया—'भई! इतनी हिन्दुस्तानियत अभी वाकी है।' वे वाथरूम में कुल्ला करने गए थे। यह भी सुना गया है कि इंगलिस्तान में उन्होंने कई वड़े-वड़े अंगरेज़ों को चौकी पर वैठाकर भरी वाल्टी में से पानी वदन पर उंडेल-उंडेल कर हिन्दुस्तानी ढंग से नहाना सिखाया। ये वातें देखने में वहुत छोटी-छोटी हैं पर मनुष्य के चरित्र के एक पहलू पर इनसे खासी रोशनी पड़ती है।

मोतीलालजी अत्यन्त उदार, साहसी, वहादुर और वेधड़क इंसान थे। वे निहायत रईस मिज़ाज के भी थे। हर तरह की साम्प्रदायिक भावनाओं, जाति-पांत, छुआछूत से वह वल्लियों ऊपर थे किन्तु एक वार एक वहुत ही निकट के सम्वन्धी ने उन्हें वजाय 'पं० मोतीलाल नेहरू' के 'श्री मोतीलाल नेहरू' लिख दिया। मोतीलालजी इस पर वेहद विगड़े और उन्होंने अपने सम्वन्धी को अपनी गलती दुरुस्त करने पर मजवूर कर दिया।

पं० मोतीलालजी फ्री मैसन सोसाइटी के वड़े ऊंचे पदाधिकारी थे। इसीलिए और कुछ अपने स्वभाव के कारण वड़े-से-वड़े अंगरेज़ शासकों के साथ उनका व्यवहार विलकुल वरावरी का होता था किन्तु वे शुरू में इस वात के कायल न थे कि हिन्दुस्तानी अंगरेज़ों को निकालकर देश को आज़ाद कर सकते हैं। स्वदेशी आदि के उसूलों को वे विलकुल न मानते थे, खद्दर का तो ज़िक्र ही क्या।

सन् १९०७ की एक घटना इस समय मुझे याद आ रही है। मैं लॉ कालिज में पढ़ता था। इलाहावाद के उस समय के राजनीतिक नेता जिनमें मुख्य, पं० मदनमोहन मालवीय थे, सव नरमदल यानी मॉडरेट पार्टी के थे। शहर के कुछ लोगों ने जिनमें अधिकांश विद्यार्थी थे, लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में

वहां एक गरमदल यानी ऐक्सट्रीमिस्ट पार्टी कायम की। नरमदल वालों ने इस खतरे का मुकाबला करने के लिए इलाहाबाद के मेयर हॉल में एक प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेंस की। मैं उस कान्फ्रेंस में गरमदल की ओर एक दर्शक के रूप में मौजूद था। नरमदल वालों ने पं० मोतीलालजी को कान्फ्रेंस का अध्यक्ष चुना। उन दिनों जनता में और विशेषकर राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं में स्वदेशी का ज़ोर था। किन्तु पं० मोतीलालजी शुद्ध विदेशी कपड़े की और विदेशी ढंग की पोशाक पहने हुए अध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान थे। पं० मोतीलालजी के उस समय के भाषण का जो अंगरेज़ी में दिया गया था एक वाक्य मुझे आज तक याद है। उन्होंने कहा था कि 'हिन्दुस्तानियों का अंगरेज़ शासकों को हिन्दुस्तान से निकालने का साहस करना ऐसा ही है जैसा कोई बौना हाथ में झाड़ू लेकर उससे किसी सशस्त्र देव का मुकाबला करना चाहे।' अंगरेज़ों की शक्ति और दबदबे का असर उन पर बहुत गहरा था।

एक और घटना मुझे एक साल बाद यानी सन् १९०८ की याद है। मैं अपने राजनीतिक भाषणों आदि के कारण लॉ कालिज से निकाला जा चुका था। पर रहता इलाहाबाद में ही था। भारत के क्रान्तिकारी दल में शामिल हो चुका था। सरकार और सब लोग इसे जानते थे। जहां कहीं मैं जाता था सरकार की खुफिया पुलिस सादे कपड़ों में मेरे पीछे रहती थी। पं० मोतीलालजी से भी मेरा पूरा-पूरा परिचय था। अकस्मात् जहां कहीं मिल जाते थे बड़े प्रेम की निगाह से देखते थे और हालचाल पूछ लेते थे। एक दिन सुबह को मैं अपने परम मित्र श्री मंजूरअली सोख्ता से मिलने के लिए पं० मोतीलालजी के निवास-स्थान आनन्द भवन गया। श्री मंजूरअली सोख्ता आनन्द भवन ही के एक हिस्से में रहते थे। पं० मोतीलालजी उनसे बड़ा प्रेम करते थे। मंजूरअली, मैं, और दो-एक और मित्र मंजूरअली के कमरे में बैठे बातें कर रहे थे, इतने में मोतीलालजी के कमरे से एक आदमी ने आकर कहा कि मोतीलालजी मंजूरअली को बुला रहे हैं। मंजूरअली चले गए और चार-पांच मिनट के बाद वापस आकर हम लोगों के साथ बैठकर बातें करने लगे। पांच-सात मिनट और बीत गए। इतने में फिर मोतीलालजी का आदमी आया और मंजूरअली को फिर बुला ले गया। कुछ मिनट के बाद मंजूरअली फिर लौट आए और हम लोगों के साथ बैठकर फिर बातें करने लग गए। इस बार मैंने मंजूरअली से पूछा कि मोतीलालजी ने तुम्हें दो बार इतनी जल्दी-जल्दी क्यों बुलाया। मंजूरअली ने उदासीन भाव से जवाब दिया कि कोई खास बात नहीं है। इतने ही में फिर तीसरी बार मंजूरअली साहब बुलाए गए। अब हमें कुछ संदेह हुआ। तीसरी बार मंजूरअली के वापस आने पर मैंने उनसे पूछा—"आखिर क्या बात है? तुम्हें इतनी जल्दी-जल्दी तीन बार भाईजी ने क्यों बुलाया?' मंजूरअली ने कुछ दुख के साथ जवाब दिया—'कहते हैं तुमने सुन्दरलाल को आनन्द भवन में बैठाकर रखा है। उनके पीछे खुफिया पुलिस रहती है। ऐसा करोगे तो मेरे बन्दूकों के लाइसेन्स ज़ब्त हो जाएंगे।' मंजूरअली ने यह भी कहा कि खुद मंजूरअली को इन चीज़ों की बिलकुल परवाह नहीं है और वह नहीं चाहते कि मैं वहां से उठकर कहीं जाऊं, पर मेरे दूसरे साथियों ने वहां बैठना उचित न समझा। पास ही दीवार से मिला हुआ श्री प्रयागदत्त सब-जज का मकान था। प्रयादत्तजी का पुत्र लक्ष्मणप्रसाद हमारा मित्र था और उस समय साथ था। लक्ष्मणप्रसाद के कहने पर हम सब लोग अब आनन्द भवन से उठकर प्रयागदत्तजी के मकान पर लक्ष्मणप्रसाद के कमरे में जा बैठे। कुछ देर बाद प्रयागदत्तजी ने अपने कमरे से लक्ष्मणप्रसाद को बुलवा भेजा। अब फिर हम लोगों को सन्देह होना स्वाभाविक था। लक्ष्मणप्रसाद के लौटने पर जब मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने बताया कि हम लोगों के आनन्द भवन से निकलकर प्रयागदत्तजी के बंगले में बैठने की खबर पं० मोतीलालजी को मिल गई और पं० मोतीलालजी ने अपना आदमी भेजकर अपने मित्र प्रयागदत्त से कहला भेजा कि 'अगर सुन्दरलाल को अपने बंगले में आने दोगे तो सरकारी नौकरी से निकाल दिए जाओगे।' हम चारों-पांचों साथी अब हंसते हुए उस बंगले से भी निकलकर सड़क के एक ओर जा खड़े हुए और वहीं खड़े-खड़े देर तक बातें करते रहे। मैं यहां फिर यह दोहरा देना चाहता हूं कि उन दिनों भी पं० मोतीलालजी जब कभी और जहां कहीं मुझे मिल जाते

तो वड़े प्रेम के साथ वातें करते थे और किसी न किसी अंश में हमारी कोशिशों की कदर करते हुए मालूम होते थे। किन्तु, वे इस तरह की सव चीज़ों को अव्यावहारिक समझते थे और कम-से-कम उन दिनों अंग्रेज़ी राज के भारत से हटाए जा सकने को असंभव मानते थे। यह वात सन् १९०८ की है।

मैं कह चुका हूं कि पं० मोतीलाल नेहरू अधिक से अधिक शान-शौकत और ऐश-आराम से रहने के आदी थे। वह खूव खर्चीले और दानशील भी थे। उनकी रईसी तवियत में अंगरेज़ियत और हिन्दुस्तानियत दोनों का एक अजीव मेल था। वकालत से उनकी आमदनी लगभग एक लाख रुपए साल की रही होगी। चीज़ों की कीमत के लिहाज़ से उन दिनों के एक लाख आजकल के कम-से-कम दस लाख के वरावर थे।

एक वार पंडित मोतीलालजी जिस समय अदालत जाने को तैयार हुए, गांव का कोई गरीव व्राह्मण अकस्मात् उनके सामने आकर खड़ा हो गया। उस व्राह्मण को अपनी कन्या के विवाह के लिए धन की आवश्यकता थी। उसने मोतीलालजी से तीन सौ रुपए इस काम के लिए मांगे। मोतीलालजी ने फौरन अपने मुन्शी को हुक्म दिया कि आज के दिन जो भी नकद वसूल हो, सव उस व्राह्मण को दे दिया जाय। कचहरी पहुंचने के वाद थोड़ी ही देर में तीन सौ रुपए मुन्शी के पास आ गए। मुन्शी ने वे रुपए व्राह्मण को देकर चलता करना चाहा। व्राह्मण भी तीन सौ रुपए लेकर खुशी से जाने को राज़ी था। पं. मोतीलालजी से पूछा तो उन्होंने फिर इस वात पर ज़िद की कि उस दिन शाम तक जो भी वसूल हो, सव उस व्राह्मण को दे दिया जाय। वह गरीव व्राह्मण उस दिन तेरह सौ रुपए पं. मोतीलालजी से लेकर अपने घर गया।

कई लाख रुपए लागत की अपने रहने की इमारत जो उस समय 'आनन्द भवन' कहलाती थी और अव 'स्वराज्य भवन' कहलाती है कांग्रेस को दान दे देना भी पं. मोतीलाल नेहरू की उदारता की एक अच्छी मिसाल है।

पं. मोतीलाल नेहरू देश की राजनीति में हिस्सा लेने के लिए स्वयं कभी भी उत्सुक या इच्छुक नहीं रहे। सन् १९१९ से पहले के नरमदल नेताओं ने और श्रीमती ऐनी बीसेन्ट की 'होम रूल लीग' ने समय-समय पर उन्हें अपनी ओर खींचा और उनके नाम और प्रभाव से लाभ उठाने की कोशिश की। किन्तु उन्होंने स्वयं इस तरह के प्रयत्नों में कभी कोई खास दिलचस्पी महसूस नहीं की।

अन्त में गांधीजी का समय आया। पं. जवाहरलाल नेहरू पं. मोतीलाल नेहरू के इकलौते और अत्यन्त चहेते वेटे थे। दोनों के चरित्र में वहुत-सी वातें मिलती-जुलती हैं और वहुत-सी एक-दूसरे से भिन्न भी हैं। दोनों पर अंगरेज़ियत और पाश्चात्य सभ्यता का गहरा असर था। दोनों में काफी हिन्दुस्तानियत भी थी, और है। दोनों शान-शौकत और खर्चीलेपन के आदी, दोनों रईस मिज़ाज, दोनों हर तरह की साम्प्रदायिकता, जात-पांत, छुआछूत आदि के दुश्मन, दोनों साधारण अर्थों में धर्म-कर्म और सदाचार के मामूली नियमों में अविश्वासी। दोनों के विचारों, आदतों, आचार और व्यवहार में प्राचीन भारतीय हिन्दू संस्कृति और आजकल की पाश्चात्य संस्कृति सवका एक अजीव मिश्रण। एक वड़ा अन्तर दोनों में यह था कि पं. मोतीलालजी जिस ज़माने में यूरोपियन संस्कृति के सम्पर्क में आए, वह ज़माना इस देश में आज़ादी की मांग और आशा की दृष्टि से एक वड़े दरजे तक नैराश्य का ज़माना था। इसके खिलाफ पं. जवाहरलालजी का यूरोप का ज़माना, वह ज़माना था जव पहले महायुद्ध के कारण आज़ादी की प्यास पूर्वीय देशों में और विशेषकर भारत में अधिक तीव्र हो चुकी थी। पश्चिमी सभ्यता का भी मध्याह्न उस समय वीत चुका था। उस सभ्यता का ढलना प्रारम्भ हो चुका था। पं. जवाहरलाल नेहरू के भारत पहुंचने के थोड़े ही दिनों वाद गांधी-युग शुरू हो गया, करोड़ों भारतवासियों के विचारों, भावों, उनकी आशाओं, इरादों में और उमंगों में एक अपूर्व उथल-पुथल दिखाई देने लगी थी। जवाहरलालजी का उस उथल-पुथल से प्रभावित न होना असम्भव था। जवाहरलालजी गांधीजी के सम्पर्क में आए। गांधीजी से उन्हें और गांधीजी को उनसे असाधारण स्नेह पैदा हो गया। उन दिनों पं. मोतीलालजी को जवाहर-

लालजी की इन प्रवृत्तियों से बड़ा दुख हुआ। वह आन्दोलन की सफलता में विश्वासी नहीं थे। उन्होंने अपने इकलौते प्यारे बेटे को आन्दोलन में कूद पड़ने से बचाने की भरसक कोशिश की किन्तु ज़माने की हवा उनके खिलाफ थी, उन्हें सफलता न मिल सकी।

एक समय था जब जवाहरलालजी ने घरबार छोड़कर सर्वथा त्यागी भाव से गांधीजी के आन्दोलन में कूद पड़ना चाहा। किन्तु उस समय दूरदर्शी महात्मा गांधी ने उन्हें रोका। गांधीजी का कहना था कि—"तुम इस तरह आओ तो मुझे पसन्द है पर यदि तुम्हारे आने में थोड़ी देर भी लग जाए और तुम पिताजी को साथ लेकर आओ तो मुझे अधिक पसन्द होगा।" ज़ाहिर है गांधीजी जहां ऊंचे आदर्शवादी थे वहां पक्के व्यवहारकुशल गुजराती बनिए भी थे। इन पंक्तियों के लेखक के साथ बातचीत करते हुए गांधीजी ने अनेक बार अपने लिए स्वयं 'गुजराती बनिया' वाक्य का उपयोग किया।

गांधीजी के इस रुख के दो साफ नतीजे दिखाई दिए। एक यह कि जवाहरलालजी के अन्दर फिर गांधीजी के आदर्शवाद का असर कम और उनकी व्यवहारकुशलता का असर अधिक आया और दूसरे यह कि गांधीजी की यह इच्छा कि पुत्र के साथ पिता भी उस राष्ट्रीय महायज्ञ में शामिल हो जावें, पूरी हुई। अधिकतर अपने प्यारे पुत्र की जहां तक बन पड़े रक्षा करते रहने के लिए भी मोतीलालजी को आन्दोलन में होना पड़ा।

जवाहरलालजी और मोतीलालजी दोनों के दिलों में महात्मा गांधीजी की बड़ी ज़बरदस्त इज़्ज़त थी किन्तु यह एक बात समझ लेने की है कि दोनों में से किसी ने कभी भी गांधीजी के सब विचारों और तरीकों को पूरी तरह नहीं समझा या सराहा। हमारा विशेष सम्बन्ध इस लेख में मोतीलालजी से है। एक छोटा-सा अवसर इस समय मुझे याद आ रहा है। गांधीजी नमक सत्याग्रह प्रारम्भ कर चुके थे। देशभर में जगह-जगह नमक कानून तोड़े जाने की चर्चा हो रही थी। बम्बई में एक दिन सेठ जमनालाल बजाज के मकान पर मोतीलालजी में और मुझमें नमक सत्याग्रह की उपयोगिता पर बातचीत हो रही थी। उनकी दलीलों का सार उस समय कुछ उन्हीं के शब्दों में यह था—"कोई गवर्नमेंट, महात्माजी के या आपके नमक बनाने की इस तरह परवाह नहीं कर सकती। आप समुद्र के किनारे या कहीं भी पानी या मिट्टी उबालकर इस तरह आठ आने की लकड़ी खर्च करके दो पैसे का नमक बना लें इसकी कौन गवर्नमेन्ट परवाह कर सकती है। इस तरह आप जितना चाहें नमक बनाया कीजिए और आप अपने को बेवकूफ साबित कीजिए इत्यादि-इत्यादि।" मोतीलालजी ने बड़े ज़ोरों और जोश के साथ इस तरह की व्यावहारिक दलीलें मेरे साम्ने रखीं। इसके विरुद्ध गांधीजी का कहना था कि यदि दसों हज़ार आदमी इस तरह कानून तोड़ने लगें तो कोई सरकार इसे सहन नहीं कर सकती। उसे जनता के सामने झुकना ही पड़ेगा। एक पुराने क्रान्तिकारी और जनशक्ति में विश्वासी की हैसियत से गांधीजी की बात मेरे दिल को लगती थी और बहुत जल्दी ही ठीक साबित हुई।

सन् १९२२ में गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद उनके पंच बहिष्कार (स्कूलों और कालिजों का बहिष्कार, कचहरियों का बहिष्कार, सरकारी नौकरियों का बहिष्कार, कौंसिलों का बहिष्कार और इंगलैंड में बने माल का बहिष्कार) को समाप्त करके देशबन्धु चित्तरंजनदास के साथ मोतीलालजी ने स्वराज्य-पार्टी यानी प्रोचेन्जर्स पार्टी की बुनियाद रखी थी। कुदरती तौर पर देश की जनता ने उसका अधिक साथ नहीं दिया। जनता के हृदय में वह उत्साह पैदा करने वाली चीज़ नहीं थी।

आन्दोलन के आखीर के दिनों में भी गांधीजी की शुद्ध अहिंसा के जादू को खत्म करने के लिए पं. मोतीलालजी ने 'कैंची और फावड़ा आन्दोलन' यानी जगह-जगह तार काटने और रेल की पटरी उखाड़ने के आन्दोलन को प्रोत्साहित करना चाहा। स्वयं मेरी मोतीलालजी से इस आन्दोलन के सम्बन्ध में काफी बातचीत हुई थी। किन्तु गांधीजी का और हममें से बहुतों का अन्दाज़ा है कि उस फुटकर आन्दोलन से आज़ादी मिलने में कुछ देर लगी, मदद नहीं मिली।

जो लोग गांधीजी की राय से सहमत न हो पाते थे उनके दिलों को जीतने में गांधीजी अजीव सिद्धहस्त थे । मुझे इसकी वेशुमार मिशालें मालूम हैं । मोतीलालजी भी अनेक वार गांधीजी के तरीकों के खिलाफ उनसे वहस करते थे किन्तु जव वात करके लौटते थे तो कुछ सटपटाए हुए से और कम या अधिक कायल होकर लौटते थे । एक वार इसी तरह के एक मौके पर मोतीलालजी से पहले मेरी खूव वातचीत हुई फिर वह गांधीजी से वात करने गए, जव वहां से लौटे तो मुझसे कहने लगे,—मुझे उनके शब्द लगभग ज्यों के त्यों अभी याद हैं—"क्या वताऊँ भई ! जव इस शख्स के पास जाता हूं तो सोच कर जाता हूं कि यह कहूंगा, यूं समझाऊंगा और जव उस वुड्ढे के सामने वैठकर वातें करता हूं तो थोड़ी ही देर में सिट्टी गुम हो जाती है ।" यह कहकर पं. मोतीलालजी कहकहा मारकर हंसे और गांधीजी की प्रशंसा और उनके साथ स्नेह में साफ डूवे हुए दिखाई देने लगे । पं. मोतीलालजी वहस और दलीलों में लाखों में वल्कि करोड़ों में एक थे । गांधीजी की दलीलें तो जो होती थीं वे होती ही थीं, उनके साथ वैठकर चतुर से चतुर नीतिज्ञ भी एक वार यह अनुभव करने लगता था कि इस आदमी का दिल विल्कुल साफ है, इसकी आत्मा वहुत ऊंची है और यह सचमुच मुझसे प्रेम करता है । मैंने गांधीजी के साथ वैठने का यह असर कैनेडा के किसी समय के अंग्रेज़ गवर्नर-जनरल लौर्ड रौवर्टसन जैसों तक पर अच्छी तरह देखा है ।

अंगरेजियत की शान में ओत-प्रोत पं. मोतीलाल नेहरू जैसे आदमी का कुर्त्ता-धोती पहनकर जनता के सामने आना, देश की आज़ादी के लिए हँसते-हँसते जेल जाना, अपने सर्वस्व, यहां तक कि अपने प्यारे वेटे तक को देश की आज़ादी के लिए न्यौछावर करने को तैयार हो जाना और आज़ादी के संग्राम में डटकर एक सच्चे वीर की तरह लड़ना, ये सव वात गांधीजी के पारस पथरी जैसे गुण को और गांधीजी और मोतीलालजी दोनों के हृदय की शुद्धता, उच्चता और महानता के द्योतक हैं ।

> **बिना स्वतन्त्र नागरिकता के संवैधानिक सुधार ऐसे ही हैं, जैसे मरे हुए शरीर पर मूल्यवान पोशाक पहना देना । खुली धूप और हवा में साँस लेना सर्वोत्तम पोशाक में मृतक होने की अपेक्षा कहीं उत्तम है ।**
>
> —मोतीलाल नेहरू

महान् नेता

दीवान चमनलाल

पंडित जवाहरलाल नेहरू से मेरी पहली मुलाकात पचास साल पहले ब्रिटेन पहुंचने के कुछ ही घंटों के अन्दर हुई थी। उस समय मैं एक अनुभवहीन छात्र था और मुझे सलाह-मशविरे की ज़रूरत थी, यह मदद मुझे वड़ी मात्रा में मिली। हांलांकि १९१० में मेरे पहुंचने के कुछ पहले से ही पं. मोतीलाल नेहरू इंगलैंड में थे, पर मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य १९२० में भारत लौटने से पहले नहीं प्राप्त हुआ।

उस वर्ष कलकत्ता में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के अवसर पर उनसे मिलने की बात मुझे याद नहीं, हालांकि मुझे यह याद है कि देशवन्धु चित्तरंजनदास ने गांधीजी के असहयोग सम्वन्धी प्रस्ताव पर वातचीत के लिए मुझे कई वार बुलाया था। उस समय पंजाव के मेरे कई साथी नौजवानों ने लाला लाजपतराय की खिलाफत कर गांधीजी का पूरी तरह समर्थन किया था। मुझे यह भी याद है कि मैंने अपने भाषण में विन्स्टन चर्चिल द्वारा प्रकट किये गए इस भय का उल्लेख किया था कि अगर भारत एक वार ब्रिटिश शासन के खिलाफ असहयोग-आन्दोलन में संगठित हो गया तो उस पर कब्जा रखना असंभव होगा।

नागपुर अधिवेशन

पर कलकत्ता के विशेष अधिवेशन के कुछ महीने वाद ही दिसम्वर १९२० में नागपुर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में हमारी फिर मुलाकात हुई।

मैंने वम्वई से नागपुर तक श्री एम. ए. जिन्ना के साथ यात्रा की। लाला लाजपतराय लाहौर से नागपुर आए थे। मैं उन्हीं के साथ एक वंगले में ठहरा। मैंने देखा कि कांग्रेस आंदोलन के नेतागण, विशेषकर मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली, लाला लाजपतराय की एकदम उपेक्षा कर रहे हैं। मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली अपनी पूरी ताकत देशवन्धु चित्तरंजनदास और पंडित मोतीलाल नेहरू को गांधीजी के विचारों से सहमत कराने में लगा रहे थे। मैंने जव मौलाना मुहम्मद अली से इस वात का विरोध किया तो उन्होंने मुझसे कहा कि उन्हें वंगाल और यू. पी. के दोनों नेताओं के अलावा और किसी में दिलचस्पी नहीं तथा उनकी सारी ताकत इन्हीं दोनों पर केन्द्रित है। अलगाव की भावना लाला लाजपतराय के दिल में घर कर गयी और जव तक उन्होंने विद्यार्थी-संघ के समक्ष भाषण नहीं शुरू किया, मेरी सारी कोशिशें वेकार होती-सी लगती थीं। अपने भाषण में उन्होंने असहयोग के वारे में गांधीजी द्वारा उठाए गए कदम की निन्दा की। पर अपने भाषण के वीच उन्होंने महसूस किया कि मंच पर उनके आसपास वैठे सभी लोग उनके रुख से वहुत क्षुब्ध हैं। लाला लाजपतराय ने जव छात्रों और नेताओं, दोनों का विरोध-भाव देखा तो अपना लिखित भाषण वदल दिया और समझौते के रूप में सुझाव रखा कि सिर्फ वही छात्र अपने कालेजों का वहिष्कार करें, जो कला व साहित्य का अध्ययन करते हैं, पर जो छात्र विज्ञान पढ़ते हैं, अपनी पढ़ाई जारी रखें। रुख में इस परिवर्तन के कारण मुझे लाला लाजपतराय से और वातें करने का मौका मिला और मैं उन्हें यह समझाने में सफल हुआ कि मेरा दृष्टिकोण सही है। उन्होंने मेरी वात को इस हद तक सही माना कि लाहौर रवाना होने से पहले मुझसे अपनी वदली हुई राय की सूचना पंजाव कांग्रेस के तत्कालीन मंत्री डा. सैफुद्दीन किचलू को देने के लिए कहा। मैंने उनकी इच्छा तत्काल पूरी की।

←

परिवारके साथ—बृजलाल, स्वरूपरानी, विजयलक्ष्मी, जवाहरलाल और मोतीलाल नेहरू

चलती वकालत

इस बीच पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबंधु चित्तरंजनदास के घरों पर दूसरा नाटक खेला जा रहा था। इन दोनों ही नेताओं पर भारी ज़िम्मेदारियां थीं। इसमें शक नहीं कि देशबन्धु चित्तरंजनदास ने रुपया बचाने की कभी कोशिश नहीं की, हालांकि उस समय वे अपनी वकालत से भारत के किसी भी अन्य वकील से अधिक कमा रहे थे। वस्तुत: १९२३ में जब वे लाहौर मेरे साथ रहने आये थे तो उन्होंने वकालत के दिनों की अपनी यादगार सुनाते हुए बताया था कि १९२० में, जबकि उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर वकालत छोड़ी, १२ मास में ६,८५,००० रुपये कमाये। उन दिनों यह आमदनी बहुत बड़ी थी, पर उन्होंने इसकी पाई-पाई खर्च कर डाली। इसलिए उनके लिए अथवा पंडित मोतीलाल नेहरू के लिए अपनी चलती वकालत और रहन-सहन के शाही तौर-तरीके छोड़ देना तथा किसी ब्रिटिश जेल के कैदी की तरह खादी पहनकर बैठने व हर तरह की कठिनाइयां झेलने वाले 'नंगे फकीर' का अनुसरण करना आसान काम न था।

मैं नहीं समझता कि पंडित मोतीलाल नेहरू की आमदनी इससे कुछ कम थी, क्योंकि बाद में १९२७ और १९२८ में जब उन्होंने अपनी वकालत फिर शुरू की तो अथाह धनराशि अर्जित की। नवम्बर १९२८ में आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (जिसकी स्थापना मैंने १९२० में की थी) के झरिया में होने वाले अधिवेशन के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू चुने गये थे, जिससे वे श्रमिक-वर्ग के सम्पर्क में आए। मैं उन्हें अपने साथ झरिया ले जाने के लिए इलाहाबाद गया। वहां आनन्द भवन के बरामदे में कागज़ों से लदी एक गोलमेज़ के पास बैठा मैं चाय पी रहा था। उसी समय डाकिया पंडित मोतीलाल नेहरू की सवेरे की डाक लाया। जब उन्होंने उसे खोला, तो हंसते हुए मेरे सामने तीन चिट्ठियां फेंकी, जिनमें उनके पास भेजे गये कागज़ात के बारे में सिर्फ राय जानने के लिए चेक भेजे गये थे। एक दिन में मिले इन तीन चेकों की कुल रकम ९०,००० रुपया थी। मैं नहीं समझता कि उत्तर भारत में उनके मुकाबले के किसी बड़े वकील ने कभी इतनी अधिक सफलता प्राप्त की। मेरे सामने चेक फेंकते हुए पंडित मोतीलाल नेहरू बोले, "मैं तुमसे अधिक कानून नहीं जानता, पर ऐसा लगता है, मैंने पूर्वजन्म में बहुत अच्छे कर्म किये हैं।" यह कह कर वे हंस पड़े। मैंने वह दिन आनन्द भवन में बहुत आनंद से गुज़ारा, पर कलकत्ते में होने वाले कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष-पद से देने के लिए पंडित मोतीलाल नेहरू ने जो भाषण लिखाया था उस पर पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा व्यक्त की गयी चिन्ता से उन्हें भारी पीड़ा हुई। इस भाषण में उन्होंने हममें से कुछ की जो समाजवाद का प्रचार करते थे और समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य रखते थे, आलोचना की थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने मुझसे यह बात कही और पापा से भी इसका ज़िक्र करने के लिए कहा। मैंने वैसा ही किया। पंडित मोतीलाल नेहरू अपने युवक एवं उत्साही अनुयायियों का इतना सम्मान करते थे कि उन्होंने तुरन्त उन आलोचनात्मक टिप्पणियों को निकालना मंज़ूर कर लिया।

आकर्षक व्यक्तित्व

पंडित मोतीलाल नेहरू का व्यक्तित्व सिंह के समान था, साथ ही उनमें दिल खोलकर हंसने की आदत थी। अपने अनुयायियों के, जो कि वस्तुत: उनकी पूजा करते थे, प्रति उनके दिल में अत्यधिक स्नेह व सम्मान था। उनमें इतनी ज़बर्दस्त विनोदप्रियता थी कि वे हर तरह की मुसीबतों के समय यहां तक कि मौत के समय भी, मज़ाक करने से न चूकते थे वे हम सबके पिता की तरह थे और हम लोग अपनी घरेलू परेशानियां अपने मां-बाप के सामने न रखकर उनके सामने रखते थे और उनसे पिता की तरह सलाह लेते थे। अपने जवानी के दिनों में, जैसा कि फोटो से पता चलता है, वे बहुत ही ताकतवर और खूबसूरत आदमी थे। उमर बढ़ने पर भी, जबकि वे स्वराज्य-पार्टी के नेता हुए, उनका व्यक्तित्व

आकर्षक बना रहा। पश्मीने की पोशाक में कन्धे पर शाल डाले हुए वे रोम की सीनेट के सदस्यों की भांति प्रतीत होते थे। जब वे लेजिस्लेटिव असेम्बली भवन में पहुंचते तो उनकी उपस्थिति से विश्वास और गरिमा का प्रभावशाली वातावरण पैदा हो जाता था और जब वे बोलने खड़े होते थे तो अपना पक्ष इतनी कुशलता से रखते थे कि उसका जवाब देना कठिन होता था। दोस्त-दुश्मन, दोनों ही उनके भाषण को पूरे ध्यान से सुनते थे।

इसके बाद पंडित मोतीलाल नेहरू के बारे में मेरी यादगार उस समय की है जब स्वराज्य-पार्टी की स्थापना हुई। मेरा खयाल है, १९२२ में हमारी मुलाकात लखनऊ के एक होटल में हुई। वहीं मेरा अपने दोस्त स्वर्गीय टी. सी. गोस्वामी से परिचय हुआ। इसके बहुत बाद जब हम दोनों केन्द्रीय धारा सभा और स्वराज्य-पार्टी के कार्यकारिणी के सदस्य थे, पंडित मोतीलाल नेहरू अक्सर भरोसे के साथ हम लोगों को सरकारी पक्ष द्वारा रखे गए तर्कों का जवाब देने का भार सौंपते थे।

चुनाव

१९२३ में पंडित मोतीलाल नेहरू ने मुझसे स्वराज्य-पार्टी के टिकट पर केन्द्रीय असेम्बली का चुनाव लड़ने के लिए कहा। जैसा कि सभी जानते हैं उस साल दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता मौलाना आज़ाद ने की। उस अधिवेशन में तय किया गया कि, अपरिवर्तनवादी (कौंसिल प्रदेश के विरोधी) हमसे, कौंसिल प्रदेश के समर्थकों से, समझौता कर लेंगे, ताकि कांग्रेस में फूट न पड़े और वे हमारे कौंसिल में प्रवेश पर सहमत हो जायेंगे। भावना इतनी तीव्र थी कि हमने वैसे भी कौंसिल में प्रवेश किया होता, पर मैं समझता हूं इस सद्भावनापूर्ण कदम ने कांग्रेस दल में फूट पड़ने से बचा लिया। मैं चुनाव में खड़ा हुआ और मैंने बहुत आसानी से अपने विरोधी को हरा दिया, हालांकि चुनाव लड़ने के लिए समय बहुत कम था, और मेरा निर्वाचन-क्षेत्र शायद दुनिया में सबसे बड़ा था। मुझे खयाल है कि साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस तथ्य का उल्लेख किया कि यह निर्वाचन-क्षेत्र ९२,००० वर्गमील का था और इसमें पंजाब के ५ में से ३ डिवीजन शामिल थे। १९३१ तक, जबकि मैंने अपना इस्तीफा दिया, मेरा निर्वाचन-क्षेत्र यही बना रहा।

तुलसी गोस्वामी और मैं आमतौर पर 'शेर के बच्चे' कहे जाते थे; शेर पंडित मोतीलाल नेहरू थे। गृह सदस्य सर अलेक्ज़ैण्डर मुडिमैन पंडित मोतीलाल नेहरू से बात करते समय यह कहा करते थे। उनकी शिकायत थी कि पंडितजी के भाषण तो बहुत ही रचनात्मक और शिष्ट होते हैं, पर वे सरकारी पक्ष पर प्रहार करने के लिए 'अपने शेर के बच्चे' छोड़ देते हैं।

संयुक्त विरोध

१९२६ का चुनाव का साल बहुत बुरा था, क्योंकि लाला लाजपतराय और पंडित मदनमोहन मालवीय ने स्वराज्य-पार्टी के खिलाफ एक साम्प्रदायिक गुट संगठित कर लिया था और हिन्दू-मुसलमानों के बीच भारी तनाव पैदा हो गया था (यह ध्यान देने की बात है कि आमतौर पर चुनावों के ठीक पहले ये सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं, जिसका बाद में असर पड़ता है)। इस सबके बावजूद यह पुरुष-सिंह, स्वास्थ्य बहुत अच्छा न होते हुए भी, देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौरा कर अपने उम्मीदवारों के समर्थन में भाषण कर रहा था। लाहौर में जब विरोधियों की चालबाजी के कारण सभा में जलाई गई रोशनियां अचानक बुझ गईं, तो भी इस वृद्ध पुरुष ने भाषण इस तरह जारी रखा मानो कुछ हुआ ही न हो। चुनाव के बाद हमारी ताकत बहुत घट गई और यह अनिवार्य था कि कांग्रेस के दोनों गुट देर-सवेर एक हों और दूसरा सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ा जाय। कारण साफ था, बंगाल में सी० आर० दास ने १९२५ तक और केन्द्र में पंडितजी ने १९२६ तक ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध-प्रदर्शन की सम्भावना समाप्त कर

दी थी। १९२४ में जब हम पहले-पहल कौंसिलों में प्रविष्ट हुए, उस समय से स्थिति बहुत बदल चुकी थी। उस वर्ष पंडित मोतीलाल नेहरू के प्रयत्नों से एक नेशनलिस्ट पार्टी संगठित की गई थी, जिसमें स्वराजियों का बहुत बड़ा समूह तो था ही, उसमें इनके अतिरिक्त पंडित मदनमोहन मालवीय के कुछ अनुयायी, जिनमें दीवान बहादुर टी० रंगाचारियर भी थे, तथा श्री मुहम्मद अली जिन्ना भी शामिल थे। भारतीय धारा सभा के इतिहास में पहली बार १४४ सदस्यों वाले सदन में जिनमें नामज़द सदस्य भी थे, ७३ सदस्यों वाली नेशनलिस्ट-पार्टी का स्पष्ट बहुमत हुआ। पर बजट प्रस्तावों का विरोध करने के प्रश्न पर विचार के लिए ईस्टर्न कोर्ट में हुई पार्टी की बैठक में बहुत गम्भीर मतभेद पैदा हो गया। पंडित मोतीलाल नेहरू की राय बजट की हर मुख्य मांग को नामंजूर करने की थी। पर श्री जिन्ना और मालवीयजी इस हद तक जाने के लिए तैयार न थे। वे एक्जीक्यूटिव कौंसिल के अनुदान की मांग को नामंजूर करने को राज़ी थे, बशर्ते अन्य मांगों पर औचित्य के आधार पर विचार किया जाय। बैठक भंग हो गई और गोस्वामी व मैंने वैस्टर्न कोर्ट, जहां पंडितजी ठहरे थे, और मेडन्स होटल के बीच, जहां श्री जिन्ना विराजमान थे, समझौता कराने की कोशिश में काफी दौड़-धूप की। हमें सफलता नहीं मिली, पर मुझे खयाल है कि सीमा-शुल्क-सम्बन्धी पहली मांग को नामंजूर करने के बारे में हम सब एकमत हो गए। बाद में यह समझौता भंग हो गया और हालांकि सरकार का रास्ता साफ नहीं हुआ, पर अगर यह समझौता कायम रहता तो देश में जो बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं न हो पाते और आज़ादी का दिन और दूर चला जाता।

दृढ़ संकल्प

पंडित मोतीलाल नेहरू एक महान् नेता थे, जो मौत के सामने भी हँसते रहे और जिनकी अदम्य इच्छा शक्ति व दृढ़ संकल्प ने देश के इतिहास पर चिरस्थायी प्रभाव डाला है। उनके पुत्र-स्नेह की तुलना उनके देश-प्रेम से ही की जा सकती है और जब कभी इन दोनों के बीच संघर्ष का मौका आया वे देश के लिए अगणित मुसीबतें सहने, यहां तक कि प्राणों से प्यारे पुत्र की कुरबानी देने के लिए भी तैयार रहे। हममें से जो लोग उनके निकट थे वही समझते हैं कि उस वृद्ध पुरुष को अपने प्राणप्रिय पुत्र को भरी जवानी में सारे सुखों पर लात मारकर एक महत् उद्देश्य, मानव-मात्र की स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश जेलों में जाते देख कितनी मर्मान्तक पीड़ा होती थी।

> **जब हम ब्रिटिश सम्बन्धों को विच्छेद करने की बात कहते हैं तो उसका अर्थ यह नहीं होता कि हम सारे सम्बन्धों को तोड़ दें, बल्कि उसका अर्थ होता है कि वर्तमान सम्बन्धों में उपयुक्त परिवर्तन, जो कि परतन्त्रता के स्वतन्त्र राज्य में परिवर्तन के लिए आवश्यक है।**
>
> **—मोतीलाल नेहरू**

अतीत के गौरव पंडित मोतीलाल नेहरू

श्री रामकृपाल सिंह

सन् १८५७ ई. के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के निष्फल होने के उपरान्त विदेशी अंग्रेज़ी सरकार ने अपने खोये हुए प्रभुत्व की पुनःप्राप्ति तथा शासन की सुदृढ़ नींव रखने के लिए देशप्रेमियों के साथ जो नृशंसता एवं अमानुषिक व्यवहार किए उनसे भला कौन परिचित न होगा। विजय-मद से उन्मत्त विदेशी शासक-वर्ग असहाय भारतीय जनता पर मनमाना शासन कर रहा था जिसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की शक्ति किसी में भी नहीं रही थी। भारत भाग्याकाश पर घोर निराशा के बादल छाये हुए थे। जनता में चहुं ओर त्राहि-त्राहि मची हुई थी। मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चला था और वह अपने दिन गिन रहा था। ऐसे समय में दुःख के सागर में डूबी हुई भारतीय जनता की करुण पुकार पर भगवान् ने सागर-मन्थन कर एक अमूल्य मोती प्रदान किया जो हमारे प्रिय नायक मोतीलाल नेहरू के रूप में चमका और जिसका एक कण आज भी जवाहर के रूप में समस्त संसार को शान्ति एवं सद्भावना की किरणों से आलोकित कर रहा है।

पं. मोतीलालजी का जन्म ६ मई, १८६१ ई. को एक कुलीन कश्मीरी ब्राह्मण कुल में भारत के प्रमुख एवं ऐतिहासिक नगर आगरा में हुआ था। आपके पिताजी आपके जन्म के कुछ माह पूर्व ही इस संसार से चल बसे थे। आपके पालन-पोषण तथा शिक्षा का भार आपके बड़े भाई पं. नन्दलालजी पर ही पड़ा। कौन जानता था कि पिता के प्यार व सुख से वंचित यह दीन बालक आगे चलकर अपने अथक परिश्रम, साहस और दृढ़ विश्वास के बल पर एक दिन राष्ट्र की जर्जर नौका का नाविक होगा। बचपन से ही आपने अपनी कुशाग्र बुद्धि, साहस और परिश्रमी होने का परिचय दिया और वकालत की परीक्षा में प्रथम पद प्राप्त कर ख्याति पाई। वकालत में भी आप जल्दी ही खूब चमके और यथा नाम तथा गुण वाली बात पूर्णतया चरितार्थ कर दिखाई। अतुल धन और महान् यश प्राप्त किया और राजसी ठाठ का जीवन व्यतीत करने लगे। प्रयाग में उनका निवास-स्थान 'आनन्द भवन' ऐश्वर्य, विलास और आमोद-प्रमोद के सभी साधनों से सर्वदा परिपूर्ण रहता था जिसके सामने बहुत से राजभवनों की प्रतिभा फीकी दिखाई देती थी। बच्चों के पालन-पोषण व शिक्षा के लिए अंग्रेज़ धाएं व अध्यापिकाएं नियुक्त थीं। अतिथि-सत्कार के लिए पाकशाला में गोआ के जगद् विख्यात विशेषज्ञ रक्खे हुए थे। संसार-भ्रमणकारी संत निहालसिंह ने एक बार कहा था कि पं. मोतीलालजी के यहां जो वैभव व विलास मैंने देखा वह अच्छे-अच्छे राजा-महाराजाओं के यहां भी नहीं था। प्रान्त के गवर्नर भी अपने आमोद-प्रमोद के लिए आनन्द भवन के चक्कर लगाया करते थे। आज भी यह 'आनन्द भवन' अपने अतीत के गौरव से जनता का दर्शन-स्थल बना हुआ है। इसके पीछे अब स्वर्गीय कमला नेहरू की यादगार में बना विशाल कमला नेहरू अस्पताल दिखाई देता है जो कि दर्शकों को मुगल सम्राट् शाहजहां का अपनी प्रिया की याद में बनाए जगत् प्रसिद्ध ताजमहल की अनायास याद दिलाता है और दर्शक अपने को कुछ क्षण के लिए आगरे के लाल किले में भूला पाता है।

इतने उच्चस्तरीय आमोद-प्रमोद एवं विलासमय जीवन व्यतीत करते हुए भी पं. मोतीलालजी का व्यक्तित्व निराला था। वह अपनी कर्त्तव्यपरायणता में कितने सचेत रहे. इसका आभास उस छोटी-सी घटना से मिलता है जब उन्होंने अपने इकलौते लाडले बेटे को उनकी मेज़ से कलम उठाने के अपराध

में मार लगाई थी जिसको आज तक भी हमारे लोकप्रिय प्रधान मंत्री सम्भवतः भूल नहीं पाए हैं। बड़े बाप के लाडले बेटे के 'भारत में' बिगड़ जाने के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। अतः, चरित्र-निर्माण के समय में इस प्रकार दंडित करना यथोचित था। वही जवाहर आगे चलकर जब स्वदेश-प्रेम और आत्म-गौरव से प्रेरित होकर देश के स्वतन्त्रता-संग्राम के मैदान में कूदता है तब वही आमोद-प्रमोद व विलासिता में पले वयोवृद्ध पं. मोतीलालजी सब कुछ त्याग इकलौते पुत्र के आग्रह पर स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी के रूप में हमारे सामने आते हैं। न्याय और तर्क में निपुण इस बूढ़े शेर की दहाड़ से अंग्रेज़ी सरकार भी कांप उठती थी। उस समय का संसद्-भवन आपके ओजस्वी एवं सारयुक्त भाषणों से गूंज उठता था और आपके विरोधी भी दांतों तले उंगली दबाने लगते थे। देश के प्रमुख सेनानी के नाते आपको कारा-वास का दंड भी भुगतना पड़ा जहां विलासिता में पले उस वृद्ध शरीर को अनेकों कष्ट सहन करने पड़े। परन्तु आकृति पर लेश-मात्र भी कभी मलिनता नहीं आने दी। गांधीजी को पं. मोतीलाल की प्रतिभा व प्रखर बुद्धि ने अपनी ओर खींचा और उधर महात्माजी के व्यक्तित्व का भी पूरा-पूरा प्रभाव मोती-लालजी पर पड़ा जिसके फलस्वरूप वे दोनों एक-दूसरे के इतने निकट आ चुके थे कि एक-दूसरे को अपने ही घर का समझते थे। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि मोतीलालजी की मृत्यु पर महात्माजी ने कहा था कि मैं आज विधवा की भांति दुःखी हूं। पंडितजी स्वयं ही नहीं बल्कि घर का घर ही वैभव व विलासिता का त्याग कर जन-साधारण के साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्वतन्त्रता-संग्राम के मैदान में कूद पड़ा था। स्वनामधन्य माता स्वरूपरानी ने अपने वीर-पति व पुत्र का पूर्णतया साथ दिया और उनकी पुत्र-वधू कमला व पुत्रियों ने भी भली-भांति उनका अनुकरण किया। उन दिनों इस महान त्याग के कारण लोगों को इस परिवार के प्रति यह कहते सुनते थे :

'अपनी कुर्बानी से है मशहूर नेहरू खानदान,
कौमी शमा देख ले यह घर का घर परवाना है।'

नेहरू-परिवार की लोकप्रियता में आज तक भी कोई कमी नहीं आई है बल्कि वास्तव में देखा जाए तो उसमें दिनोंदिन वृद्धि ही हुई है। आज स्वतन्त्र भारत के प्रथम लोकप्रिय प्रधान मन्त्री जवाहर-लालजी ही तो हैं जो अपनी अलौकिक प्रतिभा से गत पन्द्रह वर्षों से बराबर इस महान् पद को सुशोभित कर रहे हैं जिसका उदाहरण संसार के किसी भी राष्ट्र के इतिहास में मिलना कठिन है। इतना ही नहीं बल्कि अपनी दूरदर्शिता के कारण संसार के गिने-चुने सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञों में से एक माने जाते हैं। पुत्र ही नहीं, पुत्री विजयलक्ष्मी ने भी अपनी कुशाग्र बुद्धि से भिन्न-भिन्न उच्च पदों पर सेवा कर देश और विदेशों में ख्याति प्राप्त की है। और एकमात्र लाड़ली पौत्री इन्दिरा ने भी अपने अथक परिश्रम एवं प्रखर बुद्धि द्वारा इस अल्पायु में भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष-पद को प्राप्त कर अपनी लोकप्रियता का परिचय दिया है। इन सबका श्रेय पं. मोतीलालजी को ही है जिन्होंने अपनी सन्तान को उच्चकोटि की शिक्षा दिलाने एवं मार्गदर्शन में कोई कसर नहीं रखी थी और बचपन से ही उनमें विचारों की स्वत-न्त्रता ने निर्भीकता, साहस और आत्मगौरवता का अंकुर पैदा किया, जिसका उन्होंने स्वतन्त्रता-संग्राम में और तत्पश्चात् स्वतन्त्र भारत में भली-भांति परिचय दिया है।

पं. मोतीलालजी का जीवन भारतवर्ष में एक विलक्षणता का उदाहरण है और एक सफल जीवन होने के नाते अनुकरणीय है। पंडितजी के पूर्वज भले ही दिल्ली के शाही दरबार के कृपापात्र रहे हों परन्तु उनके जन्म से कुछ वर्ष पूर्व स्वतंत्रता की उस महान आंधी ने दिल्ली से उखाड़कर उनके पिता पं. गंगाधरजी को आगरा में बसने को विवश किया था। और उसके दो-तीन साल बाद ही युवावस्था में उनका स्वर्गवास हो गया था। अतएव पं. मोतीलालजी के जन्म के समय नेहरू-परिवार एक साधारण गृहस्थी के रूप में था। एक साधारण कुल में जन्म लेकर एक असाधारण व्यक्तित्व को प्राप्त करके मरना क्या कम आश्चर्य की बात है। इसे भी जाने दीजिए, उनकी हरएक बात में क्या आन बान शान, क्या खानपान और क्या

दान, सभी में निरालापन था। उनका जीवन भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता के सम्मिश्रण का एक सुन्दर प्रतीक था। पाकशाला में जहां पश्चिमी ढंग प्रवेश कर चुका था वहां भारतीय प्रणाली भी अपनी उपादेयता के कारण जमी बैठी थी और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार भोजन मिलता था। वेश-भूषा पूर्णतया पश्चिमी होने पर भी उनके चेहरे पर उनकी लम्बी नुकीली मूंछें भारतीय संस्कृति की परिचायक थीं। वह अपनी आन और शान के लिए सब कुछ करने को तत्पर रहते थे। पैसे की कभी कोई चिन्ता नहीं करते थे चाहे जितना भी खर्च क्यों न करना पड़े। उसका कारण था कि उन्हें अपनी बुद्धि पर दृढ़ विश्वास था और अथक परिश्रम करने की उनकी आदत थी। यह क्या कम आश्चर्य की बात है कि पश्चिमी ढंग का रहन-सहन रखते हुए भी मरने से कुछ वर्ष पूर्व तक बराबर नितप्रति भारतीय ढंग का व्यायाम, डण्ड-बैठक किया करते थे और मृत्यु से कुछ क्षण पूर्व उन्हें गायत्री मन्त्र को जपते सुना गया था। उसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के प्रति उनका कितना अगाध प्रेम था। वह एक स्वतन्त्र विचार वाले और निर्भीक व्यक्ति थे और अपने मन की बात को साफ साफ कहने में कभी नहीं सकुचाते थे चाहे वह किसी को बुरी ही क्यों न लगे। इससे लोग उनके विरोधी भी हो जाते थे। परन्तु स्पष्टवादिता के कारण प्रशंसा भी करते थे। पंडित मोतीलालजी अपने ज़माने के माने हुए वकील थे और वकालत में लाखों रुपया कमाया भी परन्तु अपनी उदार प्रवृत्ति के कारण बराबर खर्च भी कर देते थे जिसके फलस्वरूप वकालत छोड़ने के बाद उनको आर्थिक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा था। वह अपनी बात के कितने धनी थे इसका पता इस छोटी-सी घटना से लगाया जा सकता है कि एक दिन एक गरीब ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिए ३००) लेने इनकी कोठी पर सुबह को पहुंचा। पंडितजी कचहरी जाने की तैयारी में थे। उस गरीब की बात सुनी और मुन्शीजी से कहा कि आज जो फीस कचहरी में मिले वह इस ब्राह्मण को दे देना और उसको कचहरी पहुंचने को कहा। मुन्शी ने कचहरी में फीस आने पर ३००) उसको दिये और वह चलने लगा इतने ही में पंडितजी आ गए और बोले कि नहीं आज जो भी फीस आएगी वह सब इनको देनी है। ब्राह्मण रोक लिया गया और शाम को ३००) के बजाय १३००) लेकर अपने भाग्य को सराहता चला गया।

सन् १९२८ में पं० मोतीलाल नेहरू कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष चुने गए थे और सन् १९२९ में लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस-अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू हुए थे। इस लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस अध्यक्ष-पद अपने सुयोग्य पुत्र जवाहर के लिए छोड़ते हुए बड़ी प्रसन्न मुद्रा में उन्होंने कहा था कि पिता जिस काम को पूरा नहीं कर पाया पुत्र उसको पूरा करेगा। पंडितजी के मार्मिक शब्द अक्षरशः सही निकले। उन दिनों मुझ पर भी पं० मोतीलाल नेहरू के व्यक्तित्व का प्रभाव काफी पड़ा था। मुझे भली-भांति याद है कि मैं उन दिनों नवीं कक्षा का छात्र था और अंग्रेजी विषय के अध्यापक ने आदेश दिया था कि अपने प्रिय नायक (Favourite Hero) के ऊपर निबन्ध लिखो तो मैंने उस ब्रिटिश शासन-काल में १३-१४ वर्ष की अल्प आयु में पं० मोतीलाल नेहरू पर लेख लिखा था और उस पर अध्यापक ने नोट लिखा था—

"You should not write on the lives of persons who are against the settled government." अर्थात् तुम्हें ऐसे व्यक्ति की जीवनी नहीं लिखनी चाहिए जो एक सत्ताधारी शासन के विरोधी हों। और वैसे मुझे अपने पास बुलाकर मेरी पीठ थपथपाई थी और धीरे से 'शाबाश' कहा था। मुझे वह दिन भी याद है जब पं० मोतीलाल नेहरू की मृत्यु का दुखद समाचार सुनते ही मैं कक्षा से निकल भागा था। और अगले दिन मुख्याध्यापक की बेंत का प्रहार सहन करना पड़ा था। परन्तु मेरे मन को इस बात से शान्ति मिली थी कि मैं एक महान् देशभक्त, त्याग एवं अदम्य साहस की मूर्ति के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर सका। माता स्वरूपरानी के निधन पर भी मैंने अपनी श्रद्धांजलि कविता-रूप में

अर्पित की थी जिस पर ११ मार्च सन् १९३८ को पं० जवाहरलालजी ने व श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने पत्रों द्वारा आभार व्यक्त किए थे। श्रद्धांजलि की कुछ पंक्तियां यह हैं—

हा शोक मिलकर भी सभी जिनको न जीवित रख सके।
समझा उचित सो सब किया पर यत्न कर-कर ही थके॥
हैं जानते सब ही मनुज जीवन-मरण अनिवार्य है।
पर तात कुसमय देख करि होता न क्या आश्चर्य है॥
बालक युवा हो वृद्ध अथवा है सभी का दुःख महा।
जिसकी तनिक-सी याद पर मन स्वजन का जाता दहा॥
थीं वह नहीं यद्यपि युवा पर युवति सम थीं वृद्ध भी।
निज देश सेवा-मार्ग से विचलित नहीं पाया कभी॥
थीं त्याग माता वह बड़ी नहीं नेक था मन में विमोह।
सच है विधि भी सुजन का देता करा जल्दी विछोह॥
जिनका अहो परिवार था मोती जवाहर से भरा।
थी लक्ष्मी कमला उमा जिनकी सदा प्रिय अनुचरा॥
जिनके पति व पुत्र दोनों राष्ट्रपति भारत बने।
जो देश भारत के नरों में अग्रसर जाते गिने॥
जिनकी सुता प्रिय लक्ष्मी बनीं आज मन्त्री हिन्द में।
सुत ताज बिन सम्राट् जिनके हो रहे हैं हिन्द में॥
जिनके सुत की सुता हैं स्वयं इन्दिरा प्रियदर्शिनी।
प्रयाग में परिवार था या देवलोक प्रदर्शनी॥
कमला मोती के विरह को देश भूला था नहीं।
हा! राष्ट्रमाता खो हुआ यह और भी निर्धन कहीं॥
थीं वीर जननी वीर रमणी वीर मोतीलाल की।
देश हित वेदी पै जिन बलि दी अकेले लाल की॥
लिक्खूं अधिक क्या ईश अब दो आत्मा को शान्ति।
पैदा करो पुनः हिन्द में पैदा करें जो क्रान्ति॥

पं० मोतीलालजी व माता स्वरूपरानी जी दोनों यद्यपि इस संसार में नहीं हैं परन्तु उनकी यश-कीर्ति संसार में अमर रहेगी। भारत ही नहीं अपितु सारा संसार उनकी देन का आज भी आभारी है। संसार का बड़े से बड़ा तथा अनुभवी से अनुभवी जौहरी भी भारत के इस अनुपम रत्न का मूल्यांकन नहीं कर सकता क्योंकि मेरी दृष्टि में :

कौन उस मोती की कीमत का लगा सकता हिसाब।
जिसका इक ज़र्रा जवाहर आफ़तावे मुल्क है॥

हम यहाँ सहयोग का अपना हाथ बढ़ाने आए हैं, बशर्ते कि आप हमारे साथ सहयोग करें। अगर आप हमारे हाथ को स्वीकार करेंगे तो हम आपके आदमी होंगे, अन्यथा मर्दों की भाँति हम अपने अधिकारों पर आरूढ़ होंगे, और आपके साथ असहयोग करना जारी रखेंगे।

—मोतीलाल नेहरू

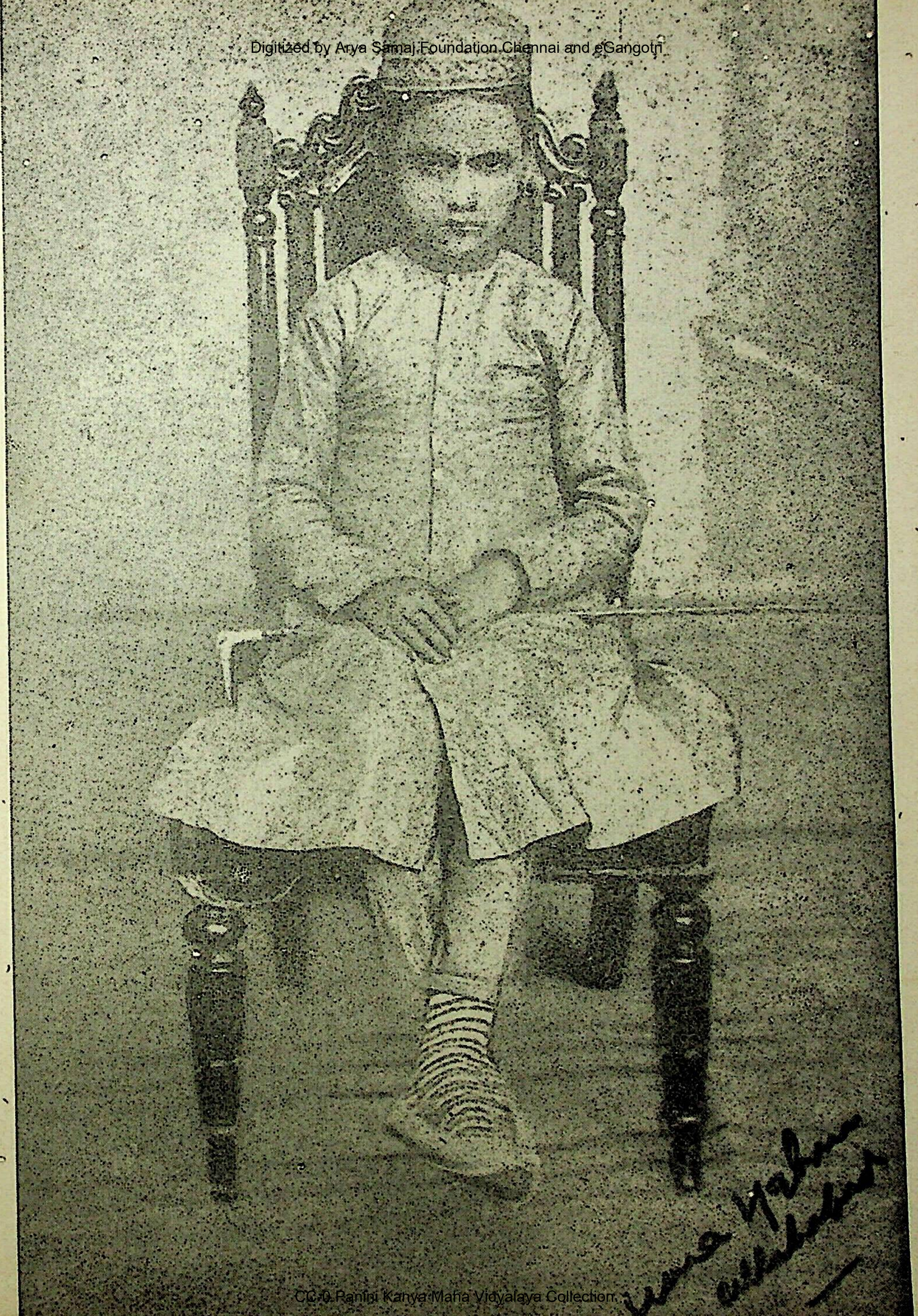
Mohan
Allahabad

जन्मजात योद्धा

बी. आर. नन्दा

नेहरू-परिवार मूलत: कश्मीर का निवासी है। अठारहवीं सदी के आरम्भ में कश्मीर से दिल्ली आया और वहीं बस गया। मोतीलाल के दादा लक्ष्मीनारायण दिल्ली के मुगल-दरबार में ईस्ट इंडिया कम्पनी के पहले वकील थे। मोतीलाल के पिता गंगाधर १८५७ के विद्रोह के समय दिल्ली में कोतवाल थे। सितम्बर, १८५७ में जब विजयी ब्रिटिश फोजें मारकाट करती हुई नगर में घुसीं तो आतंकग्रस्त दिल्लीवासी भागने लगे। कुछ लोगों ने दिल्ली के आसपास के इलाकों में शरण ली। कुछ लोग दिल्ली को सदा के लिए छोड़कर दूसरे स्थानों पर बसने के लिए चले गये। दिल्ली छोड़कर आगरा जानेवालों में गंगाधर, उनकी पत्नी जियारानी, दो पुत्रियां—पटरानी और महारानी तथा पुत्र, बंशीधर और नन्दलाल भी थे। १८५७ की उथल-पुथल में अपना सर्वस्व गवा देने के कारण गंगाधर को ज़िन्दगी नये सिरे से शुरू करनी पड़ी, पर वे ज्यादा दिन नहीं जिए। १८६१ के आरम्भ में ३४ वर्ष की अल्प आयु में ही उनका निधन हो गया। उनकी मृत्यु के तीन मास बाद उनकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम मोतीलाल रखा गया।

पति की मृत्यु से जियारानी को भयानक आघात पहुंचा। यह ऐसा संकट था, जिसके कारण बहुत से पुराने भारतीय परिवार हमेशा के लिए बर्बाद हो गये। सौभाग्यवश बंशीधर और नन्दलाल हिम्मती लड़के थे और अपनी किशोरावस्था में ही वे अपने पैरों पर खड़े हो सके। बंशीधर को आगरा की सदर दीवानी अदालत में फैसला-नवीस का काम मिल गया। वे बाद में तरक्की करके सबार्डिनेट जज हो गए। नन्दलाल अध्यापक बने और बाद में राजस्थान की एक छोटी रियासत, खेतड़ी के दीवान हो गए। बड़े भाई सरकारी नौकरी में थे और उनका तबादला होता रहता था, इसलिए मोतीलाल का पालन-पोषण नन्दलाल ने किया। इन दोनों में गहरा स्नेह-सम्बन्ध कायम हो गया। संयुक्त हिन्दू परिवारों की सम्पूर्ण खामियों के बावजूद उनमें इस तरह के स्नेह-सम्बन्धों के उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं।

नन्दलाल ने १८७० में खेतड़ी छोड़ दिया और वकालत की परीक्षा पास करके आगरा में वकील बन गए। जब हाईकोर्ट इलाहाबाद चला गया, तो नन्दलाल भी आगरा छोड़कर इलाहाबाद चले गए।

शिक्षा

इस बीच मोतीलाल का विकास एक मेधावी बालक के रूप में हो रहा था। उन्होंने खेतड़ी के राजा के शिक्षक सदरुद्दीन से अरबी और फारसी पढ़ी। उन्होंने १२ वर्ष की उम्र में ही फारसी में ऐसी योग्यता प्राप्त कर ली, जिसे देखकर बड़े-बड़े अचरज करते थे। कानपुर से मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास करने के बाद वे इलाहाबाद के म्योर सेन्ट्रल कालेज में भरती हुए। वे कसरत, कुश्ती और खेलने के शौकीन थे। उनमें जीवन के प्रति गहरी जिज्ञासा तथा दिलचस्पी थी, जिससे वे पढ़ाई के साथ ही बहुत-सा समय खेल के मैदानों व मनोरंजन के स्थानों में गुज़ारते थे। इसलिए स्कूल-कालेज के जीवन में अध्ययन-सम्बन्धी उल्लेखनीय सफलताएं उन्हें नहीं प्राप्त हुईं। किन्तु अपनी हाजिर-जवाबी एवं तीव्र बुद्धि के कारण उन्होंने म्योर सेन्ट्रल कालेज के प्रिंसिपल हैरिसन तथा अन्य अंगरेज़ शिक्षकों का स्नेह प्राप्त कर लिया था। वे सब इस मेधावी, जोशीले और उत्साही कश्मीरी युवक के प्रति विशेष दिलचस्पी रखते

थे। अपने अंगरेज़ प्रोफेसरों का मोतीलाल के जीवन पर गहरा असर पड़ा। उनके सम्पर्क से जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बौद्धिक तथा तर्कपूर्ण हो गया तथा वे अंगरेज़ी संस्कृति और रहन-सहन के तौर-तरीकों को बहुत ज्यादा पसन्द करने लगे। इस तरह की शिक्षा-दीक्षा के ही कारण मोतीलाल अनुदार जातिभेद से जर्जर एवं संकीर्ण हिन्दू समाज को चुनौती दे सके।

मोतीलाल जब बी. ए. की परीक्षा में बैठे, तो उन्हें गलतफहमी (जो बाद में गलत साबित हुई) हो गई कि उनका पहला पर्चा बिगड़ गया है, इसलिए वे बाकी परीक्षा में शामिल नहीं हुए। इस तरह उनका कालेज का जीवन अपूर्ण समाप्त हुआ। अगर किशोरावस्था की यह अस्थिर, अनिश्चित तथा अनुत्तरदायित्वपूर्ण मनोवृत्ति बनी रहती तो मोतीलाल जीवन में कुछ न कर सकते। सौभाग्यवश उन्होंने अपनी प्रवृत्तियों को बदला और वकील बनने का फैसला किया। उन्होंने अपनी कानून की पढ़ाई बहुत मेहनत से की, जिसके फलस्वरूप १८८३ की वकालत की परीक्षा में वे सर्वप्रथम आए। उन्होंने कानपुर में वकालत शुरू की। वहां वकालत अच्छी चलने लगी, पर कानपुर ज़िला अदालत उनकी प्रतिभा एवं महत्वाकांक्षा के लिए उपयुक्त स्थान न थी। तीन साल बाद वे इलाहाबाद चले आए, जहां हाईकोर्ट में उनकी वकालत के लिए अधिक व्यापक क्षेत्र था और इस प्रकार वे अपने भाई नन्दलाल के निकट भी आ गए जो वहां वकालत से पर्याप्त आमदनी कर रहे थे।

मोतीलाल पर एक बार फिर भाग्य का क्रूर प्रहार हुआ। अप्रैल १८८७ में ४२ वर्ष की आयु में नन्दलाल की मृत्यु हो गई। वे अपने पीछे पांच पुत्र और दो पुत्रियां छोड़ गए। इस तरह मोतीलाल पर पच्चीस वर्ष की आयु में ही एक विशाल परिवार के भरण-पोषण का भार आ पड़ा।

प्रतिभाशाली वकील

मोतीलाल के जीवन के आरम्भिक दिनों में दुर्भाग्य उन पर मंडराता रहता था। जन्म के पहले ही पिता की मृत्यु हो गई तथा जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रिय भाई उनसे सदा के लिए जुदा हो गए। पर मोतीलाल मुसीबतों से घबराने वाले आदमी न थे। भाई की मृत्यु से उनका बोझ बढ़ गया, पर इसके साथ ही वे अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में अधिक लगन से जुट गए। सफलता भी उन्हें बहुत जल्दी मिली। ४० वर्ष की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते वे हज़ारों रुपया कमाने लगे। वे उस समय के चार सबसे बड़े वकीलों में गिने जाने लगे। अन्य वकील थे—पंडित (बाद में सर) सुन्दरलाल, मुंशी रामप्रसाद और जोगेन्द्रनाथ चौधरी। इन लोगों का नाम १८९६ में इलाहाबाद हाईकोर्ट के एडवोकेटों की तालिका में दर्ज हुआ। इसके बाद उत्तर भारत के प्रमुखतम वकीलों में मोतीलाल की स्थिति सुनिश्चित हो गई। इलाहाबाद हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधिपति सर ग्रिमवुड मियर्स ने वकालत के पेशे में मोतीलाल की सफलता का कारण यह बताया था कि "उनमें अनेकानेक गुण थे। वे अपने विषय का सहज ज्ञान रखते थे। एक एडवोकेट के रूप में वे अपने मामले को बहुत ही आकर्षक रूप में पेश करने की कला जानते थे। मामले के बयान में हर तथ्य उचित स्थान पर आता था और उस पर जितना ज़रूरी होता, उतना ही ज़ोर दिया जाता। उनकी आवाज़ सार्वजनिक भाषण के लिए बहुत ही उपयुक्त थी और उनके तौर-तरीके इतने आकर्षक थे कि उनको सुनने में बहुत ही आनन्द आता था।" सर ग्रिमवुड ने इस बात का उल्लेख नहीं किया और संभवतः जानते ही नहीं थे कि मोतीलाल अपने मुकदमों की तैयारी बहुत अधिक मेहनत से करते थे।

आशावादिता और आत्म-विश्वास के कारण मोतीलाल को वकालत में बहुत जल्दी सफलता मिली। इस सफलता से उनका आत्म-विश्वास और बढ़ा। अपनी पिछली जिन्दगी पर नज़र डालने पर वे महसूस करते थे कि उन्होंने भारी कठिनाइयों पर विजय पाई है। उन्होंने अपनी सफलता को जान-

बूझकर छिपाने की कोशिश नहीं की, बल्कि उसका खूब खुलकर उपयोग किया। वे ऐसे व्यक्तियों में न थे जो अपने सौभाग्य पर परदा डालना और मुसीबतों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाना पसन्द करते हैं। वह पैसा, इज़्ज़त व ज़िन्दगी को सुखमय बनाने वाली चीज़ों की कद्र करते थे और खुशकिस्मती से ये सभी चीज़ें उन्हें भरपूर प्राप्त हुईं।

पश्चिमी रहन-सहन

मोतीलाल के जीवन में वस्तुतः किसी बात की कमी नहीं लगती थी। उनकी पत्नी स्वरूपरानी कश्मीरी महिलाओं में एक रत्न थीं। १८८९ में पुत्र जवाहरलाल का जन्म भारी हर्ष का अवसर था। १९०० व १९०७ में दो पुत्रियों सरूपा और कृष्णा के जन्म से परिवार भरापूरा हो गया। मोतीलाल ने १९०० में एक मकान (नम्बर १, चर्च रोड) खरीदा और उसका पुनर्निर्माण कर उसका नाम 'आनन्द भवन' रखा। पश्चिमी रहन-सहन के प्रति उनका लगाव जैसे-जैसे बढ़ता गया, जीवन-स्तर ऊंचा होता गया। १८९९ और १९०० की यूरोप यात्राओं के बाद इसमें और वृद्धि हुई। रहन-सहन के बदलते हुए तौर-तरीकों के सिलसिले में खाने की मेज पर छुरी-कांटे और बच्चों के लिए यूरोपियन नर्स व ट्यूटर आ गए। तत्कालीन कश्मीरी ब्राह्मणों में संभवतः समुद्र-यात्रा से बढ़कर अन्य किसी बात के प्रति विरोधाभाव न था।

विदेश-यात्रा से भारत लौटने पर मोतीलाल ने 'प्रायश्चित्त' करना नामंजूर कर दिया। उन्होंने अपने कुछ विरोधियों से साफ-साफ कहा, "मैं जानता हूं तुम्हारी बिरादरी क्या है।" २२ दिसम्बर, १८९९ को उन्होंने अपनी बिरादरी के एक प्रमुख नेता को लिखा, "अगर ज़रूरत पड़ी तो मैं बिना किसी हिच-किचाहट के इस जीर्ण-शीर्ण समाज की असलियत को बेनकाब कर दूंगा।" उनको जाति से बहिष्कृत किया गया, पर उन्होंने बिरादरी के अगुओं के फरमान पर कोई ध्यान नहीं दिया। उनके प्रतिरोध ने कठमुल्लेपन की बुझती हुई चिनगारियों को बुझाने में और मदद की। १९०५ में मोतीलाल ने फिर यूरोप की यात्रा की। इस बार वे अपने पूरे परिवार के साथ गए। जवाहरलाल को हैरो के स्कूल में भरती करने के बाद वे उसी वर्ष नवम्बर में वापस लौटे। जवाहरलाल हैरो से कैम्ब्रिज चले गए, जहां से उन्होंने प्राकृतिक विज्ञान में डिगरी ली और उसके बाद वे वकालत पढ़ने लगे।

जून १९१२ में अपने पुत्र के भारत लौटने से दो मास पहले मोतीलाल ने अपने भाई से बड़े विश्वास के साथ कहा था कि "३५ वर्ष की कड़ी मेहनत के बाद बाकी जिन्दगी सुख-चैन से गुज़ारने के लिए मैं जल्दी ही अवकाश ग्रहण करने की सोच रहा हूं। पर, उन्हें क्या मालूम था कि उनकी ज़िन्दगी के आखिरी वर्ष ही सबसे ज़्यादा तूफानी और स्मरणीय होंगे और तभी उन्हें सबसे कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी। अगर मोतीलाल को अपनी इच्छा के अनुसार अवकाश मिल जाता तो वे आनन्द भवन में दरबार लगाते, दोस्तों की दावतें करते और कश्मीर या दक्षिणी फ्रांस में छुट्टियां गुज़ारते हुए बहुत लम्बी उम्र तक जीते। उनके पुत्र-पौत्र अपने परिवार के इस बुज़ुर्ग के रोब-दाब व शानशौकत को बड़ी दिलचस्पी से याद करते, जिसके कठोर चेहरे के पीछे स्नेह की अजस्र धारा बहती थी। उत्तर प्रदेश की विशेषकर अपने नगर इलाहाबाद की बॉर-लायब्रेरियों में वे ऐसे वकील के रूप में याद किए जाते, जिसने अपनी ज़िन्दगी खूब शान-शौकत से गुज़ारी और वकालत से बेतहाशा रुपया पैदा किया और उसे दिल खोलकर खर्च किया। परन्तु भाग्य ने मोतीलाल के लिए इससे कहीं ऊंचा स्थान नियत कर दिया था। उन्हें भारतीय स्वतन्त्रता के निर्माताओं में स्थान ग्रहण करना था।

राजनीति में प्रवेश

यह भारी अचरज की बात है कि मोतीलाल ने शुरू में राजनीति में, हिचकिचाहट के साथ, छिटपुट काल के लिए प्रवेश किया। इलाहाबाद कांग्रेस (१८८८) के १४०० प्रतिनिधियों की सूची में

'पंडित मोतीलाल, हिन्दू, ब्राह्मण वकील हाईकोर्ट, एन० डब्ल्यू० पी० (नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज), का नाम भी शामिल है। वे कांग्रेस के बाद के भी कुछ अधिवेशनों में शामिल हुए, पर निष्क्रिय दर्शक के रूप में। अपने इलाहाबाद के समकालीन मदनमोहन मालवीय की तरह उसमें सक्रिय भाग नहीं लिया। वे अपने पेशे में इतने तन्मय थे कि सक्रिय राजनीति में भाग लेने के लिए न तो उनके पास समय था और न उसमें उनकी अभिरुचि ही थी। बंगाल के विभाजन के बाद नरम तथा गरम दल वालों के बीच खींच-तान उन्हें सक्रिय राजनीति में घसीट लाई और अचरज की बात है कि उन्होंने नरमदल वालों का साथ दिया। १९०७ में उन्होंने इलाहाबाद में हुए एक प्रान्तीय सम्मेलन की अध्यक्षता की। अध्यक्ष-पद से दिया गया उनका भाषण गरमदल की विचारधारा पर जबर्दस्त प्रहार था। उन्होंने अपने भाषण में कहा, "हम संवैधानिक रूप से आंदोलन करने वाले हैं," और "हम जो सुधार करवाना चाहते हैं, वे संवैधानिक माध्यम से होने चाहिएं।" वे अंगरेज़ों की ईमानदारी में विश्वास रखते थे। उनका कहना था कि "अंग्रेज़ स्वभाव से अच्छा होता है वह किसी की बुराई करना नहीं चाहता।·· स्थिति को पूरी तरह समझने में उसे कुछ देरी लगती है, पर जब वह चीज़ों को साफ-साफ देख लेता है तो अपना कर्त्तव्य करने से नहीं चूकता। और दुनिया की कोई भी ताकत, यहां तक कि उसके देश के बन्धु-बान्धव भी, उसकी अदम्य इच्छाशक्ति का प्रतिरोध नहीं कर पाते।"

१९०९ में मोतीलाल उत्तर प्रदेश कौंसिल के सदस्य चुने गए। १९११ में वे बादशाह जार्ज पंचम व रानी मेरी के आगमन के सम्मान में आयोजित दिल्ली दरबार में शामिल हुए। वे इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य और सेवा समिति के उपाध्यक्ष हुए। वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य और यू० पी० कांग्रेस के अध्यक्ष भी रहे। किन्तु इन सबके बावजूद वे राजनीति के मुकाबले अपने घरेलू जीवन और पेशे में ही अधिक दिलचस्पी लेते थे। १९१२ से जबकि जवाहरलाल इंगलैंड से लौटे, मोतीलाल के घर में और देश में ऐसी ताकतें काम करने लगीं, जो उन्हें राजनीति के बवंडर में खींच लाईं।

वामपक्षी रुझान

प्रथम विश्वयुद्ध ने भारतीय समाज के कई क्षेत्रों में गहरा असन्तोष पैदा कर दिया, जिसका एक रूप होमरूल आन्दोलन में दिखाई पड़ा। मोतीलाल होमरूल लीग में शामिल होने में हिचकिचा रहे थे, पर जून १९१७ में मद्रास सरकार द्वारा श्रीमती एनी बेसेन्ट की नज़रबन्दी उन्हें संघर्ष के मैदान में खींच लाई। वे होमरूल लीग की इलाहाबाद शाखा के अध्यक्ष बन गए और उन्होंने नज़रबन्दी का विरोध करने के लिए आयोजित एक प्रान्तीय सम्मेलन की अध्यक्षता की। अब मोतीलाल की राजनीति धीरे-धीरे, पर स्पष्टतः, गरम दल की ओर झुकने लगी। अगस्त १९१८ में संवैधानिक सुधारों के मसले पर उन्होंने अपने नरमदली मित्रों का साथ छोड़ दिया। इसी वर्ष के अन्त में उन्होंने बम्बई कांग्रेस अधिवेशन में सक्रिय भाग लिया, जिसमें मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के आमूल परिवर्तन की मांग की गई। ५ फरवरी, १९१९ को उन्होंने अच्छी तरह जमे हुए तथा माडरेट विचारों को प्रतिपादित करने वाले 'लीडर' के मुकाबले एक नए दैनिक पत्र 'इण्डिपेण्डेण्ट' को जन्म दिया।

भारतीय राजनीतिक गगन में महात्मा गांधी के अभ्युदय ने भारतीय इतिहास की धारा बदल दी। उन्होंने नेहरू-परिवार पर भी गहरा असर डाला। फरवरी १९१९ में रौलट बिलों और उसके विरोध में सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्रों के प्रकाशन से जवाहरलाल के हृदय में बवंडर उठ खड़ा हुआ और उन्होंने महात्मा गांधी का अनुसरण करने का निश्चय किया। मोतीलाल ऐसे आदमी न थे जिनको आसानी से डिगाया जा सके। उनके कानूनी दिमाग़ ने उन्हें कानून-विरोधी आन्दोलन में कूदने से घसीटा। जान-बूझकर कानून तोड़ना उन्हें बिलकुल बेकार बात लगी और अपने एकमात्र पुत्र के जेल जाने की वह

कल्पना तक नहीं कर सकते थे। स्पष्टतः पिता-पुत्र दोनों परस्पर-विरोधी विचारों के हो गए। दोनों में से कोई भी अपना आग्रह छोड़ने को तैयार न था, पर मोतीलाल के कहने पर गांधीजी ने बीच-बचाव किया और युवक जवाहरलाल को धीरज रखने की सलाह दी।

कुछ समय बाद ही घटनाओं ने पंजाब में भीषणतम दुःखदायी रूप धारण कर लिया। जलियांवाला बाग के हत्याकांड के बाद मार्शल लॉ लागू हो गया। पीड़ित पंजाब की सान्त्वना व सहायता के लिए मोतीलाल से जो भी बन पड़ा उन्होंने किया। अपनी वकालत की परवाह न कर उन्होंने मार्शल लॉ के शिकार सैकड़ों फांसी व लम्बी कैद की सज़ा पाए हुए बदकिस्मत लोगों की मुफ्त पैरवी की। पंजाब के उपद्रवों की जांच के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा नियुक्त गैर-सरकारी समिति में भी उन्होंने गान्धीजी के साथ काम किया। सी० एफ० एन्ड्रूज ने, जिन्होंने समिति की कार्यविधि देखी थी, लिखा है, "यह देखकर कितना दुख होता था कि दोनों (गान्धीजी तथा मोतीलाल) जब मंजे हुए वकील की हैसियत से अपने सामने पेश की जाने वाली गवाहियों की जांच करते थे तो उन्हें किस तरह आघात-पर-आघात लगते थे।" एन्ड्रूज साहब ने लिखा है कि अमृतसर ने मोतीलाल के उस विश्वास की जड़ ही हिला दी, जिस पर उन्होंने अपनी जिन्दगी की नींव खड़ी की थी।

अग्रणी नेताओं की पंक्ति में

अमृतसर कांग्रेस (दिसम्बर १९१९) का अध्यक्ष चुने जाने पर मोतीलाल उस बढ़ते हुए बवंडर के बीच में आ गए, जिसने बाद के वर्षों में देश पर अपनी स्पष्ट छाप छोड़ी। देश के अग्रणी नेताओं में मोतीलाल अकेले थे, जिन्होंने कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में असहयोग के प्रस्ताव का समर्थन किया। इसमें सन्देह नहीं कि मोतीलाल ने अपना भाग्य गान्धीजी से नत्थी करने का फैसला १९१९ की दुखद घटनाओं के बाद ही कर लिया था। उन दिनों भी, जबकि वे अंग्रेजों के परम भक्त थे, उनमें आत्म-सम्मान की तीव्र भावना थी। १९०७ में इलाहाबाद में नरम दलीय सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने 'सत्तारूढ़ व्यक्तियों की जी-हजूरी व चापलूसी' की निन्दा की थी। उन्होंने प्रतिनिधियों से कहा था, "आपको शिकायतें हैं, आप आदमी की तरह उन्हें दूर करने की मांग करें। आप बहादुर, मज़बूत व पक्के इरादे वाले बनिए।" आत्म-सम्मान की भावना और ऐतिहासिक घटनाक्रम के अलावा एक और महत्वपूर्ण बात भी थी, जिसके बिना वे शायद ६० वर्ष की उम्र में अपने अतीत से पूरी तरह सम्बन्ध तोड़ कर अपने को अज्ञात मार्ग पर न डाल पाते। यह बात थी उनके पुत्र का सत्याग्रह के मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प। मोतीलाल जीवन में सुख-सुविधा पसन्द करते थे, पर अपने पुत्र पर उनका सबसे अधिक प्यार था।

कलकत्ता कांग्रेस के बाद मोतीलाल ने तुरन्त यू. पी. कौन्सिल से इस्तीफा दे दिया, वकालत छोड़ दी, आनन्द भवन के नौकरों की संख्या कम कर दी, रहन-सहन का तरीका बदल दिया, विदेशी कीमती वस्त्रों की खुले आम होली जला दी और हाथ से बनी खादी धारण कर ली। उन्होंने यह सब दिखावटी शहादत की भावना से नहीं किया। इसमें शक नहीं कि उन्होंने इस नई सादगी को उतनी ही खुशी में अपनाया, जितनी खुशी से उन्होंने उस शान-शौकत का उपयोग किया था, जिसे उन्होंने स्वेच्छा से छोड़ दिया।

दिसम्बर १९२१ में पिता-पुत्र दोनों गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें ६-६ मास कैद की सजा हुई। फरवरी १९२२ में जब गांधीजी ने सामूहिक सत्याग्रह आन्दोलन की घोषणा करने के बाद उसे अकस्मात् स्थगित कर दिया तो सारा देश स्तब्ध रह गया। अगले महीने गान्धीजी को गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर देशद्रोह का मुकदमा लगाकर उन्हें ६ वर्ष कैद की सज़ा दी गई।

स्वराज्य पार्टी

१९२२ की गर्मियों में जब मोतीलाल जेल से छूटे तो उन्होंने देखा कि आन्दोलन शिथिल पड़ गया है, कांग्रेस संगठन में अन्दरूनी झगड़े बढ़ गए हैं और रचनात्मक कार्यक्रम से बुद्धिजीवी-वर्ग में उत्साह

नहीं हो सका है। मोतीलाल ने महसूस किया कि असहयोग के कार्यक्रम में संशोधन करने का समय आ गया है, ताकि कौंसिलों में प्रवेश किया जा सके। इस प्रस्ताव का उन लोगों ने विरोध किया जो अपने को गान्धीजी का पक्का अनुयायी समझते थे। इसके कारण एक लम्बा और कड़वा विवाद उठ खड़ा हुआ, जिसने कांग्रेस को करीब-करीब दो हिस्सों में बांट दिया। इसके बावजूद मोतीलाल और देशबंधु चित्तरंजनदास, जिन्होंने जनवरी १९२३ में स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की, अपने रास्ते पर चलते रहे और उन्होंने वर्ष के अन्त में चुनाव लड़े। केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली और कुछ प्रान्तीय कौंसिलों में स्वराज्य-पार्टी ने सबसे बड़े दल का स्थान प्राप्त किया और १९२५ में वह कांग्रेस की राजनीतिक शाखा बन गई।

अगले ६ वर्षों तक राजनीतिक हलचल का केन्द्र लेजिस्लेटिव असेवम्ली रही, जिसमें मोतीलाल विरोधी दल के नेता थे। नेतृत्व में सक्षम व्यक्तित्व, तीक्ष्ण व निर्णायक बुद्धि, क़ानून की भारी जानकारी, पैरवी करने की कला, हाज़िर-जवाबी और युद्धात्मक प्रवृत्ति के कारण ऐसा लगता था कि मोतीलाल संसदीय कार्य के लिए ही बने हैं। परन्तु केन्द्रीय असेम्बली को तब सार्वभौम सत्ता प्राप्त नहीं थी। वह संकीर्ण व साम्प्रदायिक मताधिकार पर चुनी गई एक खिचड़ी जमात थी। उसमें सरकारी अफ़सरों, नामजद यूरोपीय तथा भारतीय सदस्यों का एक ऐसा ठोस गुट था, जिसकी नकेल नौकरशाही के हाथ में थी। आरम्भ में मोतीलाल सरकार को परास्त करने के लिए उदार व मुसलिम विधायकों का पर्याप्त समर्थन प्राप्त करने में सफल हो गए। वे अपने दल का बहुत ही दृढ़ता से नियंत्रण करते थे। पर १९२६ के बाद से उनका कार्य कठिन होता गया जब कि निजी और साम्प्रदायिक झगड़ों ने राजनीति को निम्नतम स्तर पर ला दिया।

१९२७ के अन्त में साइमन कमीशन की नियुक्ति के साथ राजनीति ने फिर करवट ली। क़मीशन में किसी भी भारतीय के शामिल न किए जाने के फलस्वरूप सरकार के विरुद्ध सभी पार्टियां संगठित हो गईं। कांग्रेस-अध्यक्ष डा. अन्सारी ने एक सर्वदल सम्मेलन आयोजित किया और स्वतन्त्र भारत के संविधान का सिद्धान्त निर्धारित करने के लिए मोतीलाल के नेतृत्व में एक समिति नियुक्त की गई, जिसमें तेजबहादुर सप्रू भी शामिल थे। समिति की रिपोर्ट में, जो नेहरू-रिपोर्ट के नाम से विख्यात है, साम्प्रदायिक समस्या को हल करने का प्रयास किया गया। इस रिपोर्ट पर सब दलों का समर्थन प्राप्त होने की आशा की जाती थी, पर दुर्भाग्यवश आगा खां व जिन्ना के नेतृत्व में मुसलमानों के एक वर्ग ने इसका विरोध किया।

धार्मिक दृष्टिकोण

खुशकिस्मती से मोतीलाल में अपने समकालीन बहुत से लोगों की तरह मज़हबी जोश-खरोश नहीं था। वे राजनीति से धर्म को दूर रखने के बारे में सुनिश्चित विचार रखते थे। दिसम्बर १९२८ में उन्होंने अपनी स्वाभाविक स्पष्टवादिता के साथ कहा, "धर्म की ऊंची कल्पना चाहे जो हो, इसने हमारे जीवन में कट्टरता, कठमुल्लापन असहिष्णुता एवं संकीर्णता की मनोवृत्ति भरी है'''इसकी मुख्य प्रेरणा यह है कि अपने धर्म को न मानने वालों से घृणा की जाय'''भला कोई भी समझदार आदमी यह सोच सकता है कि हिन्दू और मुसलमान इतनी मामूली व उपहासास्पद बातों पर आपस में क्यों लड़ते हैं। जिसमें रत्तीभर भी समझ हो, वह सोच सकता है कि इन बातों का उस पर क्या असर पड़ता है'''धर्म को इस समय जो रूप दे दिया गया है'''वह अलगाव की सबसे बड़ी ताकत है। यह आदमी-आदमी के बीच बनावटी रुकावटें खड़ी करता है और स्वस्थ व सहयोगमूलक प्राकृतिक जीवन का विकास रोकता है।'''इसका राजनीति से सम्बन्ध दोनों में से किसी के लिए भी लाभकर नहीं। इससे धर्म की अवनति हो जाती है और राजनीति दलदल में फंस जाती है। इसका एकमात्र इलाज यही है कि दोनों को एक-दूसरे से बिलकुल अलग रखा जाय।"

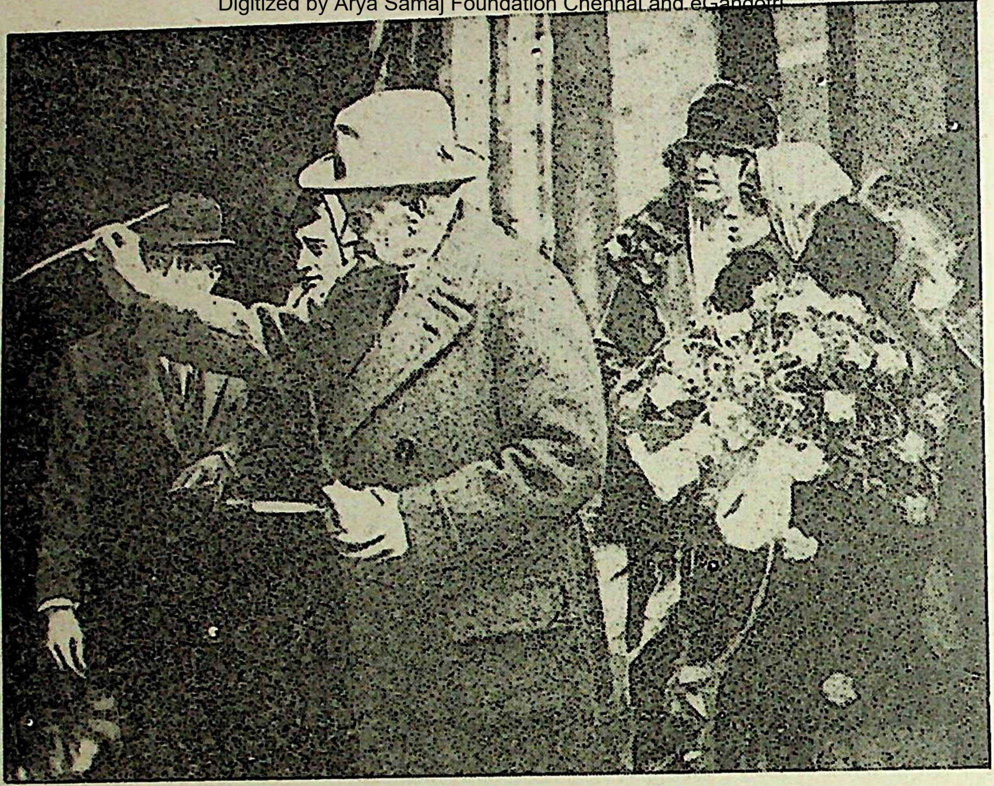

सिंदिया कं. के *''जलदूत''* जहाज़ के जल-अवतरण के अवसर पर, ग्लासगो, १९२७

''भारत में जलपोत-उद्योग के संगठन और विकास के लिए जो दो चीज़ें खासतौर से ज़रूरी हैं वे हैं इन जलपोतों को चलानेवाले—अफ़सरों व दूसरे आदमियों को—पैदा कर सकने की क्षमता और अपने सागरों में इन्हें जैसे इच्छा हो वैसे चलाने की आज़ादी। इन दोनों का ही भारत में अभी अभाव है।''

—मोतीलाल नेहरू

नेहरू-रिपोर्ट, जिसमें बहुत से परस्पर-विरोधी विचारधारा वाले दलों के बीच तालमेल बैठाने का प्रयत्न किया गया था। औपनिवेशिक स्वराज्य पर आधारित थी। इस रिपोर्ट का यह अर्थ लगाया गया कि जवाहरलाल और सुभाष बोस के नेतृत्व में 'भारतीय स्वतन्त्र संघ' की स्थापना करने वाला कांग्रेस का क्रान्तिकारी गुट झुक गया है। मोतीलाल की अध्यक्षता में हुई कलकत्ता कांग्रेस (दिसम्बर १९२८) में इन दोनों के बीच ज़बरदस्त टक्कर हुई। एक ओर वे थे जो औपनिवेशिक स्वराज्य स्वीकार करने के लिए तैयार थे और दूसरी ओर वे थे जो पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कुछ भी स्वीकार करने को तैयार न थे। गान्धीजी के बीच-बचाव से दोनों गुटों में फूट नहीं पड़ने पाई। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि अगर ब्रिटेन एक वर्ष के अन्दर औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं देगा, तो कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग करेगी और ज़रूरत पड़ी तो सत्याग्रह आन्दोलन चलाकर इसके लिए संघर्ष करेगी।

इस प्रकार गांधीजी के पुनः सक्रिय राजनीति में आने और सत्याग्रह आन्दोलन फिर से शुरू करने का रास्ता खुल गया। दिसम्बर १९२८ में कलकत्ता में कांग्रेस का झंडा फहराते हुए मोतीलाल ने युवक स्वयं-सेवकों को संबोधित करते हुए कहा, ''स्वतंत्रता के सैनिको! मैं बूढ़ा हो गया हूं, पर आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप मुझे हमेशा मोर्चे पर डटा पाएंगे। मैं हमेशा लड़ाई के बीच रहूंगा।'' नमक कानून

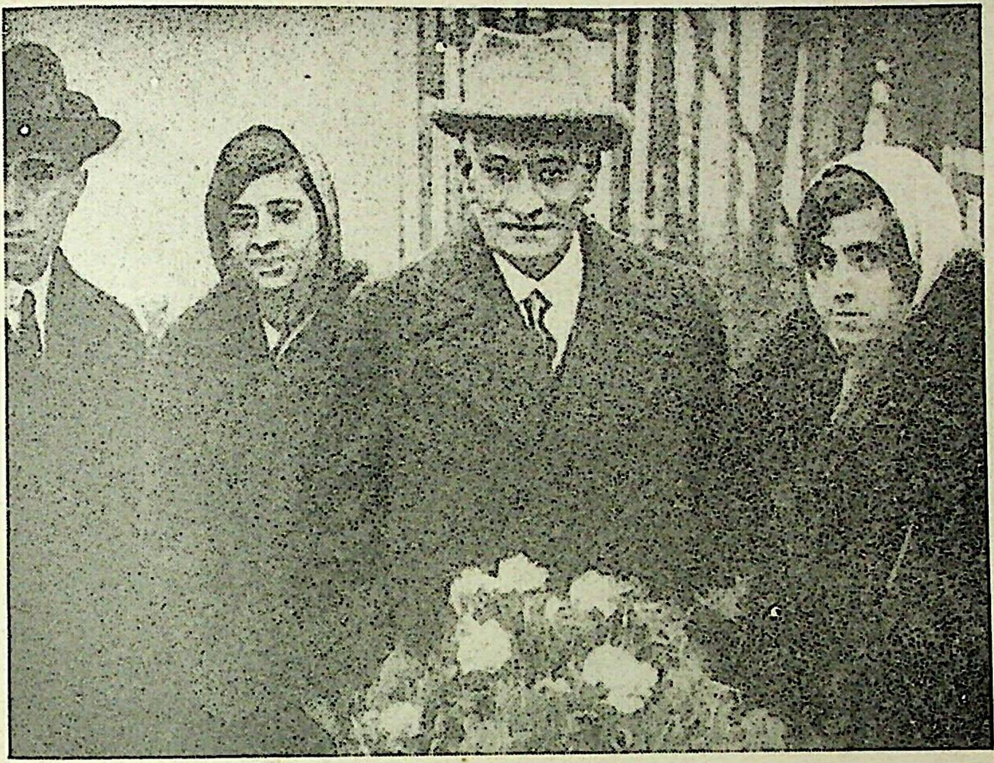

ग्लासगो में, जवाहरलाल, कमला और कृष्णा के साथ

तोड़ने की गान्धीजी की योजनाओं से वे पहले प्रभावित नहीं हुए, उन्होंने उसे उपहासास्पद समझा, पर आन्दोलन ने जब ज़ोर पकड़ा तो डाक्टरों की सलाह के प्रतिकूल वे तूफान में कूद पड़े। वे गिरफ्तार कर जेल भेज दिए गए, पर स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण उन्हें रिहा कर दिया गया। लेकिन जबकि उनका सारा परिवार जेल में था और सारा भारत अग्नि परीक्षा के बीच से गुज़र रहा था, उन्हें चैन कहां था। जनवरी १९३१ के अन्तिम सप्ताह में सरकार ने समझौता-वार्ता के सिलसिले में, जिसके फलस्वरूप आगे चलकर गान्धी-इर्विन समझौता हुआ, गान्धीजी और कांग्रेस वर्किंग कमेटी को रिहा कर दिया। जीवन के अन्तिम दिनों में अपने पुत्र और गान्धीजी को अपने निकट पाकर मोतीलाल को सन्तोष हुआ। ६ फरवरी १९३१ को उन्होंने इहलोक का त्याग किया।

जन्मजात योद्धा

मोतीलाल उस संघर्ष का अन्त देखने के लिए जीवित नहीं रहे, जिसमें उन्होंने अपना सर्वस्व होम कर दिया था। १९२० के बाद के वर्षों में जबकि राष्ट्रीय आन्दोलन की गति अत्यन्त धीमी पड़ गई थी और गान्धीजी ने चरखा तथा आश्रमजीवन अपना लिया था, स्वराज्य-पार्टी ने विदेशी शासन के प्रतिरोध की भावना को जीवित रखा। देश में चलने वाले भयंकर तूफान के बीच मोतीलाल ने स्वतन्त्रता की मशाल को जलाए रखा और उसे दूसरे के हाथों, गान्धीजी और अपने पुत्र के हाथों म सौंपकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। उन्होंने राष्ट्रीय संग्राम में पूरा हिस्सा लिया, भारी उत्तरदायित्व सम्हाला और अनेक आघात सहे। वे जन्मजात योद्धा थे। उन्होंने जितनी दृढ़ता से शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी, उतनी ही दृढ़ता से अपने देशवासियों के अन्धविश्वासों, फिरकापरस्ती और अन्य बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष किया।

युद्ध की तरह संघर्षरत राष्ट्रीयता भी अनिवार्य रूप से व्यक्तियों व जनसमूह की शक्तियों को कुछ सीमित मार्गों में अनुबद्ध कर देती है। मोतीलाल के भाग्य में विध्वंस लिखा था, हालांकि वे निर्माण पसन्द करते थे। जीवन की तरह राजनीति के प्रति भी उनका दृष्टिकोण पूर्णतया व्यावहारिक था। वे न तो अपने पुत्र की तरह कल्पना की उड़ानें भरते थे और न मौजूदा दुनिया की कुछ विचारधाराओं से प्रभावित हुए थे। फिर भी उन्होंने जितनी तेज़ी से पथ पर डग रखे उतनी तेज़ी से उनके समकालीन बहुत कम लोग रख पाए। उनके दबंग, और विवेकशील, असाम्प्रदायिक और निर्भीक मस्तिष्क ने सन् १८५७ के विप्लव के बाद और स्वतंत्रता के पूर्व के युगों के बीच की खाई पाटने में मदद की। उनके जन्म के बाद इन सौ वर्षों में भारत ने राजनीतिक दासता और सामाजिक पिछड़ेपन से मुक्ति पाई है। मोतीलाल का जीवन इस संघर्ष का दर्पण है, जिसे सफल बनाने में उनका योगदान किसी से कम नहीं था।

> दमन और आतंक कभी किसी राष्ट्र के जीवन को नष्ट नहीं कर सके; बल्कि वे कटुता को बढ़ाते हैं, और उसकी जड़ें गहरी कर देते हैं जिससे वह समय-समय पर हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ उपजा कर अस्वस्थ मार्ग का अनुसरण करती हैं।
>
> —मोतीलाल नेहरू

कुछ संस्मरण

मोहनलाल सक्सेना

मेरे लिए परम सौभाग्य तथा गौरव की बात है कि मैं जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पंडित मोतीलाल नेहरू के व्यक्तिगत सम्पर्क में आया। एक कांग्रेस कार्यकर्ता के रूप में, स्वराज्य-पार्टी के जन्मकाल से ही उसके एक सदस्य के रूप में तथा कई महत्वपूर्ण मुकदमों में एक सहायक वकील के रूप में मुझे उनके साथ काम करने का अवसर मिला। सर्वप्रथम मेरा और उनका साथ लखनऊ ज़िला जेल में हुआ, जहां हम दोनों कैद थे। तब से यह साथ १९३१ तक बना रहा, जब मृत्यु ने उन्हें हमसे छीन लिया। इस अवधि में मुझे उनके लोक प्रसिद्ध जीवन के अनेक पहलुओं का बहुत नज़दीक से अध्ययन करने का सुअवसर मिला और मैंने उनके उन व्यक्तिगत गुणों का व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया, जिनके कारण उन्होंने विभिन्न कार्यक्षेत्रों में इतनी अधिक ख्याति अर्जित की। मेरे लिए यह एक महान् अनुभव और प्रशिक्षण था, जिससे मैं बहुत लाभान्वित हुआ और सार्वजनिक जीवन में अनेक गड्ढों में गिरने से बचा और व्यक्तिगत लोभ का संवरण कर सका। सचमुच यह मेरे लिए अत्यन्त संतोष और किसी सीमा तक गौरव का भी विषय है कि मुझे उनके साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मैं उनके जीवन के अन्तकाल तक उनका विश्वासपात्र बना रहा। जब मैं उनके बारे में सोचता हूं तो मेरे मस्तिष्क में उनकी अनेक स्मृतियां नाच उठती हैं और उनका संचयन करके उन्हें एकबारगी लिख देना बहुत कठिन प्रतीत होता है। अतएव मैं उनके छुटपुट संस्मरण लिखूंगा।

पंडित मोतीलाल नेहरू बड़े ही मेधावी व्यक्ति थे। उनमें गज़ब की मौके की सूझ तथा विनोदप्रियता थी। वह बड़े ही दूरदर्शी तथा निर्भीक थे। उनमें प्रबल आत्मविश्वास तथा अदम्य साहस और धैर्य था। वह दृढ़ मनोबल और दृढ़ निश्चय की मूर्ति से थे। यहां मैं उनके कुछ संस्मरण दे रहा हूं, जिनसे उनके इन गुणों पर प्रकाश पड़ता है। मैं जिन घटनाओं का वर्णन करने जा रहा हूं उनकी मुझे या तो व्यक्तिगत जानकारी है या मैंने उन्हें पंडितजी के मुंह से सुना था। सबसे पहले मैं जिस घटना का ज़िक्र करूंगा, उससे उनकी मौके की अद्भुत सूझ तथा विनोदप्रियता का परिचय मिलता है।

मौके की सूझ

अक्तूबर अथवा नवम्बर १९२२ में पंडित मोतीलाल नेहरू प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता कर रहे थे। देशबन्धु चित्तरंजन दास तथा मौलाना मुहम्मद अली की माताजी, बी अम्मन भी उस अधिवेशन में उपस्थित थीं। कौंसिलों में प्रवेश पर रोक हटाने के एक प्रस्ताव पर बहस हो रही थी। पंडित मोतीलाल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में उसका ज़ोरदार समर्थन किया था। देशबन्धु भी उसका ज़ोरों में समर्थन कर चुके थे। परन्तु बी अम्मन ने एक पुरजोर भाषण में प्रस्ताव का विरोध किया। उन्होंने कुछ भावुकतापूर्ण दलीलें दीं। उन्होंने कहा कि जिस समय महात्मा गांधी, मौलाना मुहम्मद अली, शौकत अली, जवाहरलाल और दूसरे व्यक्ति जेल के सीकचों में बन्द हैं, उस समय कौंसिल-प्रवेश की बात सोचना शर्मनाक है। उनकी इस दलील का डेलीगेटों पर भारी प्रभाव पड़ा और यह तय था कि प्रस्ताव भारी बहुमत से नामंजूर हो जाएगा। अपने ही प्रान्त में पंडित मोतीलाल की हार का देशव्यापी प्रभाव पड़ता। पंडित मोतीलाल तथा देशबन्धु दास कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में सारे देश में जो आन्दोलन चला रहे

थे, उस पर इस हार का विशेष रूप से बुरा प्रभाव पड़ता। देशबन्धु दास तथा हम सब लोग घबरा गए थे। किन्तु पंडित मोतीलाल ने बहुत शान्त भाव से प्रस्ताव पर मतदान के समय कहा कि हम लोग चाहे बी अम्मन के विचारों से सहमत हों या न हों, किन्तु वह मौलाना मुहम्मद अली की माता हैं। उनकी हम उतनी ही इज़्ज़त करते हैं जितनी अपनी मां की करते हैं। इसलिए हमें उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए प्रस्ताव के विरुद्ध मत देना चाहिए। पंडित मोतीलाल ने स्वयं प्रस्ताव के विरुद्ध हाथ उठाया। इस प्रकार प्रस्ताव एक स्वर से अस्वीकार कर दिया गया और इस निर्णय का कोई महत्व नहीं रह गया। फलस्वरूप हम लोग इस घटना की सारे देश में बुरी प्रतिक्रिया होने का जो भय कर रहे थे, वैसा कुछ नहीं हुआ। देशबन्धु दास को इससे भारी राहत मिली। वह पंडित मोतीलाल की मौके की सूझ से बड़े खुश हुए और उसकी दाद देते रहे।

दिसम्बर १९२१ जब वह गिरफ्तार होकर लखनऊ ज़िला-जेल लाए गए तो जवाहरलाल नेहरू तथा लखनऊ में गिरफ्तार होने वाले हममें से कुछ लोगों का मुकदमा चलने वाला था। हम लोगों पर कांग्रेस वालंटियर होने के अभियोग में क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट ऐक्ट के अन्तर्गत मुकदमा चलाया जाने वाला था। जवाहरलाल ने एक बयान तैयार किया था, जिसमें उन्होंने अभियोग को स्वीकार किया था और विदेशी शासन की निन्दा की थी। हममें से अधिकांश लोग उनका अनुकरण करने को तैयार थे, किन्तु दो-एक लोग ऐसा करने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि अभियोग सच होने की बात हम पर लागू नहीं होती? पंडित मोतीलाल को उनका रवैया पसन्द नहीं था, इसलिए उन्होंने फैसला किया कि हममें से कोई भी बयान नहीं देगा। जो लोग इस रास्ते को पसन्द नहीं करते थे, उनको भी इस सुझाव पर चलना पड़ा। इस प्रकार एक अप्रिय स्थिति उत्पन्न नहीं होने पाई। और सबसे मज़े की बात तो यह है कि जवाहरलाल, मैं और ५-६ अन्य व्यक्ति ३ महीने बाद रिहा कर दिए गए, क्योंकि बार एसोसिएशन के लिखने पर अवध चीफ़ कोर्ट ने फैसला दिया कि हम लोगों को जो सज़ा दी गई थी उसके लिए कोई गवाही नहीं पेश की गई। अगर आखिरी मौके पर हम सब लोगों को पंडित मोतीलाल की सलाह न मिलती तो हम सब अपना अपराध कबूल कर लेते।

सत्याग्रह आन्दोलन के समय यह सुझाव दिया गया कि शांतिमय सत्याग्रह के अन्तर्गत टेलीग्राफ के तार काटना भी सम्मिलित किया जा सकता है। आनन्द भवन में वर्किंग कमेटी की बैठक में इस सुझाव पर विचार किया गया। तार काटने के कुछ औज़ार भी लाए गए सरकार को इसकी खबर लग गई और अचानक आनन्द भवन पर छापा मारा गया। जिस समय पुलिस आनन्द भवन की तलाशी लेने के लिए तैयार हो रही थी, पंडित मोतीलाल नेहरू ने एक प्रस्ताव का मसविदा बनाया कि उक्त प्रस्ताव पर विचार किया गया और उसे नामंज़ूर कर दिया गया, क्योंकि वह कांग्रेस की अहिंसा की नीति के विरुद्ध है। पंडित मोतीलाल ने वर्किंग कमेटी की बैठक की कार्यवाही में इस प्रस्ताव को दर्ज कर दिया। उन्होंने जान-बूझकर वह रजिस्टर कमरे में छोड़ दिया, जिसमें कार्यवाही दर्ज की जाती थी। पुलिस इस रजिस्टर को पाकर बड़ी खुश हुई कि उसे मनचीती चीज़ मिल गई। किन्तु उच्च पुलिस अधिकारियों ने जब इस प्रस्ताव को पढ़ा होगा तो उन्हें बड़ी निराशा हुई होगी।

१९२८ में जब पंडित मोतीलाल यूरोप गए तो उन्होंने अपनी पुरानी बीमारी के सम्बन्ध में एक जर्मन विशेषज्ञ डाक्टर से सलाह-मशविरा किया। वह डाक्टर को अपनी बीमारी का पूरा इतिहास बताने लगे। कुछ मिनट के बाद डाक्टर ने बीच में टोककर पूछा, “आपको इस समय क्या तकलीफ़ है?” पंडित मोतीलाल चाहते थे कि डाक्टर पहले उनकी बीमारी का इतिहास और उन्होंने जो-जो इलाज किया है, जान ले। इसके बाद वह अपनी वर्तमान तकलीफ़ों का बयान करें। इसलिए उन्होंने अपनी बात जारी रखी। कुछ मिनट के बाद डाक्टर ने फिर बीच में टोककर अपना पहला प्रश्न दोहराया। इस पर पंडितजी ने अपने दुभाषिए के जरिए डाक्टर से कहा, “मुझे इस समय सबसे बड़ी तकलीफ़ यह है कि

डाक्टर मेरी पूरी बात नहीं सुन रहा है।" पंडितजी यह कहकर और डाक्टर की फीस वहां पर रखकर चलने के लिए उठ खड़े हुए। डाक्टर बड़ा शर्मिन्दा हुआ, उसने क्षमायाचना की और इसके बाद बिना बीच में टोके हुए पंडितजी की पूरी बात सुनता रहा।

दृढ़ मनोबल

१९२३ की बात है। पंडित मोतीलाल देहरादून से लखनऊ आ रहे थे। रास्ते में एक स्टेशन पर अनेक कांग्रेसजन उनसे मिलने को आए। अपने डिब्बे से बाहर आने पर उन्होंने देखा कि पास के एक डिब्बे के बाहर बहुत-से लोग खड़े हैं। स्वाभाविक रूप से पंडित मोतीलाल को जिज्ञासा हुई कि यह कौन सज्जन हैं, जिन्हें विदा करने के लिए इतने लोग जमा हुए हैं। पूछताछ करने करने पर उन्हें मालूम हुआ कि पड़ौस के डिब्बे के सज्जन ठाकुर दीपनारायणसिंह वहां के स्टेशन मास्टर हैं, जो कुछ यौगिक सिद्धियों के लिए ख्याति अर्जित कर चुके हैं। ठाकुर दीपनारायणसिंह के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि वह सन्देश लाने वाले के एक चांटा मारकर सांप के काटे हुए व्यक्ति को चंगा कर देते हैं। इस बात से उनकी ठाकुर दीपनारायणसिंह से मिलने की उत्कंठा और बढ़ गई। अगले स्टेशन पर दीपनारायणसिंह पंडितजी के ही डिब्बे में आ गए और उन्हें अपना परिचय दिया। पंडितजी को उनके दावे पर कतई विश्वास नहीं हुआ, किन्तु दीपनारायणसिंह उन्हें अपनी योग-सिद्धि-सम्बन्धी बातों पर विश्वास दिलाने की चेष्टा करते रहे। पंडित मोतीलाल ने दीपनारायणसिंह से पूछा कि इसके वैज्ञानिक आधार क्या हैं? उत्तर में उन्होंने पंडितजी को कुछ बातें बताते हुए कहा कि सांप का काटा हुआ व्यक्ति मरता नहीं है, बल्कि उसे गहरी बेहोशी हो जाती है। बहुत बार ऐसे व्यक्ति पर औषधियों का प्रयोग और अधिक जटिलताएं पैदा कर देता है तथा व्यक्ति मर जाता है। उन्होंने इस बात की ओर भी संकेत किया कि हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथों में सांप के काटे हुए मृत व्यक्ति के दाह संस्कार का विधान नहीं है, बल्कि उसके शव को दरिया में बहा दिया जाता है और अनेक बार ऐसा हुआ कि जिन व्यक्तियों को मरा हुआ समझा गया था वे बाद में जी उठे। दीपनारायण ने इस बात का दावा किया मैं सन्देश-वाहक के माध्यम से सांप के काटे हुए व्यक्ति पर अपना मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता हूं और उससे सम्पर्क स्थापित करके उसे चंगा कर सकता हूं। पंडितजी उनके इस दावे से कुछ भी प्रभावित नहीं हुए और दीपनारायणसिंह से उन्होंने कहा कि आप अपने कथित मनोबल से मुझे सुला दें तो मैं मान लूंगा कि आपकी विद्या में कुछ तत्व है। उन दिनों वस्तुतः पंडितजी अनिद्रा के कारण परेशान रहते थे। दीपनारायणसिंह ने पंडितजी की चुनौती स्वीकार कर ली तथा कुछ समय के बाद उन्होंने पंडितजी से लेट जाने के लिए कहा ताकि वह उन्हें सुलाने का प्रयोग कर सकें। पंडितजी लेट तो गए पर उन्हें नींद किसी तरह नहीं आ सकी। अन्त में दीपनारायणसिंह ने हारकर यह स्वीकार कर लिया मैं आपको सुला सकने में असफल रहा। किन्तु उसके थोड़ी ही देर बाद पंडितजी गहरी नींद में सो गए और अगले सवेरे लखनऊ स्टेशन आने तक बराबर सोते रहे। लखनऊ पहुंचने पर दीपनारायणसिंह ने उन्हें जगाया। जागने पर पंडितजी ने बड़े आश्चर्य से पूछा कि मैं इतनी गहरी नींद में कैसे सो गया। इस पर ठाकुर साहब खूब खिलखिलाकर हँसे। बाद में दीपनारायणसिंह ने उन्हें अपनी सफलता का रहस्य बताया और कहा कि आरम्भ में दो इच्छाशक्तियों का जबर्दस्त संघर्ष चल रहा था एक ओर मैं अपने मनोबल से आपको सुलाने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु दूसरी ओर आपका मनोबल उसका प्रतिरोध कर रहा था जिसमें आप मुझ से प्रबल पड़ रहे थे, अन्ततः मैंने हार मान ली। मेरे पराजय स्वीकार कर लेने पर स्वाभाविक रूप से आपकी इच्छाशक्ति निश्चिन्त होकर शिथिल हो गई। बाद में मैंने चतुर पहलवान की तरह उस अवसर का लाभ उठाकर पुनः अपना प्रयोग आरम्भ किया और आपको सुलाने में सफलता प्राप्त कर ली। अगले दिन पंडितजी ने सारी घटना की चर्चा हम लोगों से की और ऐसा लगता था कि वह दीपनारायणसिंह के दावे से आश्वस्त हो गए हैं। इसके बाद लखनऊ में रहकर ही दीपनारायणसिंह अपनी मृत्युपर्यन्त, लगभग २० वर्ष से अधिक समय तक, इच्छा-शक्ति के प्रयोग द्वारा लोगों का इलाज करते रहे। किन्तु इस अनुभव के बावजूद, पंडित

मोतीलाल कहा करते थे कि मैं एक अनाड़ी के हाथों से चंगा होने के बजाय एक होशियार डाक्टर के इलाज में रहकर मरना अधिक पसन्द करूंगा। उपर्युक्त घटना से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि उनकी इच्छा-शक्ति कितनी प्रबल थी, जिस पर साधारण स्थिति में एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक भी प्रभाव डालने में असमर्थ रहा।

प्रबल आत्मविश्वास

दिल्ली के विख्यात हकीम अजमल खां के निधन पर आगरा में एक शोक-सभा आयोजित की गई। इस सभा की अध्यक्षता करते हुए पंडित मोतीलाल ने एक भावपूर्ण वक्तृता दी। रीत्यानुसार सब लोगों ने दो मिनट मौन खड़े होकर दिवंगत आत्मा की शान्ति-लाभ के लिए कामना की। पंडित मोतीलाल काफी देर तक विचार-मग्न रहे और वासस्थान आने पर उन्होंने मुझ से कहा, "मैं नहीं चाहता कि मेरी मृत्यु के बाद कोई मेरे लिए प्रार्थना करे।" जब मैंने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने गम्भीरता से कहा, "इस जीवन भर मैंने लड़ाई लड़कर अपना स्थान बनाया है और मौत के बाद भी मैं लड़ते रहना चाहता हूं। मैं बैसाखी लगाकर खड़ा होना नहीं चाहता।" उनके इन शब्दों से उनका प्रबल आत्मविश्वास प्रकट होता है।

पंडित मोतीलाल के प्रबल आत्मविश्वास के समान ही उनका अदम्य साहस भी उल्लेखनीय था। इस सम्बन्ध में मुझे दो-एक घटनाएं याद आती हैं।

स्वराज्य-पार्टी का संगठन करने के बाद वह कौंसिलों का पहला चुनाव लड़ रहे थे। इस सिलसिले में वह लखनऊ ज़िले का दौरा कर रहे थे। यहां से हमारे उम्मीदवार श्री रामचन्द्र सिनहा थे। वह कोई शक्तिशाली उम्मीदवार नहीं थे। वह कॉलेज से नये-नये निकले थे। उनकी एकमात्र योग्यता यह थी कि वह असहयोग आंदोलन में जेल गये थे। उनका मुकाबला पंडित गोकरणनाथ मिश्र से था, जो एक प्रमुख वकील और एक प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञ थे। वह बड़े ही प्रभावशाली व्यक्ति थे और बाद में अवध चीफ कोर्ट के जज हुए। पंडित मोतीलाल इस सीट को बहुत महत्वपूर्ण मानते थे और उन्होंने दूर-दूर के गांवों में जाकर लगभग आधा दर्जन सभाओं में व्याख्यान दिया। नगराम की एक सभा में भाषण करने के बाद उन्होंने एक मुसलमान के घर चाय पीने की दावत स्वीकार कर ली। स्थानीय कार्यकर्त्ता इससे बड़े घबरा गए। उन्होंने मुझसे कहा कि पंडितजी ने यदि एक मुसलमान के घर खाया तो हिन्दू मतदाताओं पर उनके भाषण का जो अच्छा असर पड़ा है वह समाप्त हो जाएगा। उस इलाके के लोग बड़े कट्टर थे और उस समय चुनाव पृथक् निर्वाचन प्रणाली के आधार पर होते थे। परन्तु पंडितजी इन बातों से डरे नहीं। यह नहीं, वे एक कदम आगे गये उन्होंने अगली चुनाव सभा में खुलेआम ऐलान कर दिया कि मैं मुसलमानों और ईसाइयों के साथ बैठकर खाना खाता हूँ। हालांकि स्थानीय कार्यकर्ता बहुत डर रहे थे, लेकिन उस सीट से कांग्रेस उम्मीदवार की भारी बहुमत से जीत हुई।

१९२९ में जब वह सिमरी रियासत के मुकदमे के सिलसिले में लखनऊ ठहरे हुए थे तो एक मोटर खरीदने गए। उन्होंने ब्रिटेन की बनी हुई 'आर्मस्ट्रांग सिडिल' मोटर पसन्द की। वह बड़ी खूबसूरत मोटर थी। बुराई इतनी ही थी कि वह ब्रिटेन की बनी हुई थी। जब उन्होंने मेरी राय मांगी तो मैंने यह बात कह दी। मेरी इस बात का उन पर कोई असर नहीं पड़ा। उसी रात उन्होंने जवाहरलाल को एक खत लिखा और मुझे पढ़कर सुनाया। उस खत में उन्होंने अपनी भावनाओं को बड़ी खूबसूरती से व्यक्त किया था। मैं अपनी याददाश्त से उसके कुछ उल्लेखनीय वाक्य दे रहा हूं :

"आज मैं एक मोटर खरीदने गया। मैंने एक खूबसूरत मोटर देखी। मोहनलाल को उस पर इसके सिवा और कोई एतराज नहीं कि वह ब्रिटेन की बनी हुई है। लेकिन सुन्दरता भौगोलिक सीमाओं अथवा राजनीतिक विचारों से बांधी नहीं जा सकती। मैंने उस मोटर का आर्डर दे दिया है।"

उनके इन वाक्यों से उनकी सौन्दर्य-भावना का परिचय मिलता है। अभी कुछ दिन हुए मैंने एक विदेशी कलाकार के भी इसी से मिलते-जुलते शब्द पढ़े। यहां पर उनको उद्धृत करना अनुचित न होगा :

"हम सौन्दर्य की पूजा करते हैं। सौन्दर्य से विजित होते हैं और सौन्दर्य के द्वारा एक सूत्र में बंधते हैं।"

उपर्युक्त घटना से पंडित मोतीलाल की सौन्दर्य-भावना का परिचय तो मिलता ही है, उनकी निर्भीकता भी प्रकट होती है, क्योंकि कांग्रेस ने उस समय ब्रिटिश माल के बहिष्कार का नारा दे रखा था और पंडितजी उस वर्ष स्वयं कांग्रेस के अध्यक्ष थे।

जिस समय केन्द्रीय असेम्बली में स्टील प्रोटेक्शन बिल पर विचार हो रहा था, उनको एक काम से बम्बई जाना पड़ा। बम्बई में वह प्रायः टाटा के यहां ठहरते थे, परन्तु इस बार प्रताप पंडित के साथ ठहरने वाले थे। लेकिन बम्बई रवाना होने से पहले उन्हें एक मित्र का तार मिला कि इस बार स्टील प्रोटेक्शन बिल के कारण उनका टाटा के साथ ठहरना उचित न होगा, क्योंकि इससे अफवाहें फैलेंगी और उनकी प्रतिष्ठा पर आंच आ सकती है। परन्तु इस तार का पंडितजी पर उल्टा असर हुआ। यद्यपि वह अपनी प्रतिष्ठा का बड़ा ध्यान रखते थे, तथापि उन्होंने तर्क किया कि अगर लोग सोचते हैं कि सार्वजनिक जीवन में मेरे विचार और मेरी नीतियां व्यक्तिगत सम्पर्कों से परिचालित होती हैं तो उनका यह भ्रम जितनी जल्दी दूर हो जाए उतना अच्छा होगा। इसलिए बम्बई पहुंचने पर उन्होंने प्रताप पंडित से मिलकर उन्हें समझा दिया कि पहले मेरा विचार आप के साथ ठहरने का था, किन्तु अब मैंने टाटा के साथ ठहरने का फैसला किया है।

उन्होंने श्री ताम्बे को पार्टी से निकाल देने में भी इसी प्रकार की निर्भीकता तथा दूरदर्शिता प्रकट की। श्री ताम्बे मध्य प्रान्त में स्वराज्य-पार्टी के प्रमुख नेता थे। उन्होंने पार्टी की अवहेलना करके गवर्नर की कार्यकारिणी कौंसिल में शामिल होना स्वीकार कर लिया। सर्वश्री जयकर, मुंजे और केलकर ने एक वक्तव्य निकाल कर पंडित मोतीलाल की आलोचना की कि उन्होंने स्वराज्य-पार्टी की बैठक बुलाये बिना और उसकी सहमति लिए बिना श्री ताम्बे को पार्टी से निकालने का कोई अधिकार नहीं था। मोतीलाल ने इस पर जो उत्तर दिया वह चिरस्मरणीय है। उन्होंने कहा कि "मुझे वही अधिकार है जो एक सर्जन को होता है, जो एक सड़ते हुए अंग को काट कर फेंक देता है ताकि उसका जहर सारे शरीर में न फैलने पाए।" आज हम देखते हैं कि कांग्रेस का सभी प्रदेशों में भारी बहुमत होते हुए भी हाई कमान पार्टी का अनुशासन भंग करने वाले तथा दूसरी आपत्तिजनक कार्रवाइयां करने वाले सदस्यों के विरुद्ध कार्रवाई करने से हिचकता है। जब हम आज की स्थिति पर विचार करते हैं तब हमें मोतीलालजी के साहस की दाद देनी पड़ती है। हमें यह न भूलना चाहिए कि पंडितजी ने जिस समय श्री ताम्बे के विरुद्ध कार्रवाई की, उस समय वह विरोधी दल के नेता की हैसियत में थे। उनके लिए एक-एक वोट की कीमत थी। फिर भी पार्टी का अनुशासन बनाए रखने के लिए उन्होंने कोई लिहाज नहीं किया। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह स्वराज्य-पार्टी संगठन करके उसे एक शक्तिशाली पार्टी बनाने में सफल हुए और चारों तरफ के जबरदस्त विरोध के बावजूद उसको अन्त तक अनुशासनबद्ध बनाए रख सके। राजनीतिक पार्टियां इस मामले में उनसे बहुत शिक्षा ले सकती हैं। वह अपनी दृष्टि केवल अगले चुनाव तक सीमित नहीं रखते थे, बल्कि आने वाली पीढ़ी का भी खयाल रखते थे।

नमक सत्याग्रह

पंडित मोतीलाल बड़े ही दूरदर्शी थे। वह अपने अनुयायियों को बहुत ब्योरेवार निर्देश किया करते थे। इसमें उनका मकसद यह नहीं होता था कि कार्यकर्त्ता अपनी पहल से कोई कार्य न करे, बल्कि मकसद यह होता था कि गलतफ़हमी की कोई गुंजाइश न रहे। वह कार्यकर्त्ताओं को अपनी पहल

पर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे और इन कार्यों के लिए दाद भी देते थे। यहां मुझको एक घटना याद आ रही है। हमारे प्रदेश में नमक सत्याग्रह आरम्भ करने के लिए रायबरेली ज़िले में डलमऊ चुना गया था। डलमऊ एक तो किसान-आन्दोलन का गढ़ था, दूसरे वहां नमक बनाने की मिट्टी मिलती थी। रफी अहमद किदवई, सीतलासहाय और मुझको सारी आवश्यक व्यवस्था करने के लिए नियुक्त किया गया था। यह तय हुआ था कि पहले दिन पंडित मोतीलाल स्वयं आकर बने हुए नमक को नीलाम करेंगे। पंडितजी ने इस सम्बंध में ब्योरेवार निर्देश दिए थे। चूंकि डलमऊ से प्रदेश में नमक सत्याग्रह का श्रीगणेश होने वाला था, इसलिए वह चाहते थे कि इन्तज़ाम में कोई गड़बड़ी न हो। वह चाहते थे कि सत्याग्रह की शुरूआत बहुत शानदार तरीके से हो।

सीतलासहायजी रायबरेली ज़िले के थे और वह विशेष रूप से साबरमती आश्रम से भेजे गए थे। यह तय हुआ था कि सीतलासहायजी डलमऊ में रहकर वहाँ ६ अप्रैल से नमक सत्याग्रह शुरू करने की तैयारी करेंगे। रफी साहब और मुझ पर केवल इतना देख लेने का भार था कि सारा इन्तज़ाम पूरा हो गया है और जब सीतलासहायजी गिरफ्तार हो जाएं तो हम उनकी जगह ले लें। हम दोनों ने आपस में तय किया था कि हममें से एक आदमी वहां पर मौजूद रहेगा।

नमक सत्याग्रह की शुरुआत से एक दिन पहले जब मैं डलमऊ पहुंचा तो रफी साहब वहां से जा चुके थे। मैंने देखा सीतलासहायजी बड़े परेशान थे, क्योंकि जिस व्यक्ति की ज़मीन पर नमक बनाया जाने वाला था, उसने पुलिस के दवाव से इसकी इजाज़त देने से इनकार कर दिया था। लोग बड़े भयभीत थे और सार्वजनिक सभा में बहुत थोड़े लोग इकट्ठा हुए थे। सीतलासहायजी को डर था कि वहां पर लोग नमक सत्याग्रह के लिए अधिक उत्साह नहीं प्रदर्शित करेंगे और सत्याग्रह आन्दोलन कुछ दिन में ठंडा पड़ जाएगा। उनकी राय थी कि ऐसी स्थिति में यहां नमक सत्याग्रह चलाना उचित नहीं होगा। किन्तु सत्याग्रह का कार्यक्रम त्यागा भी नहीं जा सकता था, क्योंकि उसका सारे प्रान्त पर बुरा असर पड़ता। फिर मोतीलालजी स्वयं वहां आने वाले थे और अब इतना समय नहीं रह गया था कि उनको कार्यक्रम परिवर्तन की सूचना दी जा सके। बहुत सोच-विचार के बाद मैं इस फैसले पर पहुंचा कि डलमऊ में नमक सत्याग्रह छेड़ना ठीक न होगा, क्योंकि जिस जगह नमक बनाया जाने वाला था उसके मालिक ने डर कर इसकी इजाज़त देने से इनकार कर दिया है।

इसलिए मैंने नमक सत्याग्रह का श्रीगणेश डलमऊ के बजाय रायबरेली से करने का निश्चय किया, जहां कांग्रेस के पास अपनी ज़मीन थी। नमक वाली मिट्टी की समस्या हल करने के लिए मैंने यह तय किया कि डलमऊ से कुछ बोरों में मिट्टी भरकर रायबरेली पहुंचा दी जाए। हम लोग बहुत सवेरे डलमऊ से रायबरेली रवाना हो गए। डलमऊ से चलने के पहले मैंने पंडित मोतीलाल नेहरू के नाम एक पत्र लिख दिया कि वह सीधे रायबरेली आएं। मैंने एक स्वयंसेवक को उस चौराहे पर खड़ा कर दिया जहां से पंडित जी की मोटर डलमऊ की तरफ मुड़ने वाली थी और उसके हाथ में पत्र दे दिया। तीसरे पहर रायबरेली में एक सार्वजनिक सभा हुई और डलमऊ से लाई गई मिट्टी से नमक बनाया गया। मैंने उस मिट्टी में थोड़ा नमक भी मिला दिया था ताकि नमक काफी मिकदार में तैयार हो। पंडित मोतीलाल सीधे सभास्थल में आये और भाषण करने के बाद नमक नीलाम किया।

सभा के बाद जब हम लोग उनसे मिले तो वह बहुत बिगड़े। मैंने उन्हें बताया कि किन परिस्थितियों में सभास्थल बदलना पड़ा और किस प्रकार डलमऊ से नमक वाली मिट्टी लाई गयी। मैंने उन्हें यह भी बता दिया कि मैंने उस मिट्टी में थोड़ा नमक मिला दिया था। यह सुनकर वह बहुत हंसे और सभास्थल बदलने की सूझ की दाद दी। उन्होंने कहा कि मिट्टी से नमक को अलग करना भी एक जुर्म है और मुझे ताज्जुब है कि पहले यह बात मेरे दिमाग में क्यों नहीं आई। दूसरे दिन से नमक सत्याग्रह का तरीका बदल दिया गया और सब जगह आवश्यक आदेश भेज दिए गए। सारे प्रांत में

नमक-सत्याग्रह की धूम मच गयी। प्रत्येक सत्याग्रही अपने साथ मिट्टी की एक पुड़िया रखता था, जिसमें नमक मिला रहता था। महात्मा गांधी को नमक कानून तोड़ने के लिए सत्याग्रहियों का दल लेकर दांडी की लम्बी यात्रा करनी पड़ी, परन्तु युक्त प्रान्त में मिट्टी की वजह से सब जगह नमक कानून तोड़ना बहुत आसान हो गया तथा सरकार तथा पुलिस को भारी परेशानी उठानी पड़ी।

खुला दिमाग़

पंडित मोतीलाल नेहरू अपने विचारों में आसानी से परिवर्तन नहीं करते थे और अपने विरुद्ध प्रकट किये गये मत को फौरन अस्वीकार कर देते थे। परन्तु वह अपने दिमाग़ की खिड़कियां खुली रखते थे और यदि दूसरा व्यक्ति उनके असहमति प्रकट करने पर उनके सामने अपने विचारों को रखने का साहस करता था तो वह उस पर गौर करने को तैयार रहते थे। मैं इसके अनेक उदाहरण दे सकता हूं, परन्तु यहां पर एक ही उदाहरण काफी होगा।

१९२८ में दरभंगा रियासत के मुकदमे में मैं उनके साथ दिल्ली ठहरा हुआ था। केन्द्रीय असेम्बली के बजट अधिवेशन के बाद हमारा आगरा जाने का कार्यक्रम था। वह कार से आगरा गए और मैं ट्रेन से। आगरा में वह वहां के सबसे बड़े होटल में ठहरे। उन्होंने अपने लिए ३२ रु. प्रतिदिन किराए का एक कमरा और मेरे लिए २० रु. प्रतिदिन किराए का एक कमरा ठीक कर लिया था। मेरी ट्रेन कुछ लेट हो गयी थी और जब मैं रात में होटल पहुंचा तो वह खाना खा चुके थे और मेरा इन्तज़ार कर रहे थे। जब मैं पहुंचा तो उन्होंने मज़ाक में कहा, "मैं समझा था कि तुम किसी सराय या धर्मशाला में ठहर गए।" मैंने कहा कि यह मेरे लिए मुमकिन नहीं था, क्योंकि आपकी सारी किताबें और सारे कागज़ मेरे साथ थे। दूसरे दिन मैंने उनसे कहा कि मैं पास के एक होटल में जाना चाहता हूं, जहां ५ रु. प्रतिदिन किराये पर कमरा मिल रहा है। उन्होंने कहा, "तुम परेशान क्यों होते हो। पैसा तुमको नहीं देना है। तुम यहीं ठहरो।" मैंने कहा कि पैसा चाहे जिसका हो, यह मेरे ऊपर खर्च हो रहा है। मैं अपने ऊपर ज़रूरत से ज़्यादा खर्च करना पसंद नहीं करता। फिर मैं होटल का खाना भी नहीं खाता। उन्होंने कहा, "बेवक़ूफ़ी मत करो।" परन्तु मैंने पड़ोस के एक होटल में एक कमरा तय कर लिया था। जब मैं उनसे इजाज़त लेने गया तो उन्होंने कहा, "तुम ठीक कहते हो। मैं भी उसी होटल में चलता हूं।" उनकी यह बात सुनकर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। वह उसी शाम को मेरे होटल में चले आए और दो कमरे ले लिए। एक कमरे में वह लिखने-पढ़ने का काम किया करते थे।

हम उस होटल में कुछ सप्ताह रहे, इसके बाद राजा भदावर की कोठी में चले गए। वहां दो रसोईखाने चलते थे। एक में मेरे लिए ब्राह्मण रसोइया निरामिष भोजन बनाता था तथा दूसरे में पंडितजी का भोजन बनता था। पंडितजी मेरे रसोईखाने से अपने लिए एक-दो चीज़ अवश्य मांगते थे ताकि मेरे खान-पान के प्रबंध में किसी प्रकार की त्रुटि न होने पाए। वह इस बात का बहुत ध्यान रखते थे कि उनके साथ जो भी ठहरे उसको किसी प्रकार की तकलीफ न होने पाए। मैं अदावर की कोठी में उनके साथ कई महीने ठहरा।

तीन कर्ज़े

मुकदमे के सिलसिले में दिन-भर कड़ी मेहनत करने के बाद वह शाम को लगभग एक घंटा आराम करते थे। उस समय वह अपने बारे में, दूसरों के बारे में, पुरानी घटनाओं और वर्तमान समस्याओं के बारे में चर्चा करते थे। प्रायः वह बीते दिनों की बातें बताया करते थे और अक्सर मैं एकमात्र श्रोता होता था। यह मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे उनके संस्मरण सुनने का मौका मिला। उनकी बातें बड़ी शिक्षाप्रद होती थीं। अपने पुत्र की उन्हें सबसे अधिक चिन्ता थी। असहयोग के बाद उन्होंने जब फिर से वकालत शुरू की तो उन्होंने मुझसे कई बार कहा कि मैं तीन साल वकालत करने का विचार रखता हूं। पहले

साल की कमाई से मैं अपना कर्ज़ बेबाक कर दूंगा। दूसरे साल की कमाई से मैं अपने मौजूदा खर्चों का इंतज़ाम कर दूंगा, इनमें सबसे बड़ा खर्चा दूसरी लड़की की शादी थी। और तीसरे साल की कमाई मैं अपने लड़के को दे दूंगा ताकि वह, आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त रहकर सार्वजनिक सेवा-कार्य कर सके। वह अपने पुत्र को भी अपने महाजनों की सूची में रखते थे, हालांकि इस सूची में वह उसका नाम सबसे नीचे रखते थे। अपनी छठवीं वर्षगांठ पर उन्होंने गांधीजी को लिखा था: "मैंने महाजनों की सूची में 'जे' को सबसे अन्त में रखा है। जब वह कह देगा कि मेरा कर्ज़ा बेबाक हो गया, तब आपको मेरे छोटे से हिस्से के लिए इन्तज़ार नहीं करना पड़ेगा।" गांधीजी ने उन्हें लिखा था कि वह अपनी कमाई का एक हिस्सा रचनात्मक कार्यक्रम में दे दिया करें। इसी पर उन्होंने उक्त पत्र लिखा था।

परन्तु वह केवल दो साल वकालत कर पाए। कलकत्ता कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास हुआ उसमें ब्रिटिश सरकार को भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के लिए केवल एक साल का समय दिया गया था, हालांकि पंडित जी ने दो साल का समय प्रस्तावित किया था। उस समय वह अक्सर कहा करते थे, "अगर मैं जवाहरलाल के लिए कुछ छोड़कर न जा सका तो इसके लिए उसे स्वयं अपने को धन्यवाद देना चाहिए।"

दूसरों के बारे में राय

एक बार इस प्रकार की बातचीत के दौरान में उन्होंने कई नेताओं के बारे में अपनी राय प्रकट की। मैं उनके विचारों को पाठकों के सामने रखने का लोभ संवरण नहीं कर पाता, क्योंकि इससे प्रकट होता है कि आदमी को परखने की कितनी पैनी शक्ति उनमें थी।

एक लिबरल नेता के बारे में, जो वायसराय की एक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य नियुक्त किए गए थे, उन्होंने कहा, "वह प्रशासन के बारे में क्या जानते हैं। उनसे सरकार को क्या शक्ति प्राप्त होगी।" एक दूसरे नेता के बारे में उन्होंने कहा, "उनकी बुद्धि तेज़ है, परन्तु उनका दिमाग़ बड़ा पेंचदार है। यदि तुम उनकी खोपड़ी में कील ठोंक दो तो वह भी पेंचदार बन जाएगी।" एक मौलाना के सम्बंध में उन्होंने कहा, "हालांकि वह राजनीति अथवा प्रशासन के बारे में कुछ नहीं जानते, फिर भी उनके फ़तवे लेने के लिए मैंने उन्हें अपने साथ रख छोड़ा है।"

अपने पुत्र के बारे में उन्होंने जो कुछ कहा, वह मैं अपनी याददाश्त से लिखता हूं:

"वह मनुष्यों में सचमुच जवाहर है, वह बड़ा ही सज्जन आदमी है। वह हरएक पर भरोसा कर लेता है, क्योंकि वह समझता है कि हर आदमी उसी की तरह है। लोग उससे ग़लत फ़ायदा उठायेंगे और वह अक्सर धोखा खाएगा।" दो-एक क्षण विचारमग्न रहने के बाद उन्होंने कहा, "किन्तु इसके लिए उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। उसे ज़िन्दगी में अब तक साया मिला है और उसे पता नहीं है कि ज़िन्दगी में तपती धूप का भी सामना करना पड़ता है।" ऐसा मालूम पड़ता है कि वह अपने पुत्र की इस कमज़ोरी के लिए अपने को ही दोषी ठहराते थे।

उनका पत्र इंडिपेंडेण्ट

एम. चलपति राउ

अकाल-मृत्यु को प्राप्त होने वाले भारतीय समाचारपत्रों में 'इंडिपेंडेण्ट' सबसे उल्लेखनीय है। देश में ऐसे बहुत से तूफानी पत्र निकले हैं, जो उससे भी कम समय जीवित रहे। परन्तु उसका प्रकाशन जिस धूमधाम से हुआ, उससे जिस प्रकार के तेजस्वी व्यक्ति सम्बन्धित रहे और उसका जिस रीति से अन्त हुआ, वह अभूतपूर्व है। उसकी कहानी परियों की कहानियों से अधिक, एक युद्ध की कहानी है। हालांकि उसके जन्म के समय अनेक परियों ने उसको अपनी शुभाकांक्षाएं प्रदान कीं, फिर भी उसका जीवन अत्यन्त संघर्षपूर्ण रहा। उसको अपने प्रतिदिन के जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ा और जन्म के कुछ ही महीने बाद उसका भविष्य अनिश्चित हो गया। पत्र का आरम्भ मोतीलाल नेहरू ने किया। उस समय के प्रमुखतम नेताओं ने उसे अपना आशीर्वाद प्रदान किया और उसमें अपने लेख दिए। उसके प्रकाशन की तैयारी में मदद देने के लिए बम्बई से बेनजामिन गाइ हार्निमैन पधारे। सैयद हुसैन, जो एक विद्वान् और सुयोग्य माने जाते थे, उसके पहले सम्पादक हुए। पत्र ने तीन वर्ष तक संघर्षपूर्ण जीवन बिताया। इस अवधि में उसके अनेक सम्पादक और मैनेजर बदले। उसके रूप-रंग में अनेक परिवर्तन हुए और बीच-बीच में वह बहुत ही बढ़िया निकला।

मोतीलाल का संदेश

पत्र के पहले अंक में मोतीलाल नेहरू ने अपनी स्वाभाविक तेजस्विता तथा विशिष्ट शैली में निम्न संदेश दिया :

"आज दुनिया में दो प्रकार के आदर्श चल रहे हैं। दो हकीकतें दुनिया पर अपना सिक्का जमाने की कोशिश में हैं। एक आदर्श स्पार्टेकस[1] का है और दूसरा एपिकटेटस[2] का। एक हमारी आत्मा के बंधनों को तोड़ता है, दूसरा हमें अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप का दर्शन कराता है।

"इंडिपेंडेण्ट" का प्रकाशन एक राष्ट्र की आत्मा के सच्चे स्वरूप का दर्शन कराने के लिए हो रहा है। हम लोग बड़ी शीघ्रता से एक राष्ट्र बनते जा रहे हैं। व्यक्तियों का समुदाय में और समुदाय का एक राष्ट्र में विलय होता जा रहा है। इस राष्ट्र की आत्मा के सच्चे स्वरूप का दर्शन करने का महत् कार्य किस रूप से सम्पादित हो या यों कहें कि किस रूप में सम्पादित न किया जाए ?

"यह कार्य अवसरवादिता के पथ पर अथवा विरोधों से बच कर चलने से नहीं हो सकता, क्योंकि इससे आत्मा की वाणी अवरुद्ध हो जाती है और बुद्धि में विकार आ जाता है। यह कार्य गुप्त षड्यंत्रों के

---

[1] स्पटिकस (सन् ७१ ई० पू०)—वह थ्रेस का एक गड़रिया था, जो गुलाम बना लिया गया। इटली में तलवार की लड़ाई का प्रदर्शन करके अपने आकाओं का मनोरंजन किया करता था। यह गुलामों के विद्रोह का नेतृत्व करने के लिए प्रसिद्ध है।—संपादक

[2] एपिक्टेटस (पहली शती)—सुप्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक जीनो का अनुयायी। उसका मत था कि जीवन में तर्क प्रधान है। [illegible] चुनाव करना मनुष्य के हाथ में है। इसमें किसी बाहरी शक्ति का हाथ नहीं होता। हम अपनी [illegible] दोनों के बीच चुनाव करते हैं। ईश्वर से हमारी अनुरूपता इसी बात में है कि हम तर्क-बुद्धि [illegible] इसके लिए हमें ईश्वर की अनुकम्पा प्राप्त करनी चाहिए।—संपादक

द्वारा भी नहीं हो सकता, क्योंकि उससे कोई स्थायी भलाई नहीं होती और दृष्टिकोण विकृत हो जाता है। यह कार्य जो भी बुराइयां दिखाई पड़े, उनको तीव्र प्रकाश में लाने से हो सकता है। यह कार्य सामान्य मस्तिष्क पर पड़ने वाले सामान्य प्रभावों को सामान्य भाषा में प्रकट करने से ही हो सकता है। यह कार्य इस सनातन सत्य पर बल देने से ही हो सकता है कि मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकारों को रोका नहीं जा सकता। इन अधिकारों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में प्रदान करना और यह प्रदर्शित करना कि बड़ी उदारता बरती जा रही है, कोई अर्थ नहीं रखता। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि धार्मिक मतभेद तथा जातीय संघर्ष के वातावरण में ये अधिकार पनप नहीं पाते।

" 'इंडिपेन्डेण्ट' इसी पथ पर चलकर अपने उद्देश्य की सिद्धि कर सकता है और प्रेसीडेण्ट विलसन के शब्दों में कह सकता है—'अब मानव-जाति का शासन विशिष्ट वर्ग के लोगों के हाथ में नहीं रह गया है। मानव-जाति का भविष्य अब सारी दुनिया में सामान्य जनों के हाथ में है।"

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में यह संदेश अत्यन्त उल्लेखनीय है। यह संदेश व्यापक दृष्टिकोण और भाषा पर पूर्ण अधिकार का परिचायक है। पहले अंक में जिन अन्य लोगों के संदेश छपे, उनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीमती बीसेंट सरोजिनी नायडू, हसन इमाम, विजय राघवाचारी, फजल हसन भी थे। बाद के अंकों में चित्तरंजनदास, मदनमोहन मालवीय, फजलुलहक तथा मुसलिम लीग के अध्यक्ष डाक्टर एम. ए. अंसारी के संदेश भी छपे।

पहला अंक, रूप-रंग

'इंडिपेन्डेण्ट' का पहला अंक, जो "उत्तर भारत का प्रातःकाल प्रकाशित होने वाला एकमात्र अंग्रेज़ी दैनिक था, बुधवार ५ फरवरी, १९१९ को निकला। अंक बुधवार को और ५ फरवरी को क्यों निकाला, क्या उसी दिन निकालना आवश्यक था या किसी की तरंग थी, यह ज्ञात नहीं है। उसमें सोलह पन्ने और प्रत्येक पन्ने में चार कालम थे। उसका आकार-प्रकार आज के पत्रों का आधा था। मूल्य एक आना था। वह रायटर और एसोसिएटेड प्रेस से संवाद लेता था। उस समय देश में यही दो समाचार-समितियां थीं। उसके अपने संवाददाता भी रहे होंगे, किन्तु उनके द्वारा भेजे गए संवाद अधिक नहीं हैं। विदेशी समाचार 'रायटर से प्राप्त तार' के अन्तर्गत छपते थे, जैसा कि उस समय का क़ायदा था। एक विचित्र बात यह है कि अनेक संवादों पर उदाहरणार्थ तिथि लंदन, ३ फरवरी दी गयी है, और पाठकों को सूचित किया गया है कि यह तार 'प्रातः ८-२५' पर अथवा अमुक तिथि को अमुक समय प्राप्त हुआ। हो सकता है कि इसके पीछे उपसंपादक की गलती या शरारत हो। पहले पन्ने पर प्रमुख समाचार दो कालम शीर्षक के अन्तर्गत छपा है—'इंगलैंड में औद्योगिक संकट।' 'शांति सम्मेलन' का समाचार भी प्रमुखता से छापा गया है। 'बम्बई के श्रमिक विवाद' का समाचार भी प्रमुखता से छपा है। टाइप की गड़बड़ी बहुत ज्यादा है। शायद किसी पत्र के पहले अंक में वह अनिवार्य रूप से रहती है। व्यापारिक समाचार सामान्य समाचारों के बीच-बीच छुटपुट अप्रमुख रूप से छपे हैं। शीर्षक अच्छे हैं। प्रूफ बड़ी सावधानी से देखा गया है, हालांकि कहीं-कहीं गलतियां रह गई हैं। उपसम्पादन कुशल हाथों से हुआ।

उस समय के अधिकांश राष्ट्रीयतावादी समाचारपत्रों की भांति यह भी एक राजनीतिक पत्र था। तीसरे पन्ने पर काले कानून के विरोध में इलाहाबाद की सभा का समाचार बड़ी प्रमुखता से छापा गया है। भाषण अविकल रूप से दिए गए हैं। जिस-जिस स्थल पर करतल-ध्वनि हुई, वह भी नोट कर दिया गया है, जैसा कि उस समय का क़ायदा था। दो पन्नों में शुभकामनाओं के सन्देश छापे गए हैं। यह परम्परा आज भी चली आती है। डा. सुब्रह्मण्यम् नामक किसी सज्जन का एक विशेष लेख छपा है—"भारतीय लोग और आत्मनिर्णय का अधिकार।" लेख के शीर्षक तथा लेखक के नाम के बाद पूर्ण विराम का चिह्न लगाया गया है, जिसका चलन अब नहीं है। विपिनचन्द्र पाल के 'राजनीतिक स्थिति' शीर्षक लेख के साथ भी इसी प्रकार पूर्ण विरामों का प्रयोग है। पत्र के ४ पृष्ठ विज्ञापनों से भरे हैं। इन विज्ञापनों में

अनेक सांस्कृतिक विज्ञापन हैं। 'राष्ट्रीय संगीत अकादमी' का विज्ञापन छपा है, उसकी प्रस्तावना तथा भूमिका-सहित पूरा विवरण छपा है। किसी ब्रिटिश पत्रकार द्वारा लिखी गयी 'युद्धकाल में सम्राट की गतिविधियां' शीर्षक सचित्र पुस्तक दो रुपये मूल्य की एक रुपये में सुलभ होने की सूचना छपी है। शब्द-कोशों तथा संदर्भ-ग्रंथों के विज्ञापनों ने काफ़ी जगह घेर रखी है। 'दमे का अचूक इलाज,' 'रक्त का विषाक्त होना और उसका इलाज,' साबुन, स्टेशनरी का सामान, टाइपराइटर, विविध वाद्ययंत्रों तथा पूंजी लगाने के सुयोग के विज्ञापन भी छपे हैं। विज्ञापनों से उस समय के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन का अनुमान लगाना कठिन है।

'हमारा मत' शीर्षक अग्रलेख में संपादक ने पत्र की सम्पादकीय नीति की व्याख्या की है। संपादक ने ब्रिटिश सिंहासन में जो निष्ठा व्यक्त की है, वह आज आश्चर्यजनक लग सकती है, परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि जिस काल में यह पत्र निकला, वह गांधीवादी राष्ट्रीयता का प्रथम चरण था। इसके बाद ही पत्र धीरे-धीरे अधिकाधिक उग्र तथा गरम विचारों को प्रकट करने लगा। ५ फ़रवरी, १९१९ के अग्रलेख का मूल स्वर इस प्रकार था : "भारतीय जनता की व्यापक भावना का सच्चे रूप में प्रतिनिधित्व करता हुआ, 'इंडिपेन्डेण्ट' ब्रिटिश सिंहासन में अपनी निष्ठा रखेगा। दूसरे शब्दों में राष्ट्र की प्रबल भावना का सच्चाई से प्रतिनिधित्व करते हुए हम ब्रिटेन से सम्बन्ध बनाये रखने और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अन्दर स्वाधीनता और शिष्टता की ब्रिटिश परम्पराओं के अनुसार भारत के भाग्य-निर्णय पर ज़ोर देंगे।" अग्रलेख में इसके आगे नौकरशाही पर हल्का काम किया गया है, बेंथम का एक उदाहरण दिया गया है, थोड़ा राजनीतिक दर्शन बघारा गया है और अंत इस प्रकार किया गया है :

"संक्षेप में हम भारत में होमरूल (स्वराज्य) के समर्थक हैं। हम चाहते हैं कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के नागरिक की हैसियत से भारतीयों को भी अपना स्थान मिले तथा भारत की एक शताब्दी पुरानी पराधीनता, आर्थिक दासता तथा व्यापारिक शोषण का व्यवहार-रूप में भी उसी प्रकार अंत हो, जिस प्रकार सिद्धान्त-रूप में उनका सरकारी रीति से परित्याग कर दिया गया है।"

शैली तथा भाषा

पत्र के पहले अंक में जिस शैली का अग्रलेख निकला, उस शैली के अग्रलेख कई महीने तक निकलते रहे। उनकी भाषा अलंकारयुक्त, किन्तु संयमित थी। राजनीतिक विचारों का भी समावेश रहता था। किन्तु, कटु-से-कटु आलोचना करते समय भी कोई गाली-गलौज नहीं की जाती थी। उस समय के संपादकीय लेखों में इन अग्रलेखों को सर्वोत्तम कहा जा सकता है, यद्यपि उनमें तीव्र भावावेश और दृढ़ विश्वास का अभाव मिलता है। इन अग्रलेखों को सब प्रकार से उल्लेखनीय कहा जा सकता है। पत्र का आरम्भ बड़े शानदार ढंग से हुआ, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि उसका अंत भी उतना ही शानदार हुआ।

'इंडिपेण्डेण्ट' के प्रकाशन के दो दिन बाद, ७ फरवरी, १९१९ को उसके जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में आनन्द भवन में एक रात्रि-भोज दिया गया। मोतीलाल नेहरू ने इस अवसर पर मंगल कामना[१] करते हुए कहा कि पत्र की नीति 'स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध संघर्ष करना' तथा 'भारत की समस्याओं पर विचार करना' है। उन्होंने अभ्यागतों की करतलध्वनि के बीच 'इंडिपेण्डेण्ट' के साथ-ही-साथ श्री हार्निमैन तथा श्री सैयद हुसैन के लिए जामे सेहत पीने का अनुरोध किया। 'इंडिपेण्डेण्ट' में छपी रिपोर्ट के अनुसार इसके बाद बड़े उत्साह का दृश्य देखने में आया। अतिथि लोगों ने मौज में आकर खड़े होकर 'फार दे आर गुड फ़ैलोज़' गाना गाया। यह पता नहीं है कि जामे सेहत किस प्रकार पिया गया तथा अतिथि लोग किस

---

[१] अंग्रेजी ढंग से दिए गए भोजों में भोज से पूर्व शराब का दौर चलता है। इस अवसर पर शराब का गिलास हाथ में लेकर विविध मंगल कामनाएं करते हुए भाषण भी दिए जाते हैं। इसको 'टोस्ट' प्रस्तावित करना या जामे सेहत पीना या मंगल कामनाएं व्यक्त करना कहते हैं।—संपादक

प्रकार खड़े हुए। श्री हार्निमैन ने करतलध्वनि के बीच 'मंगल कामना' का उत्तर दिया। श्री रज़ा अली ने इसके बाद स्टाफ के लिए 'मंगल कामना' की और सम्पादकीय स्टाफ की तरफ से श्री सी० एस० रंगा अय्यर तथा प्रबन्ध विभाग की तरफ से श्री होर्लसिंगर ने उत्तर दिया। श्रीप्रकाश जी भी बोले। इसके बाद श्री हुसैन ने नेशनलिस्ट जरनल्स लिमिटेड के साथ-साथ उसके बोर्ड आफ डायरेक्टर्स के चेयरमैन मोतीलाल नेहरू और उसके डायरेक्टर जवाहरलाल नेहरू के लिए जामे सेहत पीने का अनुरोध किया। श्री हुसैन ने मोतीलाल नेहरू का उल्लेख करते हुए कहा कि "वे पिछले कुछ दिनों से 'इंडिपेण्डेण्ट' के दफ्तर में आकर रात और दिन मेहनत किया करते हैं। उक्त कम्पनी के डायरेक्टरों में जवाहरलाल नेहरू भी थे। श्री हुसैन ने मोतीलाल नेहरू के साथ उनका नाम लेते हुए कहा कि उन्होंने प्रथम अंक निकालने में प्रबन्ध तथा सम्पादकीय विभाग में कस कर मेहनत की है तथा सारे दफ्तर से अपना सम्पर्क बनाए रखा है। यदि इस कम्पनी के अन्य डायरेक्टर भी उन्हीं की तरह उत्साह दिखाएं तो हम यह विश्वास के साथ कह सकते हैं कि यह राष्ट्रवादी पत्र सफल होगा और इसका भविष्य उज्ज्वल है। पत्र में छपी रिपोर्ट के अनुसार "श्री जवाहरलाल नेहरू ने इसका उचित उत्तर दिया।"

अनेक सम्पादक तथा मैनेजर

पत्र के कई संपादक और मैनेजर बदले। कई बार तो संपादक और मैनेजर का पद एक ही व्यक्ति ने संभाला। पत्र के पृष्ठों की संख्या भी ८ से १० तक बदलती रही। दाम भी पहले बढ़ाकर ६ पैसा कर दिया गया, फिर गिरा कर दो पैसा कर दिया गया। पत्र के जीवनकाल में उसका मूल्य अधिकांशतया दो पैसे रहा। पत्र के रूप-रंग में समयानुकूल परिवर्तन होता था या परस्पर-विरोधी रीति से निर्देशन होता था। पहले पत्र पर एक कालम के शीर्षक दिए जाते थे और भीतर के पन्ने पर पूरे पृष्ठ के चार-चार कालमों के शीर्षक रहते थे। कई शीर्षकों के बाद पूर्ण विराम लगा रहता था। पत्र का रूप-रंग और आकार शायद राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, आर्थिक दृष्टि से भी निर्धारित होता था। वर्गीकृत विज्ञापन शुरू होने पर पत्र को आय और साथ ही मनोरंजन का एक नया स्रोत मिला। 'रिक्त स्थान' के अंतर्गत शार्टहैंड, टाइपिस्टों, प्राइवेट ट्यूटरों तथा एक हिन्दी मासिक पत्र के लिए एजेन्टों की आवश्यकता छपी है। 'बिक्री के लिए' स्तम्भ में माल के मुकदमों पर एक कानूनी पुस्तक, एक हारमोनियम, कानून के सिद्धान्तों पर एक पुस्तक तथा एक फ़िटन बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई है। पत्र में उपस्थित की जाने वाली पाठ्य-सामग्री कभी बड़ी रोचक होती थी और कभी नीरस। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल की कार्यवाही बड़े विस्तार से छापी जाती थी। लिबरलों का संगठन करने की कोशिशों का प्रतिदिन मज़ाक उड़ाया जाता था। ज़िलों के समाचार पहले बहुत थोड़े छपे, फिर धीरे-धीरे उनमें विविधता भी आई। आगरा नोट्स के अन्तर्गत वहां के खुफिया विभाग की कार्यवाहियां बड़े विस्तार से छपती थीं। धीरे-धीरे पत्र में 'मौसम की ख़बरें', 'क़ानूनी ख़बरें', 'हास्य-व्यंग्य' तथा 'खेल-कूद' के स्तम्भ शुरू हुए, जो आधुनिक पत्र के साथ रोग की तरह जुड़ गए हैं। खेल-कूद के स्तम्भ के अंतर्गत केवल बम्बई तथा मेरठ की घुड़दौड़ों के समाचार छपते थे। 'सम्पादक के नाम पत्र' व्यवस्थित रूप से छपने के बजाय जहां-तहां बिखरे रहते थे। पत्र में कोई चित्र नहीं छपता था। मोहनदास करमचन्द गांधी का नाम कभी-कभी निकल जाता था। हार्निमैन का नाम सबसे अधिक छापे में आता था।

असाधारण अंक

शुरू में पत्र काफी नीरस निकलता था। उसमें सबसे अधिक ललित भाषा में लिखा गया अग्रलेख तथा ज़बरदस्त तर्कों के आधार पर लिखा गया विशेष लेख होता था। पत्र के शेष भाग में भाषणों की रिपोर्टें होती थीं। लेकिन इसके बाद ही काले कानूनों के विरुद्ध सत्याग्रह-चर्चा का मुख्य विषय बन गया और पत्र को अनेक 'असाधारण अंक' निकालने पड़े। मोहनदास करमचन्द गांधी के स्थान पर अब उनका

नाम महात्मा गांधी छपने लगा। मार्च १९१९ के मध्य तक पहुंचते-पहुंचते पत्र बहुत खराब न्यूज़प्रिंट पर छपने लगा। जिस कागज़ पर वह छपता था, उसका रंग हल्का पीला होता था। समाचारों का संपादन भी देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर किया जाता था। शायद उपसम्पादक लोग पत्र का उपसम्पादन करते समय उप-सम्पादनकला को भूल जाते थे। पत्र में 'नाटक और सिनेमा', 'महिलाओं का कोना' आदि नये-नये स्तम्भ शुरू किए गए। फ़ौज के घोड़ों के बारे में भी समाचार रहते थे। 'हास्य-व्यंग्य' का स्तम्भ तो स्थायी हो गया था। सविनय अवज्ञा भंग के बारे में थोरो का लेख अविकल रूप में छापा गया। क्रिकेट सुधारों तथा मार्लो की ८०वीं वर्षगांठ के समाचार को भी उचित नहीं किया गया। अप्रैल में 'सत्याग्रह दिवस' के अवसर पर 'इंडिपेण्डेण्ट' को एक असाधारण अंक काले बार्डरों के साथ निकला। सारे देश में दमन के खिलाफ़ ज़ोरदार आवाज़ उठी। मदनमोहन मालवीय तथा अन्य लोगों ने इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसिल से इस्तीफा दे दिया। मोतीलाल नेहरू अधिकाधिक गर्म विचारों के होते गए। वह सब जगह जोशीले भाषण देते थे। श्रीमती बीसेन्ट ने भी घोषणा की कि "मैं माडरेट नहीं हूं।" 'इंडिपेंडेण्ट' को भी गहरा संघर्ष करना पड़ रहा था। उसकी छपाई बहुत खराब हो गई थी और पूरे एक पृष्ठ का एक विज्ञापन देकर विज्ञापनदाताओं से पत्र की सहायता करने की अपील की गई थी, जिससे मालूम पड़ता था कि पत्र की स्थिति कुछ निराशापूर्ण हो चली थी।

'इंडिपेण्डेण्ट' बड़ी शीघ्रता से एक प्रौढ़ पत्र बन गया था। २७ अप्रैल को उसने पहले पृष्ठ पर बड़े-बड़े टाइपों में घोषणा की कि उत्तरी भारत के दैनिक पत्रों में 'इंडिपेण्डेण्ट' का सबसे अधिक सर्कुलेशन है। 'पायनियर,' 'लीडर' तथा 'इंडियन डेली टेलिग्राफ' के सम्मिलित सर्कुलेशन से भी उसका सर्कुलेशन अधिक है। सबसे अधिक सर्कुलेशन का यह दावा प्रतिदिन पत्र के नाम से नीचे ही छपने लगा।

तनातनी के दिन

देश में तनाव बढ़ता जा रहा था। दिल्ली-कांड तथा पंजाब के दमन के बाद देश में चारों ओर दुखद घटनाएं घटने लगीं। रोज़ देशभक्तों पर मुकदमे चलते थे। उनको सजाएं दी जाती थीं। श्री मोहनदास करमचन्द गांधी की बढ़िया फोटो एक रुपए में बिक्री के लिए विज्ञप्ति की जा रही थी। 'इंडिपेण्डेण्ट' के शीर्षकों में अब व्यंग का पुट रहता था। समाचार पत्रों की स्वाधीनता का दमन करने के लिए जो प्रेस कानून बना, उसका शीर्षक व्यंग्य-सहित दिया गया, 'उदार प्रेस कानून।' धीरे-धीरे व्यंग्य का स्थान रोष ने ले लिया। यद्यपि शान्ति-संधि के समाचार अब भी छपते थे तथा विज्ञान-वार्त्ता तथा व्यापार-वार्त्ता शीर्षक से नये स्तम्भ भी आरंभ किए गए थे, तथापि छपते-छपते समाचार देने की प्रथा शुरू करने तथा पहले पृष्ठ पर भी लेख दिए जाने से स्पष्ट था कि तनाव बढ़ता जा रहा था। प्रतिदिन ऐतिहासिक घटनाएं घट रही थीं। शंकर नायर का इस्तीफा, हंटर कमेटी, रौलट बिल, जलियांवाला बाग, अमृतसर कांग्रेस में ये सब समाचारपत्र की सुर्खियों के लिए ही नहीं, देश के इतिहास के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाएं थीं।

'इंडिपेण्डेण्ट' के पृष्ठ इन ऐतिहासिक घटनाओं से भरे रहते थे। धीरे-धीरे विज्ञापनों के कालमों में फाउण्टेनपेनों के भी विज्ञापन छपने लगे। सबसे अधिक सर्कुलेशन का दावा त्याग दिया गया। इम्प्रिंट लाइन में सम्पादक के रूप में सैयद हुसैन के स्थान पर सी. एस. रंगा अय्यर का नाम छपने लगा। १८ दिसम्बर को सैयद हुसैन का विदाई का लेख छपा। वह खिलाफत प्रतिनिधि मंडल में सम्मिलित होकर इंगलैंड जा रहे थे। १९ दिसम्बर को रंगा अय्यर ने अपना पहला सम्पादकीय लिखा, वह श्री सैयद हुसैन पर था। शायद उन दिनों समाचारपत्र के सम्पादकों के लिए एक-दूसरे के बारे में अपने ही पत्र में लिखना बुरा नहीं माना जाता था।

१६ नवम्बर, १९२० को घोषणा की गई कि विपिनचन्द्र पाल पत्र के प्रधान सम्पादक होंगे, जिसका मतलब था कि रंगा अय्यर सम्पादक बने रहेंगे। साथ ही यह भी घोषित किया गया कि पत्र के

पुराने अंक ६ आना प्रति अंक के हिसाब से मिलेंगे । पत्र में नये स्तम्भ 'हमारी लंदन की चिट्ठी', 'हमारी कलकत्ता की चिट्ठी' शुरू किए गए । यू० पी० गजेट तथा कचहरी के सम्मनों का भी प्रकाशन होने लगा । विज्ञापन के कालमों में शाही याकूती, मेस्मेरिज्म, हिपनोटिज्म तथा ज्योतिषियों के विज्ञापन छपते थे । कभी-कभी 'ज्योतिषियों से सावधान' भी छपते थे । उन दिनों बायकाट, हड़ताल तथा असहयोग के समाचारों से पत्र भरा रहता था । नवम्बर १९२० में टिप्पणियों का स्थान 'सम्पादक की बातचीत' ने ले लिया । पत्र अधिक चमकदार और रंगीन बन गया । किन्तु अव्यवस्था बढ़ गई तथा गलतियां अधिक होने लगीं । राष्ट्र गहरे क्षोभ के दौर से गुजर रहा था और उसकी स्पष्ट छाप पत्र में भी दिखाई पड़ती थी ।

पतन और अन्त

इसके बाद ही पहले पन्ने पर महात्मा गांधी की 'सामाजिक टिप्पणियां' छपने लगीं और इम्प्रिट लाइन ऐसी छपने लगी कि पढ़ी नहीं जाती थी । पत्र सत्याग्रह-संग्राम के सैनिकों, वीरों तथा बलिदानों के समाचारों से भरा था । विज्ञापन के कालमों में विवाह-विज्ञापन भी जाने लगे । जुलाई में इम्प्रिट लाइन में रंगा अय्यर के स्थान पर जी० ए० सुन्दरम का नाम आने लगा । २ अगस्त, १९२१ को एक विचित्र प्राप्ति-स्वीकृति छपी : "हम इंडियन रबड़ वर्क्स, ४० शम्भूनाथ पंडित स्ट्रीट, भवानीपुर, कलकत्ता से मोटरकार तथा सायकिल के टायर-ट्यूब के पंचर जोड़ने के लिए एक ट्यूब सल्यूशन की प्राप्ति सधन्यवाद स्वीकार करते हैं । बताया गया है कि सल्यूशन पूर्णतया स्वदेशी निर्मित है और इसलिए इसको प्रोत्साहन मिलना चाहिए । हम अपने पाठकों से इसकी सिफारिश करते हैं । इसका मूल्य नहीं सूचित किया गया है ।" यह स्वदेशी तथा सत्य की भावना का प्रताप था । सितम्बर १९२१ से साबुनों के विज्ञापन छपने लगे । इसके साथ इम्प्रिट लाइन में 'श्रीयुत' जार्ज जोजेफ का नाम जाने लगा । १ अक्तूबर को गांधी-जयन्ती से एक दिन पहले ही, उनके जन्मदिन पर सम्पादकीय लेख निकला । १५ नवम्बर को बिना शीर्षक के एक सम्पादकीय छपा । ८ सितम्बर को 'सम्पादक की बातचीत' स्तम्भ में जोजेफ की गिरफ्तारी की खबर दी गई । १९ दिसम्बर से इम्प्रिट लाइन में महादेव देसाई का नाम आने लगा । इलाहाबाद में तथा सारे देश में अभूतपूर्व हड़तालें हुईं, जगह-जगह तलाशियां ली गईं, तथा गिरफ्तारियां हुईं । कांग्रेस के विरुद्ध दमनचक्र पूरी शक्ति से चलाया जा रहा था और 'इंडिपेन्डेण्ट' अपने अस्तित्व के लिए वीरतापूर्ण संघर्ष करता हुआ धीरे-धीरे अवसान की तरफ जा रहा था । १९२३ के शुरू में उसका प्रकाशन बंद हो गया ।

आज इस बात की चर्चा चलाना व्यर्थ है कि जो पत्र इतनी आशाओं के साथ आरम्भ हुआ, वह किन आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से बन्द हो गया । नेतागण राष्ट्रीय मामलों में इतने उलझे थे कि वे पत्र का उद्धार करने की ओर ध्यान नहीं दे सकते थे । २० साल तक इस प्रकार का कोई दूसरा पत्र नहीं निकला । जवाहरलाल नेहरू ने 'मेरी कहानी' में पत्र के प्रबंध की त्रुटियां, उसकी दिक्कतों, आर्थिक कठिनाइयों तथा प्रबन्ध एवं सम्पादकीय विभाग के आपसी झगड़ों का उल्लेख किया है । बीच-बीच में वह बड़ा जोरदार निकला । पत्र के कई सम्पादक बदले । हरएक सम्पादक की अपनी विशिष्ट शैली थी, किन्तु पत्र की कोई एक नीति नहीं थी । पत्र के सम्पादक और मैनेजर राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम में तल्लीन रहते थे । उनके हटने तथा मोतीलाल नेहरू तथा अन्य डायरेक्टरों के जेल जाने पर पत्र में से जैसे उसकी आत्मा निकल गई । आज उसकी याद-भर शेष रह गई है । यह याद एक ऐसे पत्र की है जिसने बड़ा वीरतापूर्ण संघर्ष किया, जिसमें बड़े सुन्दर अग्रलेख लिखे गए, जिसको राजनीतिक पत्रकारिता का सर्वोत्तम नमूना कहा जा सकता है, पर जो व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त असफल था ।

महान् राजनीतिज्ञ और संसदीय नेता

के. एम. पणिक्कर

पंडित मोतीलाल नेहरू से मेरी पहली मुलाकात १९२३ में मद्रास में हुई। वे वहां सत्याग्रह-आंदोलन-सम्बंधी जांच के सिलसिले में गए थे। मैं उस समय वहां अंग्रेज़ी दैनिक 'स्वराज्य' का सम्पादक था, जो स्वर्गीय आन्ध्र केसरी टी. प्रकाशम् के नेतृत्व में कांग्रेस के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए प्रकाशित होता था। कांग्रेस की हलचलों से निकट-सम्बन्ध रखने वाले पत्र का सम्पादक होने के कारण मुझे पंडितजी से उनके मद्रास में रहते समय कई बार मिलने-जुलने का मौका मिला। मुझे खुशी है कि उन्होंने मेरे साथ स्नेह का व्यवहार किया और एक वार मुझसे मद्रास कांग्रेस की राजनीति के अन्दरूनी तनाव के बारे में भी वातचीत की।

दिल्ली में विचार-विमर्श

मार्च १९२४ में महात्मा गांधी ने मुझे अमृतसर जाने और आचार्य गिडवानी के स्थान पर, जिन्हें नाभा के अधिकारियों ने गिरफ्तार कर जेल भेज दिया था, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवन्धक कमेटी के साथ सम्पर्क अधिकारी का काम करने के लिए कहा। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवंधक कमेटी को ग़ैर-कानूनी संस्था घोषित कर दिया था और मेरे सामने यह साफ नहीं था कि मुझे वहां की घटनाओं की रिपोर्ट गांधीजी को देने के अलावा और क्या करना है। पर, मैंने अमृतसर जाते हुए एक-दो दिन दिल्ली में ठहरने और अपने कार्यक्रम के वारे में पंडितजी से सलाह-मशविरा करने व अपने काम करने के तरीके के वारे में उनसे सलाह लेने का फैसला किया। मेरे दिल्ली पहुंचने के एक-दो दिन पहले से बहुत उत्तेजक वातावरण बना हुआ था। पंडित मोतीलाल के नेतृत्व में स्वराज्य-पार्टी ने राष्ट्रवादी सदस्यों को संगठित करके वजट को नामंजूर कर दिया था। पार्टी ने यह संवैधानिक तर्क उपस्थित किया था कि जव तक राजनीतिक मांगें स्वीकार नहीं की जातीं तव तक सरकारी खर्च मंजूर नहीं किया जा सकता। जहां तक मुझे याद है, पंडितजी उस समय विंडसर प्लेस में रहते थे, मैं उनसे मिलने वहीं गया। जब मैंने अपने आने का मकसद वताया तो उन्हें विशेष खुशी हुई, पर उन्होंने कहा कि मुझे वहुत मुश्किल काम सौंपा गया है और मुझे गांधीजी के निर्देशों का अक्षरशः पालन करते हुए दिन प्रति दिन की घटनाओं के वारे में अपनी सूझ-बूझ से काम करना चाहिए। उन्होंने मुझे यह भी वताया कि अकाली समस्या को हल करने के लिए कुछ वार्ताएं चल रही हैं और सर मार्लकम हेली, जो उस समय गृह सदस्या थे, समस्या को हल करने में खुद सक्रिय दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मैं उन्हें घटना की पूरी जानकारी कराता रहूं और मुझसे कहा कि जव भी मैं दिल्ली से गुजरूं तो उनसे मिलना न भूलूं। उसी साल गर्मियों में मुझे सरदार मंगलसिंह के साथ, जो उस समय शिरोमणि गुरुद्वारा प्रवंधक कमेटी के अध्यक्ष थे, कई वार शिमला जाना पड़ा और मैंने इन सभी मौकों पर पंडितजी से मुलाकात की और उन्हें अमृतसर की घटनाओं के वारे में जानकारी कराई।

आनन्द भवन में

अकाली आन्दोलन जल्दी समाप्त हो गया और मैं 'हिन्दुस्तान टाइम्स' शुरू करने के लिए दिल्ली में रहने लगा। सितम्बर १९२४ में, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का प्रकाशन शुरू होने के कुछ दिन बाद ही,

कुमार साहिब नाराजोल (बाईं ओर बैठे) व अन्य के सा

महात्मा गांधी ने मुझे मिलने के लिए बुलाया। गांधीजी उस समय अपना पहला बड़ा उपवास कर रहे थे। उन्होंने आदेश दिया कि मैं कलकत्ता जाऊं जहां स्वराज्य-पार्टी का वार्षिक अधिवेशन होने वाला था और पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजनदास को महात्माजी का एक सन्देश दूं। सन्देश महज यह था : पता चला है कि स्वराज्य-पार्टी के नेता भारत के मसलों पर मज़दूर मंत्रिमंडल से वार्ता करने के लिए लन्दन जाने की योजना बना रहे हैं। इस सिलसिले में गांधीजी को सूचना दी गयी थी कि नाभा के अपदस्थ महाराजा ने स्वराज्य-पार्टी के नेताओं से अनुरोध किया है कि वे उनका मामला भी भारत-मंत्री के सामने रखें। चूंकि मैंने सिखों के साथ सम्पर्क अधिकारी की हैसियत से नाभा के मसले पर गांधीजी को कई रिपोर्ट दी थीं, इसलिए वे चाहते थे कि मैं अपनी जानकारी के सभी तथ्य पंडितजी और देशबन्धु दास के सामने रख दूं और उन्हें गांधीजी की तरफ से सन्देश दूं कि वे राष्ट्रीय समस्याओं के साथ नाभा के मसले को मिलाना उचित नहीं समझते। दिल्ली से रवाना होने से पहले मौलाना मुहम्मद अली ने मुझसे कहा कि मेरे लिए इलाहाबाद रुकना और पहले सारा मामला पंडितजी के सामने रखना ठीक होगा, और इस सिलसिले में उन्होंने खास तौर पर चेतावनी दी कि इस मामले में श्री आसफ अली के विचारों से मेरी टकराव होने की सम्भावना है। मौलाना साहब ने यह भी सूचना दी कि श्री आसफ अली महाराजा का मामला पेश करने के लिए कलकत्ता रवाना हो गए हैं। जब मैं इलाहाबाद पहुंचा तो मैंने देखा श्री आसफ अली आनन्द भवन में पहले से जमे हुए हैं। वे यह अनुमान नहीं लगा सके कि मैं इलाहाबाद क्यों आया हूं और मुझे पंडितजी से अकेले में मिलने और उनके सामने सारा मामला रखने में सफलता मिल गई। पर उन्हें वस्तुतः मामले के हर पहलू की जानकारी पहले से थी और मैं गांधीजी के सन्देश के अलावा उनसे शायद ही कोई नई बात नहीं कह पाया। कलकत्ता में मोतीलालजी के सामने ही मैंने गांधीजी का सन्देश देशबन्धु कों भी दिया और उन दोनों ने एक सन्तोषजनक उत्तर गांधीजी के पास ले जाने के लिए कहा।

अधिक सम्पर्क

१९२५ में बजट अधिवेशन के दौरान, मैं हफ्ते में कम-से-कम दो बार पंडितजी से मिलता था, क्योंकि उस समय राजधानी में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ही अकेला दैनिक पत्र था और पंडितजी चाहते थे कि स्वराज्य-पार्टी के विचार पत्र में पूरी तरह छपें। उन तीन महीनों में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' करीब-करीब स्वराज्य-पार्टी का मुखपत्र ही बन गया था। फलस्वरूप मेरा सम्पर्क पंडितजी से वहुत बढ़ गया। पर इसके बाद ही पत्र का नियंत्रण सिखों और पंडित मदनमोहन मालवीय ने प्राप्त कर लिया। इससे पंडितजी की योजना में वाधा पड़ गई। उन्होंने मुझे बुलाया और कहा कि उनका इरादा दिल्ली से एक साप्ताहिक पत्र निकालने का है और वे चाहते हैं कि मैं उसका सम्पादन करूं। वाद में, जब मैं मद्रास रवाना हो गया, तो उन्होंने मुझे अपने हाथ से एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने बताया कि पत्रकारिता के क्षेत्र में वे अपने इस नये प्रयास के लिए किस रीति से धन एकत्र करने की आशा रखते हैं। मैं उनसे आखिरी बार १९२७ में लन्दन में मिला। वे किसी मुकदमे के काम से यूरोप आए थे। मैं उनसे केन्सिगटन प्लेस मैंशन में मिला, जहां वे ठहरे हुए थे। उन्होंने वहां भी मुझे याद दिलाई कि मैंने उनके साप्ताहिक पत्र के सम्पादन का वादा कर आया हूं। पर उसका समय तब तक गुज़र चुका था। मैंने महसूस किया कि वह केवल मैत्रीवश यह बात कह रहे हैं। मैंने भी अपना दूसरा रास्ता चुन लिया था।

महान संसदीय नेता

भारत में संसदीय परम्परा के विकास में पंडित मोतीलाल नेहरू का योगदान इतना महान् है कि उसके बारे में जितना कहा जाए थोड़ा है। वे निश्चय ही भारत के सबसे महान् संसदीय नेता थे और उन्होंने स्वराज्य-पार्टी के प्रतिभाशाली महामंत्री श्री ए० रंगास्वामी आयंगर के सहयोग से जो संसदीय-

परम्पराएं स्थापित कीं, उन्हीं के आधार पर हम अपने संसदीय लोकतंत्र का निर्माण कर सके हैं। यदि एशिया के अधिकांश नवस्वतंत्र देशों के प्रतिकूल भारत में संसदीय लोकतंत्र प्रभावशाली ढंग से काम कर रहा है और विरोधी दलों को न केवल आज़ादी से अपने विचार प्रकट करने की छूट है, बल्कि उनको लोकतांत्रिक सरकार का अनिवार्य अंग समझा जाता है और कानून बनाने व प्रशासकीय व्यवस्था के नियंत्रण में उनका पूरा हाथ है, तो इसका श्रेय बहुत हद तक पंडित मोतीलाल नेहरू को है। उन्होंने जिस साहस, बुद्धिमत्ता व गरिमा से महान् राष्ट्रीय संग्राम के दौरान में केन्द्रीय असेम्बली में स्वराज्य-पार्टी का नेतृत्व किया, उसी का फल है कि आज हमारे यहां संसदीय लोकतंत्र प्रभावशाली ढंग से काम कर रहा है।

साहसपूर्ण कदम

वे संसदीय क्षेत्र के हर अंग की पूरी जानकारी रखते थे। 'प्रतिनिधित्व के बिना कर देने' के सिद्धान्त पर ज़ोर देने के लिए राष्ट्रवादी विरोधी दल ने उनके नेतृत्व में बजट नामंजूर कर दिया। सरकारी खर्च को मंज़ूरी न देकर उन्होंने दिखा दिया कि सरकार हालांकि प्रणाली पर चलने का नाटक रच रही है, परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप एक स्वेच्छाचारी शासन का है। मोतीलालजी निरर्थक अड़ंगेबाजी की नीति में विश्वास नहीं करते थे। वैधानिक कार्यों की उनकी आलोचना हमेशा रचनात्मक होती थी। उन्होंने भारतीय सुरक्षा-व्यवस्था की जांच करने वाली स्कीम कमेटी पर काम किया। मुख्य राजनीतिक मसलों पर वे खुले दिमाग़ से व बिना लाग-लपेट के राय ज़ाहिर करते थे। वह बड़े साहस के साथ उन मांगों का विरोध करने से नहीं हिचकते थे, जिन्हें वे भारत के हित के खिलाफ समझते थे, भले ही वे कितनी ही लोकप्रिय क्यों न हों। पंडित मोतीलाल नेहरू की इस विशेषता का एक ज़बरदस्त उदाहरण उनका वह रुख था, जो उन्होंने भारतीय मुकदमों के सम्बन्ध में प्रिवी कौंसिल का अधिकार-क्षेत्र खत्म कर देने के बारे में अपनाया। वस्तुतः लोकप्रिय कही जाने वाली गलत सामाजिक धारणाओं का साहस के साथ विरोध करने के लिए वह अपने समय में विख्यात हो गये थे। ऐसे समय जबकि सामाजिक पुराणपंथीपन को देशभक्ति का पर्याय समझा जाता था, मोतीलालजी ने जीवन के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण अपनाने पर दृढ़ता से बल दिया। तुलसी गोस्वामी द्वारा दी गई दावत में शराब पीने के आरोप के बारे में महात्मा गांधी के पत्र का उन्होंने जो उत्तर दिया, वह इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि वह अपनी वैचारिक स्वतंत्रता को कितना महत्व देते थे और अपने विचारों पर कितने साहस व मज़बूती से डटे रहते थे। उन्होंने सामाजिक अन्धविश्वासों की वेदी के सामने घुटने टेकना नामंज़ूर कर दिया और १९२६ के चुनाव के समय जब उनके खानदान के बारे में आरोप लगाए तो उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि वे अपने विचारों को त्याग कर जनता के वोट खरीदना नापसन्द करते हैं।

रचनात्मक दृष्टिकोण

राजनीतिक कार्यों में मोतीलालजी के रचनात्मक दृष्टिकोण का सर्वोत्तम उदाहरण इलाहाबाद में सर्वदल सम्मेलन की आयोजन और नेहरू-रिपोर्ट है। वह वकालत तथा ऐश्वर्य एवं प्रतिष्ठा पर लात मारकर असहयोग-आन्दोलन में कूदे और जेल गए, किन्तु एक असहयोगी होने के बावजूद वे ऐसे राजनीतिज्ञ थे, जिसने महसूस किया कि अगर स्वराज को सार्थक बनाना है तो भारत को अपनी संवैधानिक समस्याओं का हल स्वयं निकालना होगा। बर्केनहेड ने भारतीयों को एक सर्वसम्मत संविधान तैयार करने की जो चुनौती दी, उसका जवाब पंडित मोतीलाल नेहरू ने इलाहाबाद में सर्वदल सम्मेलन आयोजित करके दिया। सम्मेलन के फैसले के मुताबिक तैयार की गई नेहरू-रिपोर्ट सर्वसम्मत संविधान तैयार करने का भारत का पहला गंभीर प्रयास था। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उस रिपोर्ट में भारत की समस्याओं का जो हल सुझाया गया था, वह बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शितापूर्ण था।

पंडित मोतीलाल नेहरू बहुत ही ऊंचे पाये थे, आधुनिक विचार तथा रचनात्मक दृष्टिकोण रखने वाले, राजनीतिज्ञ थे। वह एक महान् संसदीय नेता थे, जिन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए एक ज्वलंत आदर्श प्रस्तुत किया। वास्तव में वह अपनी पीढ़ी के महान् एवं गौरवशाली नेताओं में महानतम थे। भारत के राजनीतिक जीवन में उन्होंने बहुविधि योगदान दिया, पर मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि भविष्य में उनका सम्मान मुख्य रूप से एक ऐसे व्यक्ति के रूप में होगा, जिसके प्रति भारत अपनी संसदीय परम्पराओं के लिए ऋणी है।

यदि मेरा मरना अनिवार्य है, तो मुझे स्वतन्त्र भारत की गोदी में मरने दीजिए।
मुझे परतंत्र देश में नहीं बल्कि स्वतंत्र देश में अंतिम निद्रा लेने दीजिए।

—मोतीलाल नेहरू.

: ४ :

विशेष लेख

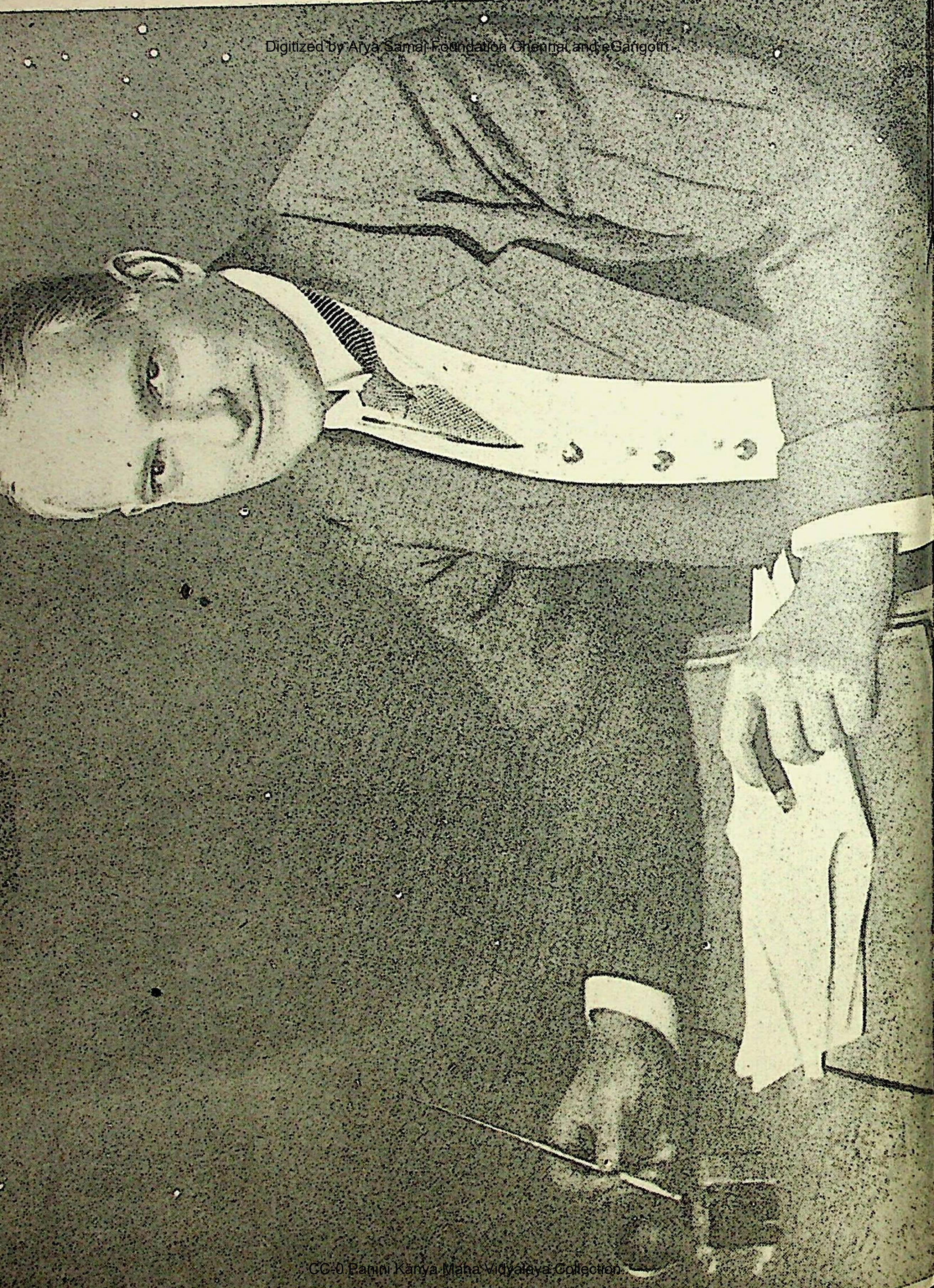

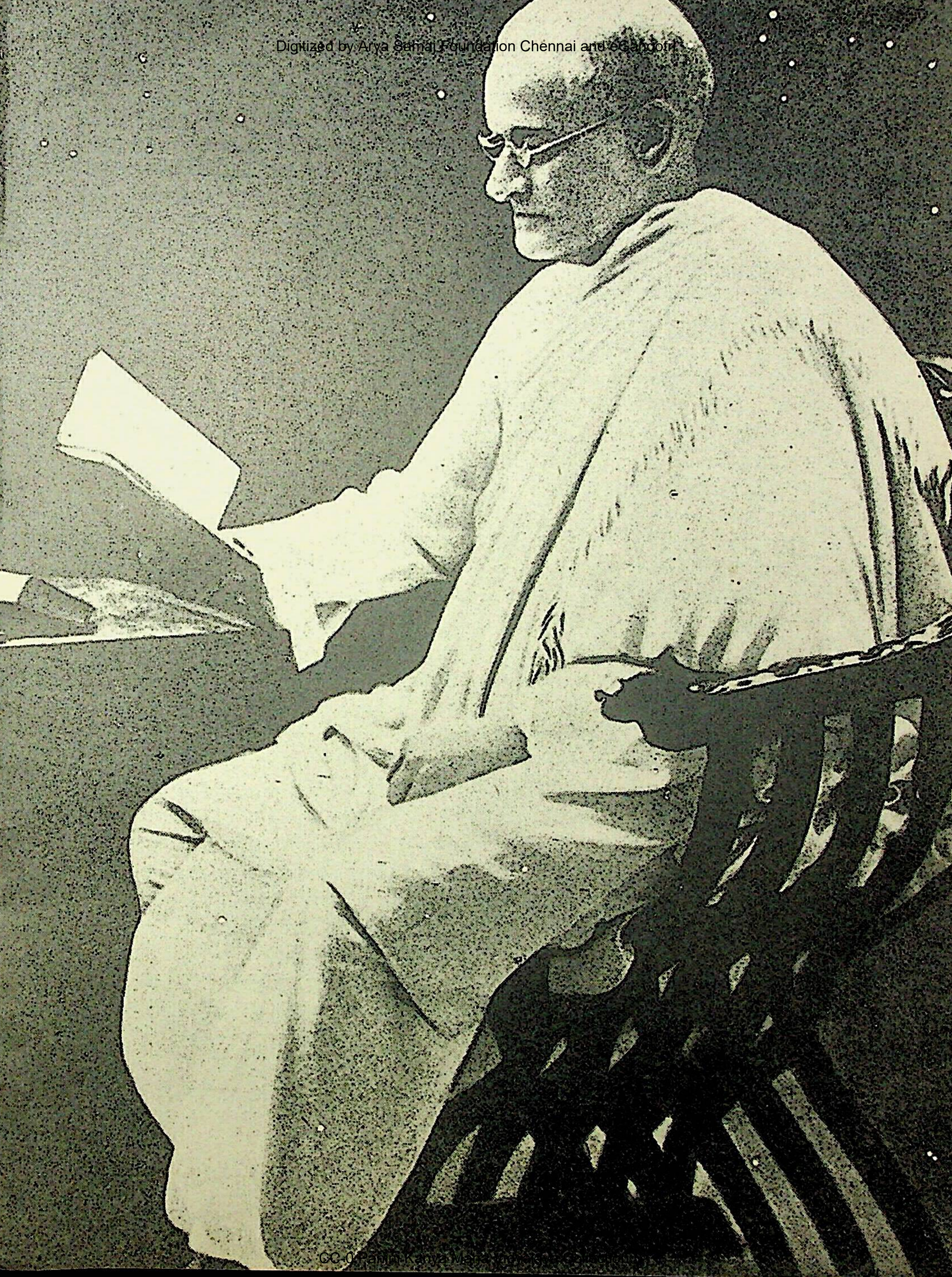

कुछ झलकियां

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

केवल दो अवसरों को छोड़कर, जबकि सन् १९३०-३१ में मुझे स्वराज्य भवन में ठहरने का मौका मिला, मुझे पंडित मोतीलाल नेहरू की कुछ झलकियां देखने को मिलीं। सर्वप्रथम दिसम्बर १९०७ में मुझे पंडित मोतीलाल नेहरू के दर्शन सूरत स्टेशन पर हुए जब वे उस स्पेशल ट्रेन से उतर रहे थे जिससे दुर्भाग्यग्रस्त सूरत कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष डॉक्टर रासबिहारी घोष आए थे। अध्यक्ष के साथ की टोली में पंडित मोतीलाल के अलावा सुरेन्द्र बनर्जी और नेविन्सन भी थे। उस समय मैं 'लाल, बाल और पाल' के नेतृत्व में 'उग्रपन्थी दल' का अनुगामी था जिसके कर्णधार पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल थे। कांग्रेस अधिवेशन में पंडित मोतीलाल नेहरू ने ही उस प्रस्ताव का अनुमोदन किया था जिसमें डॉक्टर रासबिहारी घोष का नाम अध्यक्ष पद के लिए उपस्थित किया गया था। दुर्भाग्यवश डॉक्टर घोष उस पद को सुशोभित नहीं कर पाए, क्योंकि कांग्रेस कुछ मिनटों बाद ही भंग हो गई।

जहाँ तक मुझे स्मरण है 'होमरूल लीग' के आन्दोलन-काल में (१९१५-१८) पंडित मोतीलाल नेहरू उत्तर प्रदेशीय शाखा के अध्यक्ष की हैसियत से कई बार बम्बई आए थे। लीग की स्थानीय मंत्री की हैसियत से मुझे भी मौन दर्शक के रूप में उन बैठकों में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त होता था जिनमें डॉक्टर ऐनी बीसेन्ट, श्री जिन्ना, डॉक्टर जयकर और अन्य नेता सम्मिलित होते थे। ऐसे ही अवसर पर मुझे स्मरण आता है, मैं मोतीलालजी को हाईकोर्ट की बॉर लाइब्रेरी में लिवा ले गया था। मेरा खयाल है कि जवाहरलाल भी उनके साथ थे। उस समय की पंडित मोतीलाल नेहरू की छवि अभी तक मेरे स्मृतिपटल पर अंकित है। सुन्दर तेजस्वी मुखड़ा, श्वेत हो चली शानदार मूंछें, भव्य रेशमी सूट और आनन्दोत्फुल्ल चमकीले नेत्र, इन सबको मिलाकर उनकी भव्य काया पर वह श्री विराजमान थी, जो सोलहो आने 'राजपुरुषोचित' प्रतीत होती थी। उस समय पंडित मोतीलाल नेहरू की वकालत के क्षेत्र में सफलता, उनके प्रयाग के वैभवपूर्ण जीवन तथा उनके आतिथ्य-सत्कार की अनेक कहानियां प्रचलित थीं, जिनकी वजह से उनका मुखमंडल और आभामय प्रतीत हो रहा था।

१९३० में मुझे पुनः मोतीलालजी की एक झलक मिली जब यरवदा की जेल की ५ फुट ऊंची अभेद्य दीवार ने हम सबसे उन्हें पृथक् कर रखा था। पंडित मोतीलाल और जवाहरलाल, दोनों को जेल में महात्मा गांधी से मुलाक़ात के लिए लाया गया था ताकि वे उनसे गोलमेज़ सम्मेलन में कांग्रेस के भाग लेने की सम्भावनाओं पर विचार-विमर्श कर सकें। सर तेजबहादुर सप्रू और डॉक्टर जयकर भी इन लोगों को गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लेने पर राज़ी करने के लिए वहां मौजूद थे।

उस अवसर पर सप्रू तथा जयकर जितने दिनों पूना में रहे नित्य सुपरिटेण्डेण्ट के दफ्तर में जमुनादास द्वारकादास और मुझसे मिलकर वार्ता की प्रगति की सूचना देते रहते थे। सप्रू और जयकर का कहना था कि गांधीजी तो गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लेने के प्रस्ताव पर विचार करने को तैयार हैं, पर पंडित मोतीलाल नेहरू झुकने को तैयार नहीं हैं।

३० अक्तूबर, १९३० को जेल से रिहा होने पर मैंने बम्बई में चलने वाले सत्याग्रह-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। उस समय पंडित मोतीलाल और श्री सेन-गुप्त यही दो बड़े कांग्रेसी नेता

जेल से बाहर थे। उस समय कतिपय मिलों के बहिष्कार का प्रश्न उठा जो विदेशी सूत का उपयोग करके सूती वस्त्र तैयार करती थी। उस समय स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी पंडित मोतीलाल उच्चतम स्तर पर सम्पूर्ण कांग्रेस आंदोलन का सूत्र-संचालन कर रहे थे। मिलों के बहिष्कार के प्रश्न पर मुझे और श्री सेन-गुप्त को, जो उस समय मेरे ही साथ ठहरे थे, प्रयाग बुलाया गया और तब मुझे तीन-चार दिनों तक स्वराज्य भवन में ठहरने का अवसर मिला। यह पहला अवसर था जब मैं राष्ट्र के किसी ऐसे व्यक्ति से मिला जो ब्रिटिश सरकार के मुकाबले की शान-शौकत से रहता था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह ब्रिटिश सरकार के मुकाबले में भारतीय जनता के ऐश्वर्य का प्रतिनिधित्व करता हो।

आत्मत्याग और पवित्रता की प्रतिमूर्ति श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू की स्मृति मुझे कभी नहीं भूलती, जिन्होंने हम लोगों को यह महसूस नहीं होने दिया कि हम अपने घर के बाहर हैं। पंडित मोतीलाल नेहरू के आतिथ्य-सत्कार का कहना ही क्या? राजनीतिक चर्चाओं के सिवा मुझे उनकी बड़ी ही दिलचस्प बातचीत सुनने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ। मेरे प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने बतलाया कि इस आनन्द भवन में पहले उनकी जीवनचर्या कैसी थी। गवर्नर सर हारकोर्ट बटलर उनके मित्रों में थे। उन्होंने अपने कतिपय मुकदमों की भी चर्चा की जिनमें उन्होंने विजय प्राप्त की थी। उनकी वह विजय एक ऐसे चतुर वकील की विजय थी, जो अपने प्रतिपक्षी की सबलता और दुर्बलता, दोनों का ही सही मूल्यांकन करके परिस्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाता है और उस पर हावी हो बैठता है।

उस समय मैं गांधीजी का नया-नया अनुयायी बना था और इसके फलस्वरूप अपने जीवन-क्रम में होने वाले परिवर्तन का धक्का पूरी तरह आत्मसात् न कर पाया था। इस बात की चर्चा मैंने मोतीलालजी से की। इस पर वे अपनी 'आपबीती' सुनाने चले कि किस प्रकार गांधीजी का जादू उनके जीवन पर छा गया। उन्होंने बतलाया कि पंजाब में मार्शली के दौरान जो अत्याचार हुए उनकी जांच के लिए कांग्रेस ने एक कमेटी बनाई थी। उसी की बैठकों के सिलसिले में वे गांधीजी के जादू-भरे प्रभाव में आए। इसी प्रसंग में उन्होंने किंचित् भी पश्चात्ताप के बिना, बड़े प्रेम-भाव से बताया कि गांधीजी ने उन्हें किस तरह 'फकीर' बना दिया।

मोतीलालजी तनिक-सी उत्तेजना पर किसी भी व्यक्ति को बहुत कड़े शब्दों में फटकार बैठते थे और गुस्से से लाल हो जाते थे, किन्तु दूसरे ही क्षण उनकी क्रुध मुखमुद्रा पर मोहक मुस्कान थिरक उठती थी। उनके हृदय में दयालुता का अथाह सागर-सा लहराता था। वह बड़े ही सहृदय, उदार और स्नेही व्यक्ति थे। परिवार के लोगों और मित्रों के प्रति उनकी ममता अगाध थी। उनके सम्पर्क में जो भी राजनीतिक कार्यकर्ता आए उनको भी यह ममता प्राप्त हुई। यह ठीक होगा कि उनकी यह ममता देशभक्ति के रूप में अखिल राष्ट्र के लिए विस्तीर्ण हो गई थी।

गोलमेज़ सम्मेलन

जेल से नेताओं की रिहाई के प्रायः एक सप्ताह पूर्व (जिसके बाद ही गांधी-इर्विन सन्धि हुई) मुझे पुनः प्रयाग बुलाया गया। उस समय यद्यपि पंडित मोतीलाल बीमार थे तथापि वे बराबर सर तेजबहादुर सप्रू से सम्पर्क बनाए हुए थे जो लन्दन के गोलमेज़ सम्मेलन में भाग ले रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने एक नीति-सम्बन्धी वक्तव्य प्रकाशित करके कांग्रेस से गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लेने की अपील की थी। उस पर तेजबहादुर सप्रू ने एक तार पंडित मोतीलाल के नाम भेजकर अनुरोध किया था कि ब्रिटिश सरकार की उक्त अपील जल्दीबाज़ी में अस्वीकार न की जाए।

उस समय डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद, सैयद महमूद और मैं, तीनों ही उनके पास बैठे थे। जैसे ही हम लोग उनके पास पहुंचे उन्होंने सर तेज का तार हम लोगों के आगे फेंक दिया और उस तार के मज़मून पर अत्यन्त रुष्ट होकर हम लोगों से ब्रिटिश सरकार के वक्तव्य पर एक बहुत बड़ा उत्तर तैयार करने

को कहा। हम लोग उत्तर का मसविदा तैयार करने में जुट गए। कई मसविदे बने, परन्तु वे सब इसलिए रद्द हो गए कि वे काफ़ी कड़े नहीं थे। अन्ततः जब एक मसविदा सन्तोषजनक रूप में तैयार हो गया तब पंडित मोतीलाल ने हम सबको हिदायत की कि इस मसविदे की भनक तक किसी के कानों में न पड़े। अनन्तर, उन्होंने मुझे आदेश दिया कि यह मसविदा लेकर मैं दिल्ली जाऊं और वहां जेल में श्री सेनगुप्त को सारी स्थिति से अवगत करादूं।

इस पर मैं दिल्ली पहुंचा जेल में श्री सेन-गुप्त से मुलाक़ात की इजाज़त प्राप्त करने के लिए मेरे सामने एक ही मार्ग था कि मैं अपने मित्र, तत्कालीन भारत सरकार के न्याय-सदस्य सर बी० एल० मित्र से मिलूं। सर बी० एल० मित्र ने मुझसे कहा कि अब इन बातों के लिए मुझे परेशान होने की ज़रूरत नहीं। कारण बहुत ही शीघ्र समझौता होने जा रहा है। आज प्रातः वायसराय की कार्यकारिणी की बैठक हुई थी।

इस पर मैंने उत्तर दिया, "किन्तु हम लोग तो ब्रिटिश सरकार का प्रस्ताव अस्वीकार करने जा रहे हैं।"

यह सुनते ही सर बी० एल० मित्र ठठाकर हँस पड़े और बोले, "आपने प्रयाग में जो मसविदा तैयार किया है उसे मैं देख चुका हूं।"

मैं यह सुनकर स्तब्ध रह गया और बोला, "आपने उसे देख लिया है ?"

"हां," उन्होंने उत्तर दिया।

सर बी० एल० मित्र ने कहा, "अभी आप पंडित मोतीलाल को पूरी तरह जानते नहीं। जब आप श्री सेन-गुप्त से मिलें तब उनसे कह दें वे कुछ घंटों के भीतर नहीं तो चन्द दिनों के भीतर जेल से रिहा हो जाएंगे।"

इसके बाद ही नेताओं की जेलों से रिहाई हुई, स्वराज्य भवन में बैठकें हुई और गांधी-इर्विन समझौता हो गया, जो इतिहास की जानी-मानी बात है।

यही कतिपय झलकियां भारत के उस महानतम नेता की मेरे पास संचित हैं, जिसने महात्मा गांधी के साथ हमारे स्वाधीनता-संग्राम का संचालन एवं निर्देशन किया।

> हमारी सर्वोच्च महत्त्वाकांक्षा यह है कि हम स्वतंत्र भारत की बुनियाद में दफन होकर विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाएं और हमारा कभी स्मरण न हो।
>
> —मोतीलाल नेहरू

ज़िन्दादिल और विनोदप्रिय

डा० सम्पूर्णानन्द

१९२१ में प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का सदस्य बनने के बाद मेरा पंडित मोतीलाल नेहरू से बराबर मिलना-जुलना होता था। उन दिनों कमेटी का दफ्तर इलाहाबाद में था। इसके अलावा मोतीलालजी संगठन के प्रमुख सदस्यों में थे और अनेक अवसरों पर उनसे सलाह-मशविरा लेने की ज़रूरत पड़ती थी। किन्तु यह मिलना-जुलना बहुत कुछ औपचारिक तरीके से होता। उनमें एक खानदानी बड़प्पन था, वह स्वभाव से कुछ गर्वीले जिसकी वजह से उनसे और हमारे बीच एक दीवार-सी रहती थी। यह दीवार उस समय भी नहीं टूटी, जबकि हम कुछ समय तक लखनऊ जेल में एक साथ रहे।

स्कीन कमेटी

मैं वस्तुतः उनके निकट सम्पर्क में १९२५ में आया, जब वे स्कीन कमेटी के सदस्य बने (कमेटी के अध्यक्ष सर एन्ड्रूज स्कीन थे, इसीलिए वह स्कीन कमेटी कहलाती थी)। इस कमेटी की स्थापना भारत सरकार ने इस प्रश्न पर राय देने के लिए की थी कि सैंड हर्स्ट के ढंग पर एक सैनिक कालेज भारत में भी स्थापित करना ठीक होगा या नहीं। कमेटी के सामने सम्भवतः इससे भी अधिक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय यह था कि सेना के उच्च पदों पर सभी वर्गों के भारतीयों की नियुक्ति उचित होगी या नहीं। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत सरकार ने स्वयं एक कृत्रिम भेद-भाव करके भारतीयों को तथाकथित गैर-फ़ौजी जातियों में बांट रखा था। एक ही उदाहरण से साफ हो जायगा कि यह विभाजन कितना खोखला था। सिक्ख फ़ौजी जाति के लोग समझे जाते थे, जबकि खत्रियों व बनियों को इस श्रेणी में नहीं रखा जाता था। उस तथ्य की ओर कभी ध्यान नहीं दिया गया कि सिक्खपन्थ में सभी धर्मों के लोग सम्मिलित हो सकते हैं और खत्री या बनिया किसी भी दिन सिक्ख और इस प्रकार के सम्भवतः, फ़ौजी जाति का व्यक्ति बन सकता है। इस श्रेणी-विभाजन में इस तथ्य को भी भुला दिया गया था कि जिन गुरुओं ने अलग सिक्ख पन्थ चलाया वे सभी खत्री और इस प्रकार गैर-फ़ौजी व्यक्ति थे।

पंडित मोतीलालजी ने इस कमेटी के कार्य के सिलसिले में मुझको अपना सेक्रेटरी नियुक्त किया। कुछ लोग मुझे उनका फ़ौजी सेक्रेटरी कहा करते थे। काम बड़ा दिलचस्प था और इससे मुझे भारत सरकार की सुरक्षा-सम्बंधी समस्याओं की जानकारी हो गयी, जो मुझे अन्यथा न हो पाती। उनकी बुद्धि कितनी प्रचंड थी और समस्याओं को सार-रूप में वे कितनी जल्दी हृदयंगम कर लेते थे, इस सम्बंध में मेरा कुछ कहना वृथा होगा। मैं तो उनके इन गुणों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि ही अर्पित कर सकता हूं।

गवाही

सार्वजनिक व्यक्तियों में परिस्थितियोंवश जो तीव्र भावावेश पैदा होता है, वह देखने योग्य होता है। मैं इस सिलसिले में सिर्फ एक उदाहरण दूंगा। कमेटी के सामने गवाही देने के लिए जिन लोगों को बुलाया गया उनमें श्री एस० एस० नेहरू भी थे। मोतीलालजी को उनकी योग्यता पर बड़ा भरोसा था। मैंने उनकी लिखित साक्षी पढ़ी थी। वह छपी हुई है और कमेटी के रेकार्डों में देखी जा सकती है। उसके बारे में इतना ही कहना काफ़ी होगा कि वह अत्यन्त चकित कर देने वाली थी। जहां तक मुझे

स्मरण है, और किसी ने, निश्चय ही किसी भारतीय ने ऐसी राय नहीं ज़ाहिर की थी। उनकी राय थी कि किंग्स कमीशन भारतीयों को नहीं दिया जाना चाहिए। अगर राजनीतिक जनमत का दबाव रोका न जा सके तो लोगों को बहलाने के लिए किंग्स कमीशन और वायसराय कमीशन के ओहदों के बीच कोई नया ओहदा बना देना चाहिए। मैंने पंडितजी से ज़ोर देकर कहा कि श्री नेहरू से कह दें कि वे कमेटी के सामने गवाही देने के लिए न आवें। उन्होंने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। वे विश्वास ही नहीं कर सकते थे कि ऐसा व्यक्ति इस तरह का प्रतिक्रियावादी बयान दे सकता है और जब उनकी भ्रान्ति दूर हुई तो वे गुस्से से लाल हो गए। कुछ अन्य सदस्यों ने उन्हें सुना-सुना कर जो टीका-टिप्पणियां कीं, उससे उनका गुस्सा दुबाला हो गया।

ज़िन्दादिली

उनके साथ कुछ ही दिन रहने पर हम दोनों के बीच की दीवार पूरी तरह हट गयी। उनका मज़ाक बड़ा चुटीला होता था। मैं इसका एक उदाहरण देता हूं। कमेटी के कार्य से हम लोग पहले कुछ दिनों तक स्पीकर श्री विट्ठलभाई पटेल के साथ ठहरे थे। मैं निरामिषभोजी हूं, इसलिए मेरे खाने-पीने की समस्या जटिल नहीं थी। पर पंडितजी के लिए एक विशेष रसोइया रखा गया। उसकी परीक्षा लेने के लिए उससे एक खास किस्म का गोश्त तैयार करने के लिए कहा गया। मैं नहीं जानता कि उसका नाम क्या था, परन्तु वह रसोइया उसे ठीक से तैयार नहीं कर सका। जब उसे उसकी ग़लती बतायी गयी तो वह बहस करने लगा। इस पर पंडितजी ने कहा, "अरे भाई, ऐसा मत कहो। कभी हम भी आदमी थे। इस खद्दर के धोखे में मत आना।"

गुस्सा होने पर वह बहुत जल्दी उबल पड़ते थे। बाहर से वह बहुत रूखे व हठी मालूम पड़ते थे। परन्तु, अन्दर से वह बड़े ही उदार और स्नेही व्यक्ति थे। वे अदालत में अपनी कुछ मुठभेड़ों, अपने कुछ मुवक्किलों की सनकों, अपने सार्वजनिक जीवन की घटनाओं, महात्माजी व अन्य नेताओं के साथ हुई अपनी कुछ बहसों और अपनी वकालत के शुरू के दिनों के जो किस्से सुनाते थे, वे बड़े दिलचस्प होते थे और इससे उनके और मेरे बीच की उम्र की जो खाई थी, वह बहुत-कुछ घट गयी। कभी-कभी वे बड़ी मनोरंजक बात करते थे। एक शाम को उनके एक मुवक्किल ने एक बड़ी केक भेजी। वह उनकी मेज़ पर रख दी गयी और कमेटी का काम खत्म कर उनके लौटने का इन्तजार किया जाने लगा। उसे देखते ही वह बोले, "मैं जानता हूं, तुम इसके लिए बहुत देर से प्राणायाम कर रहे हो।" केक काटी गयी। मैंने उसे बड़े आनन्द से खाया और मुझे विश्वास है कि उनको भी यह स्वादिष्ट लगी होगी। परन्तु मेरे सामने जिन शब्दों के साथ वह रखी गयी, उससे मेरे लिए उसका स्वाद कई गुना बढ़ गया। वह बड़े ही विनोदप्रिय थे, यहां तक कि अपना मज़ाक उड़ाने से भी नहीं चूकते थे।

मित्रों के प्रति वफ़ादारी

उनकी दूसरी विशेषता, जो उनके निकट सम्पर्क में आने वाले लोगों को खींच लेती थी, उनकी वफ़ादारी थी। जो लोग उनके प्रति वफ़ादार रहते थे, उनके प्रति वे भी बड़ी वफ़ादारी दिखाते थे। ऐसे लोगों के विरुद्ध कोई बात सुनना वे पसन्द नहीं करते थे। एक शाम, केन्द्रीय असेम्बली के एक सदस्य ने स्कीन कमेटी के काम का हवाला देते हुए कहा, "पंडितजी, मेरे खयाल में आपको एक बढ़िया सेक्रेटरी रखना चाहिए, जो आपकी मदद कर सके।" उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, "मेरे पास बहुत बढ़िया सेक्रेटरी है।" मैं उस मौके पर कमरे में नहीं था। उनकी बातचीत की शैली बड़ी लुभावनी थी। वे जो भी बात कहते थे, दिल को छू लेती थी। स्कीन कमेटी से उनके इस्तीफ़ा देने के बाद, जब मैं बनारस वापस जाने

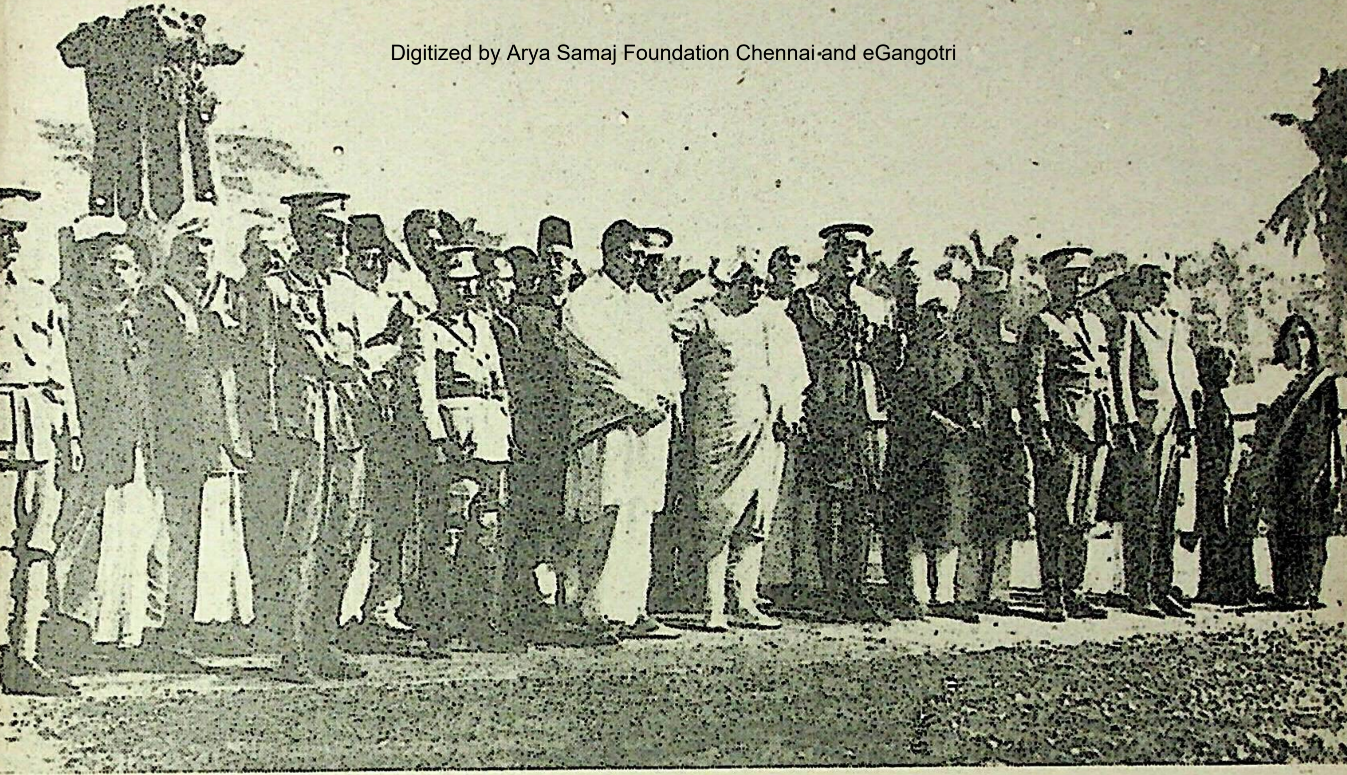

कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के समय, १९२८

के लिए उनसे इजाज़त मांगने गया तो बोले, "हां जी, अब कैसे रोकें, न वह मय रही, व वह जाम रहा, न वह महफिल रही।"

इसमें संदेह नहीं कि उनके साथ बहुत संभल कर रहना पड़ता था, परन्तु सब मिलाकर वे एक ऐसे आदमी थे, जिनके साथ रहना व काम करना आनन्द देता था। उनके पास किस्से-कहानियों का एक लम्बा खज़ाना था, जिसमें कई शताब्दियों के सामाजिक इतिहास की झलक मिलती थी। उनकी बातचीत एक ऐसी पीढ़ी के आचार-विचार और व्यवहार की शिक्षा देती थी, जो अब नहीं रही, वह पीढ़ी मिलीजुली भारतीय संस्कृति के बीच पली-बढ़ी थी (उस पीढ़ी के लोगों में संभवतः अभिजात-वर्ग की भावना रहती थी, पर निश्चय ही वे बड़े भद्र पुरुष थे)।

जुझारू राष्ट्रवादी

डा० जीवराज एन० मेहता

मोतीलाल भारत के उन यशस्वी पुत्रों में से थे, जिन्होंने न केवल मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राण निछावर कर दिए, बल्कि अपनी सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग भी स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए उत्सर्ग कर दिया। उद्देश्य के प्रति अचल निष्ठा इस महान् देशभक्त का विशेष गुण था। वह एक अजय जुझारू राष्ट्रवादी थे। अपने प्रारम्भिक जीवन में उनका राजनीति से कोई लगाव न था, पर जब एक बार वे उसमें खिंच आए तो फिर वे दिलोजान से उसमें कूद पड़े और देश की स्वतंत्रता के लिए अन्त तक लड़ते रहे।

यहां पर १९१९ के दमन के दिन याद आते हैं, जब महात्मा गांधी ने जनता से सारे देश में पूर्ण हड़ताल करने की अपील की थी। दमन से देश में फैली हुई तीव्र राष्ट्रवादी भावना दबी नहीं, बल्कि उसने मोतीलालजी जैसे लोगों को क्रुद्ध कर दिया और उन्हें राष्ट्रीय संग्राम में खींच लिया। वे अपने राजसी जीवन पर लात मार कर जेल गए। वे महात्मा गांधी के पक्के अनुयायी बन गए और स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़े। वे बड़े शेरदिल थे। उन्होंने यह जाना नहीं था कि भय किसको कहते हैं। उन्होंने देश के स्वाधीनता संग्राम का बड़ी गरिमा और बड़े साहस के साथ नेतृत्व किया।

स्वतंत्रता आन्दोलन में शामिल होने से पहले मोतीलालजी बड़ी शान-शौकत से रहने के आदी थे। किन्तु, कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठकों में भाग लेने के लिए जब वे अहमदाबाद में स्थित साबरमती आश्रम आते थे तो आश्रमवासियों की भांति बड़ी सादगी तथा संयम से रहते थे। मोतीलालजी आश्रम में तीन-तीन, चार-चार दिन ठहरते थे और यह देखकर आश्चर्य होता था कि वह महात्मा गांधी के साथ आश्रम का जीवन कितनी आसानी से अपना लेते थे। भारत नेहरू-परिवार द्वारा की गई राष्ट्र-सेवाओं के लिए उनका अत्यधिक ऋणी है। मोतीलालजी की जन्म-शताब्दी पर देश उनको सर्वोत्तम श्रद्धांजलि यही अर्पित कर सकता है कि हम सब उनके देशभक्ति और राष्ट्र के प्रति अनन्यनिष्ठा के महान् गुण को उत्साह से अपनाएं। मैं उनकी अन्तिम बीमारी के समय, जिसके फलस्वरूप फरवरी, १९३१ में उनका देहावसान हुआ, उनके निकट सम्पर्क में आया। स्व. डाक्टर अंसारी, डा. विधानचन्द्र राय और मैं बारी-बारी से कई सप्ताह तक उनकी देखभाल करते रहे। वे बड़े ही बहादुर और अनुशासनबद्ध मरीज़ थे और जो लोग उनकी देखभाल करते थे, उनका बड़ा खयाल रखते थे।

पंडित मोतीलाल नेहरू

डॉ. गोविन्ददास

भारत के आधुनिक युग में राजनैतिक क्षेत्र के व्यक्तियों में व्यक्तित्व की दृष्टि से शायद पंडित मोतीलाल नेहरू से वड़ा व्यक्तित्व और कोई नहीं हुआ। एक तो निसर्ग ने ही उन्हें भव्य बनाया था, दूसरे उस भव्यता में जिन भव्य बातों का समावेश हो गया था, उसके कारण उनके व्यक्तित्व में यह उक्ति चरितार्थ हो गयी थी कि 'सोने में सुगन्धि' का मिश्रण हुआ है।

पंडितजी न वहुत ऊंचे थे और न वहुत ठिगने ही। अवस्था के बढ़ाव के साथ शरीर की स्थूलता भी कुछ बढ़ी थी; पर उसमें वहुत भद्दापन न आ पाया था। वे अपने सत्तरवें वर्ष में स्वर्ग सिधारे। परन्तु अन्तिम कुछ वर्षों को छोड़कर वृद्धावस्था तक व्यायाम करते रहे। यही कारण था कि शरीर में स्थूलता आने पर भी भद्दापन न आ सका। कश्मीरी गौर वर्ण के होते ही हैं अतः पंडितजी का वर्ण गौर था। और उस गोरे रंग को बुढ़ापे के कारण श्वेत हो गये केश और भी गोरा बना रहे थे। जवाहरलालजी के सदृश्य मोतीलालजी के सिर के वाल नहीं झड़े थे। इस अवस्था में भी वे संवारे हुए वाल रखते थे। सन् १९२६ तक उनके मूंछें भी थीं और मूँछें छोटी या खसखसी नहीं, खूब बड़ी तथा दोनों ओर की नोकें एकदम ऊपर उठी हुयीं। मुझे तो उनका मूंछों से युक्त आनन मूंछों से रहित मुख की अपेक्षा कहीं अधिक भव्य जान पड़ता था ओर मुझे ही क्यों जब सन् १९२६ में उन्होंने मूंछें निकाल दीं तब शिमले में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के अधिवेशन के समय शिमले की नारियों की ओर से एक शिष्टमण्डल उनसे इसीलिए मिला कि वे अपनी मूंछों से पुनः सहयोग करें। असहयोग के समय पंडितजी ने अपनी पश्चिमी वेशभूषा को छोड़ खादी का कुरता और धोती धारण करना आरम्भ किया। उस समय खादी वहुत अच्छी तो नहीं मिलती थी, परन्तु जो अच्छी से अच्छी खादी प्राप्त थी उस खादी के उनके वस्त्र होते थे। सन् १९२३ में स्वराज्य-पार्टी के नेता के रूप में उन्होंने जब केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में प्रवेश किया तब उनकी असहयोग वाली वेशभूषा भी उसी प्रकार वदल गयी जिस प्रकार असहयोग में आते ही पश्चिमी ढंग की वेशभूषा वदली थी। अव उन्होंने शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहनना प्रारम्भ किया जो वेशभूषा उनकी अन्त तक चलती रही।

मोतीलालजी में शाही शान और बुद्धिवादियों की शान दोनों का अनोखा मिश्रण था। वे अपने ज़माने में प्रयाग के हाई कोर्ट के दो सर्वोच्च वकीलों में थे। उस समय प्रयाग के हाई कोर्ट में सर सुन्दरलाल और पंडित मोतीलाल सर्वोच्च वकील माने जाते थे, दोनों की ही अन्धाधुन्ध आमदनी थी। पर अन्तर यह था कि सुन्दरलालजी अपनी आय का एक-एक पैसा संग्रह करते थे और मोतीलालजी उसे दोनों हाथों से उलीचते थे। आनन्द भवन की क्या रहन-सहन थी ? शायद वड़े से बड़े राजा-महाराजाओं की भी वैसी नहीं। इस रहन-सहन के कारण एकं कहावत-सी मशहूर हो गयी थी कि मोतीलालजी के कपड़े पेरिस से धुलकर आते हैं। उनके असहयोग में सम्मिलित होने के पश्चात् उनके त्याग का जो वर्णन किया जाता था उस वर्णन में यह बात अवश्य कही जाती थी। एक वार जब मैंने उनसे इस सम्बंध में पूछा तब वे ज़ोर से हंस पड़े और उन्होंने उसका जो उत्तर दिया वह मुझे अब तक याद है। उन्होंने कुछ इस प्रकार कहा था—"पेरिस कपड़े भेजकर उन्हें मंगाने में उतना ही खर्च पड़ता है जितना नये कपड़े बनाने में। इस दुनिया में हमेशा एक बात देखी जाती है कि जब हम किसी की बुराई पर उतरते हैं तब

उसकी कोई हद नहीं रखते। झूठी-सच्ची न जाने कितनी बातें उसकी बुराई में कहा करते हैं। यही बात तारीफ़ के मुताल्लिक हुआ करती है। जब हम किसी की तारीफ या कुर्बानी का जिक्र करते हैं तब उसकी भी कोई हद नहीं रखते।" उनकी शान का जो उनके जीवन पर कोई बुरा असर नहीं पड़ा, यह शायद इसलिए भी कि वे असहयोग में सम्मिलित हो गये, परन्तु उनकी बुद्धिवादी शान का उनके जीवन पर कुछ बुरा असर भी पड़े बिना नहीं रहा। दूसरों को तुच्छ समझना, बड़े से बड़े ज्ञान-सम्पन्न व्यक्ति का भी, यदि वह उनसे विरुद्ध राय रखता हो तो, अपमान कर देना, या उसकी खिल्ली उड़ा देना, इत्यादि बातें जो उनके जीवन में दीख पड़ती थीं, उनका एक कारण उनकी बुद्धिवादी शान भी थी। निसर्ग से उन्हें प्रखर स्वभाव मिला था। यह इसका एक कारण न हो यह नहीं पर बुद्धिवादी शान भी इसका एक कारण थी। मोतीलालजी के जो अनेक विरोधी थे उसकी यही वजह थी।

मोतीलालजी हमारे कुटुम्ब के वकील थे जबलपुर से इलाहाबाद बहुत निकट होने के कारण हमारे यहां के सभी छोटे-बड़े मामले कानूनी राय के लिए उनके पास जाते थे। चूंकि हमारे घर का काफ़ी बड़ा कारबार था इसलिए ये मामले भी काफ़ी हुआ करते थे। इसके सिवा मेरे पिताजी की और उनकी बहुत निकट की मैत्री थी। इसका कारण यह था कि अपने समय में जिस प्रकार मोतीलालजी बहुत बड़े शौकीनों में थे उसी प्रकार मेरे पिताजी भी। पिताजी तो अनेक बार उनकी भेंट के लिए इलाहाबाद जाते थे पर असहयोग आन्दोलन के पहले मैंने पंडितजी को जबलपुर आते कभी नहीं देखा।

सबसे पहले मैंने पंडितजी के दर्शन सन् १९११ के दिल्ली-दरबार में किये। मैं पिताजी के साथ उस दरबार में गया था। पिताजी मध्य प्रदेश के सबसे बड़े मालगुज़ार होने के कारण एक दरबारी के रूप में दरबार में गये थे और मोतीलालजी भी एक दरबारी के रूप में ही उस दरबार में आये थे। दरबार के अवसर पर दोनों की कैसी वेशभूषा थी, इसका मुझे अब तक वैसा का वैसा स्मरण है। पिताजी की पूर्वी ढंग की पोशाक थी—अंगरखा, उस पर सुनहरी काम का चोगा, चूड़ीदार पाजामा, सिर पर पगड़ी, पगड़ी पर जड़ाऊ सिरपेच और गले में हीरे-मोती कण्ठे। मोतीलालजी का दरबारी वेश पश्चिमी था। सिर पर विशेष प्रकार की बाल लगी हुई किश्तीनुमा टोपी, आगे को कटा हुआ छोटा कोट, घुटने पर बटन वाला चुस्त पाजामा और घुटने तक सफेद मौज़े, एक विशेष प्रकार के बकल वाले जूते, कमर में कमरपट्टा और बायीं तरफ क्रिच। मेरा जब पिताजी ने उनसे परिचय कराया, तब बड़े प्रेम से उन्होंने मुझे हृदय से लगाया।

इसके बाद मैंने उनके दर्शन सन् १९२० में किये, जब वे नागपुर कांग्रेस में जबलपुर होकर जा रहे थे। जो स्नेह मेरे प्रति उनका मैंने १९११ में देखा था, वही स्नेह इस बार भी। अब मैं युवक हो गया था, पर युवक होते हुए भी उन्होंने फिर एक बच्चे के सदृश्य मुझे हृदय से लगाया और इसके बाद तो मेरा उनका इसलिए निकट का सम्बंध हो गया कि उसके बाद मैं भी कांग्रेस में आ गया।

प्रयाग से नागपुर जाते हुए जबलपुर में वे सकुटुम्ब हमारे मेहमान हुए और फिर हमारी ही मोटरों पर नागपुर गये। उसी समय मैंने सर्वप्रथम जवाहरलालजी के तथा उनके कुटुम्बियों के दर्शन किये। मैंने उनका जो स्नेह प्राप्त किया वह उनके स्वर्गारोहण तक वैसा का वैसा मुझे प्राप्त रहा। राजनैतिक क्षेत्र में मेरा किसी भी राजनैतिक नेता से इतना निकटतम सम्बंध नहीं रहा जितना मोतीलालजी से। वे राजनैतिक क्षेत्र में मेरे सभी कुछ रहे। मेरे राजनैतिक क्षेत्र में आने का पंडितजी ने हार्दिक स्वागत किया, मेरे इस क्षेत्र में आने से मेरे पिताजी को जो भय और उद्विग्नता थी उसमें भी पंडितजी के कारण कुछ कमी हुई। स्वराज्य पार्टी में भी मैं मोतीलालजी के कारण ही आया और जब सन् १९२३ में स्वराज्य पार्टी का संगठन हुआ उस समय उन्हीं ने मुझे अखिल भारतीय स्वराज्य पार्टी का कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। पंडितजी का मेरे प्रति कितना स्नेह था इसे जबलपुर की जनता ने भी एक घटना से जाना। जब सन् १९३० में मैं पहली बार गिरफ्तार हुआ उस समय जवाहरलालजी के भी गिरफ्तार हो जाने पर, मोतीलाल

जी कांग्रेस के सभापति थे। वे मेरी गिरफ्तारी पर स्वयं जबलपुर आये। जबलपुर में मेरी गिरफ्तारी के बाद सत्याग्रह एकदम धीमा पड़ गया था। पंडितजी ने जबलपुर के कांग्रेस कार्यकर्ताओं की खूब भर्त्सना की और सार्वजनिक सभा में कहा कि "मैं अपने दो लड़के मानता हूं—एक जवाहरलाल और दूसरा गोविन्ददास।"

सन् १९२० के अन्त में कांग्रेस में आने के बाद मैं मोतीलालजी के इतने निकट सम्पर्क में रहा कि उस समय के राजनीतिक क्षेत्र में उनका कैसा अद्वितीय स्थान था, वह जिन गिनती के लोगों को व्यक्तिगत अनुभव से ज्ञात है, उसमें से मैं भी अपने को एक मानता हूं।

सार्वजनिक क्षेत्र में आने वाले चोटी के कार्यकर्त्ता और नेता दो प्रकार के रहे हैं—एक जिन्होंने अल्प अवस्था में ही सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया, जैसे लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि और दूसरे वे जो अपने-अपने जीवन-निर्वाह के क्षेत्र में ऊंचे से ऊंचे स्तर पर पहुंचने के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र में आए, जैसे पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री भूलाभाई देसाई आदि। मोतीलालजी का इलाहाबाद हाईकोर्ट में जो उच्चतम स्थान था उसने उन्हें देश के इस क्षेत्र का भी एक उच्चतम व्यक्ति बना दिया था। वे सन् १९१८ के पंजाब हत्याकाण्ड के समय अपनी परिपक्व अवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र में आये। कुछ लोगों का मत है कि यह पंडित जवाहरलाल नेहरू के कारण हुआ। जो कुछ हो चूंकि प्रदेश के एक उच्चतम व्यक्ति माने जाते थे, अतः सार्वजनिक क्षेत्र में आते ही पिछले जीवन में कोई महत्वपूर्ण सेवा न रहते हुए भी उनका राजनीतिक क्षेत्र में एक उच्चतम स्थान हो गया। पंजाब के हत्याकांड की जांच के लिए कांग्रेस ने जो समिति नियुक्त की उसमें मोतीलालजी भी एक सदस्य थे और मोतीलालजी का पिछला शाही जीवन होते हुए भी पंजाब की भीषण गर्मी में उन्होंने जिस कठिन परिश्रम से उस जांच के कार्य में योग दिया उसके कारण कांग्रेस का अधिवेशन सन् १९१९ में अमृतसर में हुआ उसके वे सभापति चुन लिये गये। उसके बाद ही असहयोग आन्दोलन आ गया। सन् १९२० के सितम्बर में जो कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ और जिसमें गांधीजी का असहयोग का कार्यक्रम स्वीकृत हो एक प्रकार से गांधीजी को देश के नेतृत्व की बागडोर दी गई क्योंकि उस समय लोकमान्य तिलक का निधन हो गया था, उस अवसर पर उच्चतम नेताओं में मोतीलालजी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने गांधीजी के अनुसरण की घोषणा की। इस प्रकार सन् १९१८ से १९३० तक यद्यपि बारह वर्ष के केवल एक युग में ही मोतीलालजी का प्रधान कार्य सीमित रहा, क्योंकि सन् १९३० में ही उनका देहावसान हो गया, परन्तु अपने उस एक युग के कार्य के कारण मोतीलालजी का उस युग में जो स्थान बना वह केवल गांधीजी से द्वितीय था, देशबन्धु की सन् १९२५ में मृत्यु के बाद, अन्य सब नेताओं से ऊंचा। इस बीच सन् १९२६ से १९२९ तक लगभग चार वर्ष का तो ऐसा समय भी आया जब मोतीलालजी ने गांधीजी को भी साबरमती में बिठा दिया था और गांधीजी के रहते हुए भी चार वर्ष तक देश का नेतृत्व किया था। इसका एक कारण और भी था—जवाहरलालजी की वजह से बापू का जितना निकट सम्बन्ध नेहरू कुटुम्ब से रहा उतना और किसी से नहीं।

अपने एक युग के सार्वजनिक जीवन के क्षेत्र का पंडित मोतीलालजी का कार्य दो प्रधान विभागों में बांटा जा सकता है। एक सन् १९२९ और १९३० के असहयोग तथा सत्याग्रह आन्दोलन का कार्य, जो उन्होंने गांधीजी के नेतृत्व में किया और दूसरा सन् १९२४ से १९२९ तक का कार्य, जो उन्होंने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में स्वराज्य दल और कांग्रेस दल के नेता के रूप में किया दोनों ही विभागों के उनके कार्य का ऐतिहासिक महत्व है। पर पहले विभाग के नेता रहे गांधीजी, मोतीलालजी का नेतृत्व दूसरे विभाग के कार्य में रहा।

केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में वे स्वराज्य दल और कांग्रेस दल के नेता ही न थे वरन् कांग्रेस के सबसे बड़े दल होने के कारण विरोधी दल के भी नेता थे। उस समय की कांग्रेस व्यवस्थापिका सभा में

देश के कुछ नेताओं को छोड़ जैसे गांधीजी, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्री वल्लभभाई पटेल, पंडित जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस, डा० राजेन्द्र प्रसाद, श्री राजगोपालचारी इत्यादि शेष सारे गण्यमान्य नेता व्यवस्थापिका सभा में पहुंच गये थे। इनमें प्रमुख थे महामना पंडित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, श्री श्रीनिवास आयंगर, श्री मुहम्मद अली जिन्ना, श्री विट्ठलभाई पटेल, श्री जयकर आदि। अंग्रेज सरकार के भी बड़े-बड़े लोग वहां मौजूद थे बहस का स्तर बड़ा ऊंचा था। साधारण बात कहने की अपेक्षा लोग चुप रहना ही श्रेयस्कर मानते थे। मैं सन् १९२३ में ही केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में चला गया था।

जो भारतीय नेता केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में थे उनमें पं० मोतीलालजी का स्थान सबसे ऊंचा था। यह इसलिए नहीं कि वे वहां के सबसे अच्छे वक्ता थे। उस समय की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में कई वक्ता मोतीलालजी से अच्छे थे, परन्तु जो व्यक्तित्व मोतीलालजी का था वह अन्य किसी का नहीं। फिर वे कांग्रेस दल के नेता थे जो दल अन्य सभी दलों से बड़ा था। पर उस समय की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में मोतीलालजी का सर्वोच्च स्थान होने पर भी कांग्रेस दल में उनके अनेक कट्टर विरोधी भी थे; यह उनके प्रखर स्वभाव और बुद्धिवादी शान के कारण, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। लेकिन पंडितजी इसकी तनिक भी परवाह न करते थे।

कांग्रेस दल में कुछ व्यक्तियों के साथ उनका व्यवहार भी अनेक बार उनके विरोध का बड़ा कारण हो जाता था। यह उनके उसी प्रखर स्वभाव और बुद्धिवादी शान की वजह से। इस सम्बंध में भी अनेक घटनाएं हो जाया करती थीं। दृष्टान्त के लिए एक घटना लिख रहा हूं। कांग्रेस दल के उस समय मन्त्री थे उड़ीसा के श्री नीलकण्ठदास। नीलकण्ठदास के रहन-सहन में स्वच्छता का थोड़ा अभाव रहा करता था। एक दिन शिमले में वे पंडितजी से मिलने पहुंचे। मैं भी वहीं था, नीलकण्ठजी पंडितजी के निकट की कुर्सी पर बैठ गये। नीलकण्ठदासजी के कुछ लम्बी सी दाढ़ी थी। कुछ ही देर बाद नाक सिकोड़ते हुए पंडितजी बोले, "नीलकण्ठदास, कभी-कभी तो दाढ़ी में साबुन लगा लिया करो, बदबू आ रही है तुम्हारी दाढ़ी से।"

मोतीलालजी अनेक बार ऐसी बातों का परिमार्जन भी करने का प्रयत्न करते रहते थे, जैसा जवाहरलालजी किया करते हैं।

मुझ पर पंडितजी का जैसा स्नेह था ऊपर कुछ वर्णन आ गया है। पर उनके प्रखर स्वभाव के कारण एक बार मुझसे भी उनका एक छोटा-सा झगड़ा हो गया। स्वराज्य पार्टी सन् १९२४ में व्यवस्थापिका सभाओं में पहुंची थी। गांधीजी उस समय जेल में थे। सन् १९२४ में गांधीजी अपैण्डीसाइटिस के आपरेशन के कारण जेल से छूटे और जब वे बम्बई के निकट जुहू में स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे उस समय देशबन्धुदास और मोतीलालजी स्वराज्य पार्टी के कार्य के लिए आशीर्वाद लेने जुहू पहुंचे। कौंसिल के कार्यक्रम पर समझौता न होने के कारण गांधीजी का उस समय स्वराज्य पार्टी को समर्थन प्राप्त न हो सका और देशबन्धु तथा मोतीलालजी जुहू से लौट आये। उसी समय भारत के इस्पात उद्योग को सहायता देने के लिये एक विधेयक पर विचार करने को केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का एक विशेष अधिवेशन शिमले में बुलाया गया। पंडितजी शिमले पहुंचे और हम लोग भी। उस समय स्वराज्य दल के लोग गांधीजी से अप्रसन्न हो गये थे। पंडितजी भी गांधीजी से प्रसन्न नहीं थे। नागपुर के डाक्टर मुंजे ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया कि मध्य प्रदेश में इस समय कोई भी कांग्रेसजन गांधीजी का अनुसरण करने को तैयार नहीं है। मैं यद्यपि स्वराज्य दल की ओर से केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का सदस्य था और मोतीलालजी से मेरा निकटतम सम्बन्ध भी था, परन्तु मैं राजनीतिक क्षेत्र में आया तो था गांधीजी से प्रेरित होकर। अतः मैंने डाक्टर मुंजे के इस वक्तव्य का खण्डन कर एक दूसरा वक्तव्य निकाला कि डाक्टर मुंजे मध्य प्रदेश में नागपुर अथवा मराठी भाषा-भाषी क्षेत्र के लिए चाहे कुछ कहने का अधिकार रखते

हों, पर मध्य प्रदेश के हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के सम्बन्ध में उन्हें कुछ कहने का अधिकार नहीं है और हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में आज भी गांधीजी का वैसा ही अनुसरण है जैसा पहले था। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की बैठक का अधिवेशन जिस दिन समाप्त हुआ उसके दूसरे दिन मेरा यह वक्तव्य पत्रों में निकला। गर्मी का मौसम था, अतः शिमले से हम लोग कुछ दिन के लिए सोलन आये। पंडितजी भी सोलन आये और पटने के श्री डाक्टर सच्चिदानन्दसिंह की सोलन की कोठी में ठहरे। सदा के समान मैं वहां पडितजी से मिलने गया। लिखने की मेज़ के सामने की कुर्सी पर बैठे हुए पंडितजी कुछ लिख रहे थे। मेरे पहुंचने पर मुझे आंख उठाकर देख तो लिया, पर न मेरे प्रणाम का उत्तर दिया और न मुझे बैठने को ही कहा। मैं बड़े असमंजस में चुपचाप खड़ा रहा क्योंकि पंडितजी ने तब तक कभी भी मुझसे वैसा व्यवहार न किया था कुछ देर बाद जब पंडितजी का लिखना समाप्त हुआ तब पास में रखे हुए एक अखबार को ज़ोर से ज़मीन पर पटकते हुए अत्यधिक क्रोध से उन्होंने कुछ इस प्रकार कहा—"यह आपका स्टेटमैण्ट है, सी० पी० क्या हिन्दुस्तान भर में इस वक्त गांधीजी के साथ कोई नहीं है। मैं इस बात को बिलकुल बेजा समझता हूं कि स्वराज्य पार्टी के दो मैम्बर एक-दूसरे के खिलाफ इस तरह के स्टेटमैण्ट दें।" इसके पहिले पंडितजी ने कभी मुझसे 'तुम' के सिवा 'आप' नहीं कहा था। वे फिर से कुछ लिखने में लग गये। मैं कुछ देर तक तो खड़ा रहा फिर उन्हें प्रणाम कर लौट पड़ा। न उन्होंने मेरे प्रणाम का उत्तर दिया और न मुझे रोका ही। उस दिन मैं जितना क्षुब्ध और दुःखी था उतना जीवन में शायद कम बार रहा होऊंगा। पंडितजी दूसरे ही दिन सोलन छोड़ रहे थे। मेरा भी सोलन में मन न लगा और मैं भी जबलपुर लौट आया। जबलपुर लौटते ही मैंने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा से स्वराज्य दल के कोषाध्यक्ष पद से और स्वराज्य दल की सदस्यता से त्यागपत्र लिखकर रजिस्ट्री से पंडितजी को भेज दिया। व्यवस्थापिका सभा से वाइसराय को सीधा इस्तीफा तो मैं स्वराज्य दल के सदस्य होने के कारण भेज न सकता था, वह नेता की मार्फ़त ही भेजा जा सकता था। मध्य प्रदेश की विधान सभा में और बंगाल की विधान सभा में उस समय स्वराज्य दल का बहुमत था और स्वराज्य दल के उस समय के कार्यक्रम के अनुसार उस समय भारतवर्ष में केवल इन्हीं दो प्रदेशों में मंत्रिमंडल नहीं बने थे। बंगाल की विधान सभा में देशबन्धुदास स्वराज्य दल के नेता के रूप में स्वयं मौजूद थे। मध्य प्रदेश की विधान सभा के स्वराज्य दल का काम देखने कभी-कभी पंडितजी नागपुर जाया करते थे। उनका जाना जबलपुर होकर होता था। वे प्रयाग से जबलपुर आते थे। उस समय गोविन्द भवन नामक हमारी जो एक कोठी थी, वहां ठहरते थे और हमारी मोटर में ही नागपुर जाकर वापस जबलपुर लौट प्रयाग चले जाते थे। सोलन से मेरे जबलपुर पहुंचने के कुछ ही दिन बाद पंडितजी का तार मिला कि वे जबलपुर आ रहे हैं। मैंने सोचा कि पंडितजी नागपुर जा रहे होंगे। अतः उनके जबलपुर में ठहराने और नागपुर जाने की सारी व्यवस्था कर मैं उन्हें लेने के लिए स्टेशन पहुंचा। चाहे मैंने उपर्युक्त इस्तीफ़े भेज दिये हों पर पंडितजी जबलपुर आवें मुझे तार देवें और मैं उनकी सारी व्यवस्था न करूं, यह कैसे सम्भव था। जब ट्रेन जबलपुर स्टेशन पर पहुंची पंडितजी अपने फर्स्ट क्लास के डिब्बे के फ़ाटक पर खड़े हो गये। मैंने प्रणाम किया। उस प्रणाम के उत्तर में जो कुछ उन्होंने कहा वह अब भी मुझे जैसा का तैसा याद है। वे बोले—"मुझे देखकर भी तुम्हारी खफ़गी दूर हुई या नहीं ?" मेरी खफ़गी दूर नहीं हुई थीं। अतः मैंने उनसे कुछ इस प्रकार कहा—"पंडितजी, अभी तो आप चाय लेकर नागपुर हो आइए। लौटने पर बातें करूंगा।" पंडितजी ने तुरन्त कहा—"मैं नागपुर जाने के लिए नहीं आया हूं।" मैंने आश्चर्य से केवल एक शब्द कहा, "तो?" पंडितजी ने फौरन उत्तर दिया—"तुम्हें मनाने आया हूं।" मैं एक भावुक व्यक्ति हूं। मेरी आंखों में आंसू आ गये। पडितजी अपने डिब्बे से उतर सदा के समान मुझे हृदय से लगाया और मेरे इस्तीफ़ों को फाड़कर फेंक दिया उस दिन, दिन भर पंडितजी जबलपुर रहे। मेरे पिताजी से मिले और मेरी बड़ी लम्बी-चौड़ी शिकायत उनसे कर यह कहा कि "क्या मुझे गोविन्ददास पर नाराज़ होने का हक़ नहीं है ?" रात को वे वापस प्रयाग लौट गये।

सन् १९२६ के चुनावों के बाद किसी भी प्रान्त में कांग्रेस का बहुमत नहीं हो पाया। केन्द्र में पंडित मोतीलालजी क़रीब-क़रीब उतने ही सदस्यों को लेकर पहुंचे जितने सन् १९२३ के चुनाव में लेकर गये थे। इस बार मद्रास में एक नये व्यक्तित्व का उदय हुआ था। ये थे एस. श्रीनिवास आयंगर। कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन के बाद गौहाटी में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसके श्री आयंगर ही सभापति थे आयंगर मद्रास से इस चुनाव में केन्द्रीय असेम्बली के लिए कांग्रेस की ओर से जो व्यक्ति खड़े किये गए थे। उनमें अधिकतर सफल हुए थे। इसका श्रेय बहुत दूर तक श्री आयंगर को था।

इस चुनाव के बाद केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेस दल की जो पहली बैठक दल के पदाधिकारियों के चुनने के लिए हुई उसमें एक बड़ी दिलचस्प घटना घटी। चूंकि श्री श्रीनिवास आयंगर उस समय कांग्रेस के सभापति थे और दक्षिणी भारत के सबसे बड़े प्रधान व्यक्ति, इसलिए इनके मन में मोतीलालजी को नेतृत्व से हटा स्वयं कांग्रेस दल के नेता होने की महत्त्वाकांक्षा की उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने पक्ष में कुछ सदस्यों का गुट बनाया और इसके प्रमुख नेता चुने गये बिहार के एक मुस्लिम सदस्य श्री शफी दाउदी।

पदाधिकारियों के चुनाव के लिए कांग्रेस दल की इस बैठक में केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य के साथ कौंसिल ऑफ़ स्टेट के सदस्य भी दल के संविधान के अनुसार उपस्थित थे। मैं भी था। उस समय जो कुछ हुआ, वह आज भी मुझे जैसा का तैसा याद है।

श्री शफी दाउदी साहब ने कुछ इस प्रकार कहा—"कांग्रेस पार्टी का लीडर और दूसरे ओहदेदार भी ऐसे शख्स होने चाहिएं जो गांधीजी के तमाम उसूलों पर अमल करते हों, शराब न पीते हों, विलायती कपड़े का रोज़गार……

उन्हें बीच में रोक कर मोतीलालजी ने कुछ इस तरह कहा, "दाउदी साहब, आप घुमा-फिराकर बात क्यों करते हैं, साफ़-साफ़ क्यों नहीं फ़रमाते कि मैं शराब पीता हूं इसलिए मैं लीडर न चूना जाऊं। सुन लीजिए आप और सब साहबान, मैं ज़रूर शराब पीता हूं, लुका-छिपाकर नहीं, सबके ज़ाहिरा में। गांधीजी को यह सब मालूम है। इस सारे वजूहात जानने के बाद आप लोगों को सात दफ़ा ग़रज़ हो तो मुझे लीडर चुनिए नहीं तो हरगिज़ नहीं।"

पंडितजी के इस भाषण से उस बैठक में जैसा सन्नाटा छाया था उसे मैं अब तक भी नहीं भूल पाया हूं। श्री आयंगर महोदय के सारे प्रयत्न के लिए इस भाषण ने वही काम किया जो एक देहाती कहावत कहती है—"सौ सुनार की और एक लुहार की।" मोतीलालजी के सिवा नेतृत्व के लिए कोई और नाम प्रस्तावित ही नहीं हुआ और वे सर्वमत से फिर कांग्रेस दल के नेता निर्वाचित हुए।

पंडितजी से सम्बन्ध रखने वाली मुझसे सम्बन्धित एक और घटना का मुझे स्मरण है। इस घटना के कारण पंडितजी का मुझ पर कुछ अधिक विश्वास हो गया था। सन् १९२९ के अन्त में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसके सभापति पंडित जवाहरलालजी चुने गये। उस समय कांग्रेस के दो कोषाध्यक्ष थे, सेठ जमनालालजी और काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त। गुप्तजी कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के समय विलायत में थे। एक दिन बातों ही बातों में मोतीलालजी ने मुझसे कहा कि "अब तुम्हें कांग्रेस का ट्रेज़रर होना है।" मैंने इतना ही उत्तर दिया कि "मैं तो, जिस काम की भी आज्ञा आप देंगे वह करने को तैयार हूं।" कांग्रेस अधिवेशन समाप्त होने के एक दिन पहले पंडितजी ने मुझे बुलाया और कुछ असमंजस की मुद्रा में एक केबिल मेरे सामने रख दिया। यह केबिल विलायत से शिवप्रसादजी ने भेजा था कि वे कांग्रस के अपने कोषाध्यक्ष पद पर आगे भी बने रहना चाहते हैं। मैं वह केबिल पढ़ते ही पंडितजी की उस मुद्रा का कारण समझ गया; मैंने तत्काल पंडितजी को कहा—"पंडितजी, आप गुप्तजी को कोषाध्यक्ष रहने दें। इस सम्बन्ध में किसी असमंजस की आवश्यकता नहीं है।" पंडितजी कुछ गद्गद् से हो गए।

ऐसा था महान् गुणों और कुछ दोषों से मुक्त पंडित मोतीलाल नेहरू का उस काल का अद्वितीय व्यक्तित्व। जिस प्रकार चन्द्रमा में उसके प्रकाश के कारण उसके दोष छिप जाते हैं उसी प्रकार पंडितजी के महान् गुणों के सम्मुख थे वे क्वचित् दोष।

सज्जन पुरुष

राम स्वामी मुदलियार

पंडित मोतीलाल नेहरू स्वभाव से सज्जन पुरुष थे। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व को देखकर प्राचीन काल के रोमन पुरुषों की याद आ जाती थी। उनके कंधे पर पड़ा शाल रोम के गौरवपूर्ण दिनों में सीनेटर लोग जो चोगा धारण करते थे, उसकी सहज याद दिलाता था। मैंने विरोधी दल के नेता के रूप में उनके भाषण सुने हैं। वे जब सरकार की तीखी आलोचना करने लगते थे, विशेष रूप से वे जब स्वराज्य की ज़ोरदार मांग पेश करते थे तो प्रत्येक भारतीय की नसों में एक सिहरन-सी दौड़ जाती थी। वह बड़े ही दयालु पुरुष थे और उन दिनों मुझ-जैसे नवयुवकों को उनसे बहुत प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। १९२० से १९३० तक मैं और स्व० वड़मुखम चेट्टी उनकी कृपा के विशेष पात्र रहे। उन्होंने हम दोनों को बड़ा प्रोत्साहन प्रदान किया। मैं कांग्रेस का सदस्य भी नहीं था, फिर भी उन्होंने मुझ पर जो कृपा की तथा मुझे जो भारी प्रोत्साहन प्रदान किया, उसके लिए मैं उनका बहुत आभारी हूं।

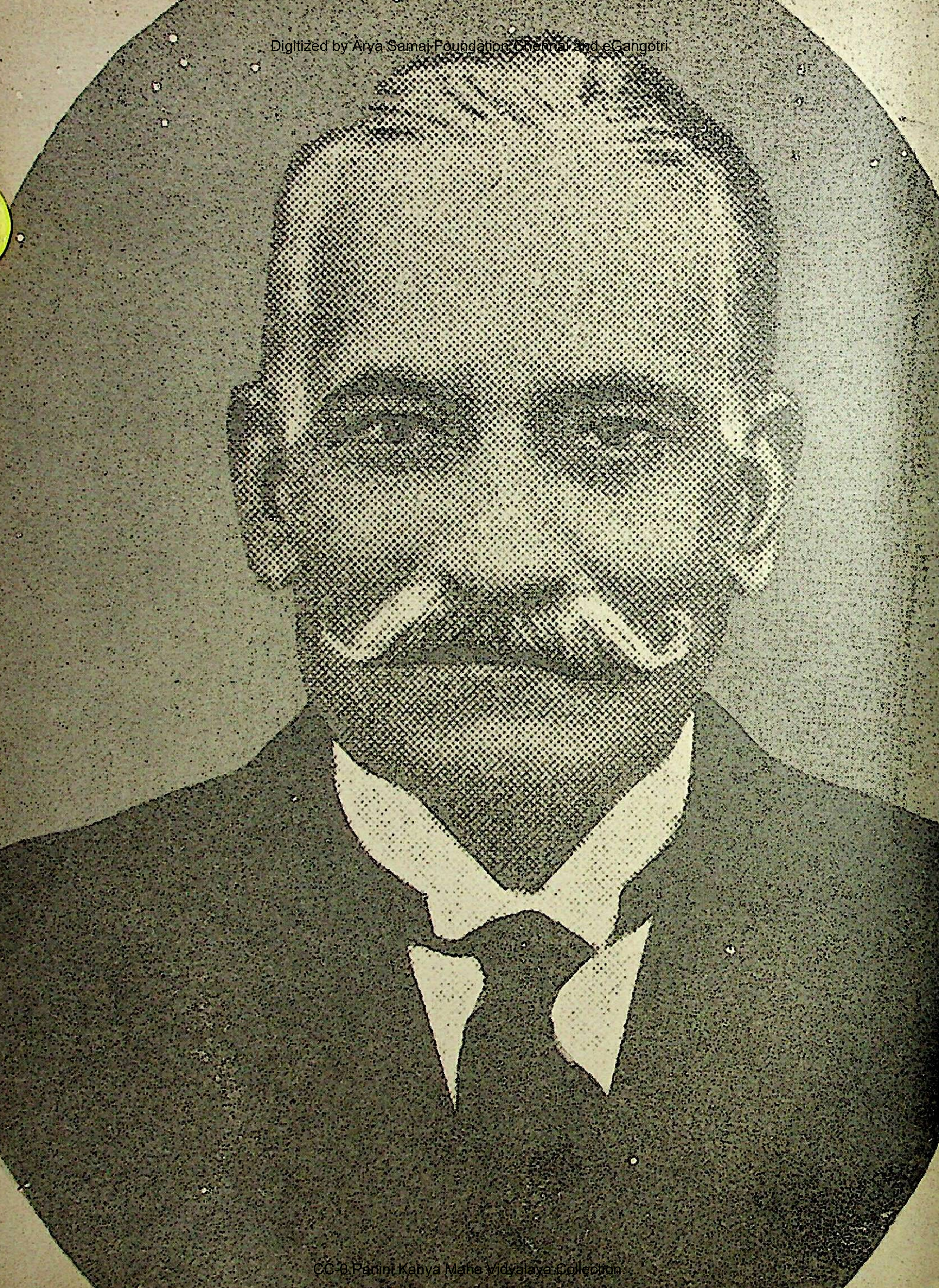

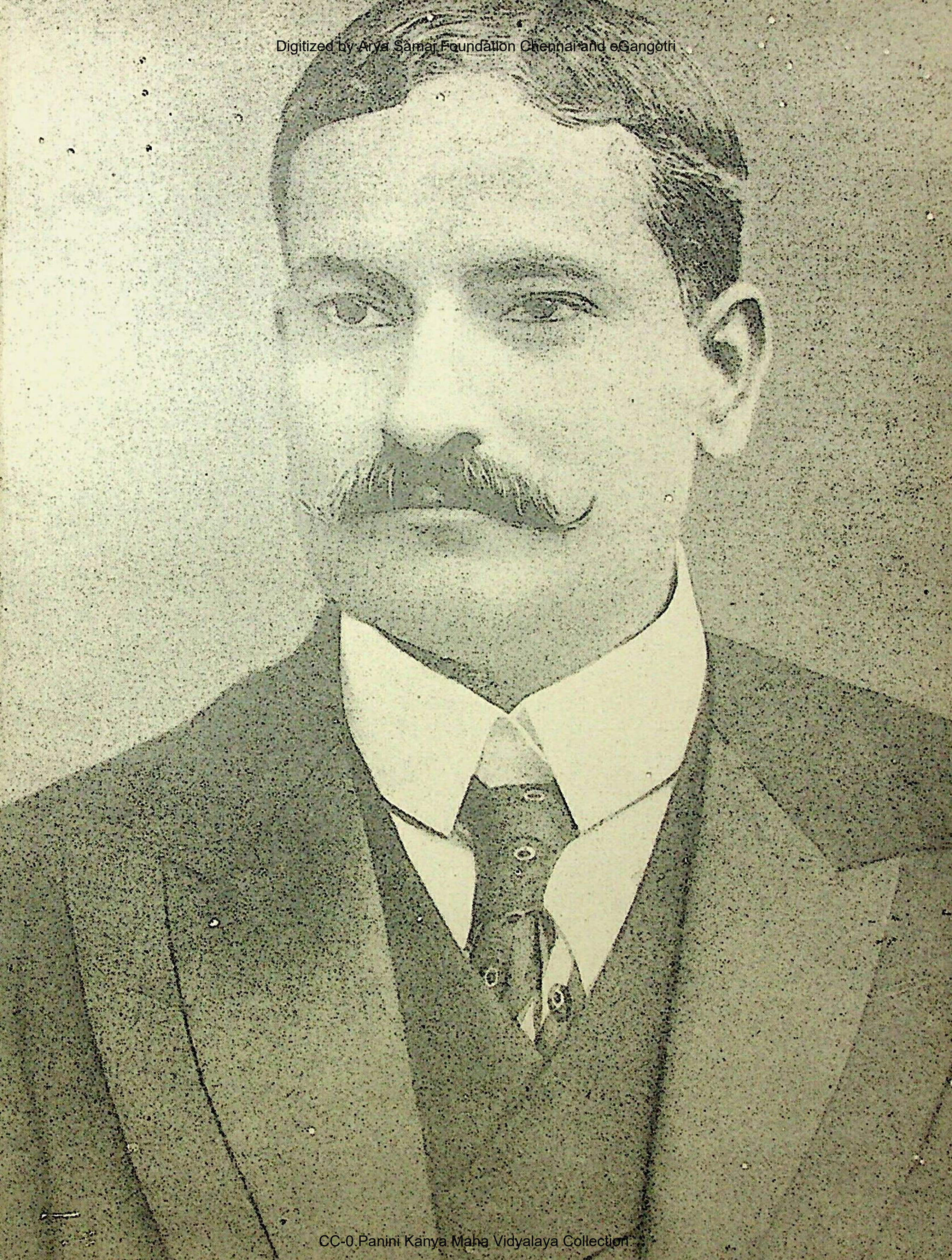

वे दिन

लालजी मेहरोत्रा

मुझे बहुत ही छोटी अवस्था में पंडित मोतीलाल नेहरू के निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। यह मेरा परम सौभाग्य था, क्योंकि उनकी जैसी ऊँची हैसियत तथा प्रसिद्ध व्यक्ति के निकट सम्पर्क में आना तो दूर, उनसे जान-पहचान होने के लिए लम्बे सेवाकाल की आवश्यकता पड़ती है। मेरे लिए तो ऐसा हुआ जैसे कोई थोड़े से बीज छिड़ककर भरी-पूरी लहलहाती फसल काट ले। मैं उस समय युवक था और मेरी बुद्धि कच्ची मिट्टी के समान किसी भी सांचे में ढाली जा सकती थी। मेरा वर्तमान जीवन से लबालब भरा हुआ था और भविष्य आशा से परिपूर्ण था। उन दिनों उनका जो निकट सम्पर्क मुझे प्राप्त हुआ, उसका मेरे मन पर अमिट प्रभाव पड़ा।

मैं प्रयाग विश्वविद्यालय से बी. ए. पास कर चुका था। इंडियन सिविल सर्विस के लिए भारतीय विद्यार्थियों का चुनाव करने वाली कोटा कमेटी द्वारा मैं चुना जा चुका था और दो महीने बाद भारत में होने वाली उसकी पहली प्रतियोगात्मक परीक्षा में बैठने वाला था। इसी बीच देश में बड़ी-बड़ी घटनाएं घटीं, जिनसे सारे राष्ट्र की आत्मा हिल उठी। कांग्रेस ने प्रिंस ऑफ वेल्स की यात्रा का बायकाट करने का नारा दिया। सारा देश असाधारण उत्साह के साथ कांग्रेस के साथ हो गया। सरकार ने अपना लोह-दमन-चक्र चलाया, परन्तु इससे विरोध की लहर दबने के बजाय और प्रबल हो गई। हज़ारों आदमी शान्ति भाव से जेल चले गए।

वैभवपूर्ण जीवन

जेल जाने वालों में पंडित मोतीलाल नेहरू प्रमुख थे, जिनका जीवन पिछले कई दशकों से, बच्चों और बूढ़ों सबके लिए राजसी ठाठ-बाट और सांसारिक वैभव का प्रतीक बन गया था उन्होंने विदेशी वस्त्र त्याग कर खादी का बाना धारण कर लिया था। इससे पहले उनके विदेशी वस्त्र जिस समय अल्मारियों से निकालकर बाहर होली में जलाने के लिए ले जाए जा रहे थे, उस समय हम उन्हें देख चुके थे। विदेशी वस्त्रों की वह होली राष्ट्र का धन लंकाशायर को जाने से रोकने के दृढ़ निश्चय का प्रतीक थी। वह अहिंसा के सैनिकों को दीक्षित करो का एक साधन थी। आनन्द भवन का वह दृश्य अत्यन्त प्रभावशाली था। बड़े-बड़े कमरों में अनेक प्रकार के विदेशी वस्त्रों का ढेर लगा था। एक कमरे में कीमती सूटों का ढेर लगा था। दूसरे में खूबसूरत कमीज़ों और नेकटाइयों का। तीसरे में जूतों और मोज़ों का बहुत बड़ा ढेर था। सारे नगर में इसकी चर्चा थी। कई दिनों तक यह देखने के लिए दर्शकों का तांता लगा रहा कि पैसे से क्या नहीं खरीदा जा सकता और इच्छाशक्ति से क्या नहीं त्यागा जा सकता। मुझे अच्छी तरह याद है कि दर्शक लोग जब एक कमरे से दूसरे कमरे में घूम-घूमकर इन कीमती विदेशी कपड़ों के ढेर को देखते थे तो चकित रह जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे किसी छोटे से सूराख से किसी राजकुमार के वैभवपूर्ण जीवन की झांकी देख रहे हों।

मेरा जीवन एक अबूझ पहेली बन चुका था। यद्यपि मैं सरकार के 'लौह ढांचे' का एक हिस्सा बनने जा रहा था, परन्तु मेरे अंदर विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने की इतनी प्रबल प्रेरणा उठी कि मैं उन्हें त्याग कर खादीधारी बन गया था। मेरे साथी विद्यार्थी मेरा मज़ाक़ उड़ाते थे। कॉलेज से प्रका-

शित होने वाले एक साप्ताहिक पत्रिका में हास्य-व्यंग्य के कालमों में मेरे अन्तरविरोध की यह कह कर खिल्ली उड़ाई गई थी कि "यह सप्ताह में ६ दिन महात्मा गांधी की जयकार बोलते हैं और रविवार को 'गाड सेव दि किंग' अलापते हैं।" मेरे अन्दर का संघर्ष कुछ दिन चलता रहा। परन्तु, मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू की गिरफ्तारी ने मेरी जीवनधारा बदल दी। एक शाम मैं चुपचाप आनन्द भवन पहुंचा, जो अपने स्वामी की अनुपस्थिति में श्रीविहीन लगता था और श्री महादेव देसाई से, जो उन दिनों पंडित मोतीलाल नेहरू के अंग्रेज़ी दैनिक 'इंडिपेन्डेन्ट' का सम्पादन कर रहे थे, तय किया कि मैं इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा में नहीं बैठूंगा और विश्वविद्यालय का जीवन त्याग कर पत्र के सम्पादकीय विभाग में काम करूंगा। इस प्रकार मुझे आनन्द भवन में एक कोना प्राप्त हो गया। पंडित मोतीलाल नेहरू जो विद्या और बुद्धि के सागर थे, उनके निकट सम्पर्क में आने की इच्छा इतनी बलवती थी कि मैं उसका प्रतिरोध नहीं कर सका। विश्वविद्यालय के छात्रावास से मैं आनन्द भवन चला आया।

लखनऊ जेल में

उस समय यशस्वी पिता और पुत्र तथा नेहरू-परिवार के अन्य सदस्य तथा स्वतंत्रता-संग्राम के अनेक मंजे हुए सेनानी लखनऊ ज़िला जेल में थे। एक-दो बार मुझे कुछ संदेश लेकर उनसे मिलने के लिए जेल भेजा गया। एक बार मैं जब जेल के फाटक पर पहुंचा तो मुलाक़ात का समय समाप्त हो चुका था। अधिकारियों ने बताया कि अब मुलाक़ात का वक्त नहीं रहा। मैंने युवकोचित उद्धतता से कहा कि मैं पंडित मोतीलाल नेहरू से मिलने आया हूं। किसी ऐसे-वैसे आदमी से नहीं। मैं तभी वापस जाऊंगा जब वह मुझसे मिलने से इनकार कर देंगे और किसी की इनकारी से मैं वापस नहीं लौटूंगा। मैंने जो नाम लिया वह इतना प्रभावशाली था कि ज़ेलर इनकार नहीं कर सके और मैं उनके सामने ले जाया गया। मैं जिस संदेश को लेकर आया था, वह उन्हें दिया। वह इतना महत्वपूर्ण था कि सलाह-मशविरा की आवश्यकता पड़ी। जवाहरलालजी, टंडनजी और कुछ अन्य नेता फौरन इकट्ठा हो गए और उनके सामने सब बातें रखी गईं। उस पर क्या उत्तर दिया जाए, इस पर विचार-विमर्श हुआ। जो उत्तर सुझाया गया, उससे टंडनजी सहमत नहीं प्रतीत होते थे, परन्तु मोतीलालजी का व्यक्तित्व इतना तेजस्वी था कि कुछ ही मिनटों में विरोध समाप्त हो गया।

मोतीलालजी को अपने ६ महीने की सजा की पूरी अवधि तक जेल में रहना पड़ा, किन्तु जवाहरलालजी मुकदमे में कुछ कानूनी त्रुटि के कारण कुछ महीने के बाद रिहा कर दिए गए। परन्तु, उस युवक-नेता से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि जेल से बाहर निकलने पर वह शान्ति से बैठ जाएंगे। जेल से छूटते ही वह फिर आन्दोलन में कूद पड़े और कुछ हफ्ते बाद पुनः गिरफ्तार कर लिये गए। उस समय तक 'इंडिपेण्डेण्ट' का सामान्य प्रकाशन बन्द हो चुका था और सरकार का विरोध करने के उद्देश्य से उसी नाम से एक हस्तलिखित पत्र निकाला जाता था। श्री महादेव देसाई जेल जा चुके थे और उनका स्थान देवदास गांधी, प्यारेलाल नैयर और मैंने ले लिया था। जवाहरलालजी बीच में जब कुछ दिनों के लिए छूटकर आए तो सरकार का व्यापक रूप से विरोध करने के उद्देश्य से विदेशी कपड़ों का बायकाट, दफा १४४ का उल्लंघन आदि भी शुरू किया गया। मेरे लिए यह प्रशिक्षण तथा परीक्षा का बड़ा उपयोगी काल सिद्ध हुआ। जब पंडित मोतीलालजी अपनी पूरी सजा काटकर जेल से बाहर आए तो जवाहरलालजी ने सिफारिश की कि वे मुझे अपना ऑनरेरी-सेक्रेटरी बना लें। इस प्रकार मेरे जीवन के सबसे महत्वपूर्ण एवं सुखद अध्याय का श्रीगणेश हुआ।

मोतीलालजी में एक महान् पुरुष के सभी गुण विद्यमान थे। उनमें बादशाहों-जैसी शान-शौकत थी, एक मंजे हुए वकील की भांति उनका दिमाग़ सुलझा हुआ था तथा एक राजनीतिज्ञ की सारी सूझ-बूझ और निपुणता तथा एक सच्चे देशभक्त की दुर्दमनीय इच्छाशक्ति तथा आग उनके अन्दर मौजूद थी।

श्री सी. वाई. चिन्तामणि ने, जो लिबरल पार्टी के एक नेता तथा द्वैध शासन के दिनों में युक्त प्रांतीय मंत्रिमंडल के सदस्य होने के साथ-साथ उच्चकोटि के विद्वान् तथा पंडित मोतीलालजी के प्रख्यात विरोधी थे, एक बार मुझसे पूछा कि आपके विचार में भारतीय राजनीतिज्ञों में सबसे सुलझी बुद्धि वाला नेता कौन है ? मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए विना उन्होंने स्वयं कहा—पंडित मोतीलाल नेहरू ।

ज़िन्दादिली

मोतीलालजी केवल शुष्क बुद्धिवादी न थे, उनमें ज़िन्दादिली और विनोदप्रियता भरी हुई थी। यह सर्वविदित था कि वे जहां भी होते थे, वह स्थान उनकी हंसी से गूंज उठता था। वह मज़ाक करने में किसी को छोड़ते न थे, यहां तक कि अपने को भी नहीं छोड़ते थे। ऐसे बहुत थोड़े लोग होते हैं जो अपने ऊपर किए गए मज़ाक में रस ले सकें। पंडित मोतीलालजी की गिनती इन थोड़े व्यक्तियों में की जाएगी। प्रथम जेल-यात्रा से जब वे वापस लौटे तो इलाहाबाद हाईकोर्ट के तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश सर ग्रिमवुड नियर्स ने उनको खाने पर बुलाया। सर ग्रिमवुड ने अपने निमंत्रण-पत्र में लिखा कि मैं इस बात की परवाह नहीं करता कि मेरा मेहमान अपने राजनीतिक विचारों में उग्रवादी है अथवा उदारवादी। इस पर पंडित मोतीलालजी ने उत्तर दिया, "आपने लिखा है कि आपको इस बात की परवाह नहीं कि मैं अपने राजनीतिक विचारों में उग्रवादी हूं अथवा उदारवादी। किन्तु, आप शायद यह भूल गए कि मेरे नाम के साथ अब एक नया पुंछल्ला जुड़ गया है। मैं अब एक भूतपूर्व सजायाफ्ता हूं। मैं नहीं जानता कि प्रधान न्यायाधिपति की हैसियत से आपने इस पर भी विचार कर लिया है या नहीं कि आप एक भूतपूर्व सजायाफ्ता को खाने के लिए बुला रहे हैं।"

१९२३ में कौंसिल प्रवेश के प्रश्न पर कांग्रेस नेताओं में गहरी फूट पड़ गई : गांधीजी उस समय तक जेल में थे : हकीम अजमल खां की अध्यक्षता में बनी सत्याग्रह जांच समिति ने सिफारिश की थी कि कौंसिलों में कांग्रेसजनों के प्रवेश पर रोक हटा ली जाए, ताकि कौंसिलों के अन्दर असहयोग का मोर्चा जमाया जा सके। परन्तु, गया कांग्रेस में यह सिफारिश अस्वीकार कर दी गई। देशबन्धु चित्तरंजन दास और पंडित मोतीलाल नेहरू प्रगतिशील दल के नेता थे, जो परिवर्तनवादी कहा जाता था। श्री राजगोपालाचारी विरोधी गुट के नेता थे। गया कांग्रेस में राजाजी कट्टरवादी गुट के प्रमुख वक्ता मान लिये गए, जो अपने को गांधीजी का सच्चा अनुयायी मानता था। परिवर्तनवादी मोतीलालजी की दृष्टि में राजाजी का नाम संयमी, पवित्रतावादी, शाकाहारी आदि विशेषणों से जुड़ा हुआ था। आनन्द भवन में दो रसोईखाने चलते थे। एक परिवार के शाकाहारी सदस्यों के लिए था, जिनमें हमारे प्रधानमंत्री की मां और उनकी बड़ी बहन सम्मिलित थीं। दूसरा मांसाहारियों के लिए था। मैं शाकाहारी होने के कारण पहले रसोईखाने का भोजन खाता था। एक बार हम सब दोपहर का खाना खाने बैठे। सब अतिथियों को और मेजबान को खाना परोस दिया गया, परन्तु मैं शाकाहारी रसोईखाने से अपना थाल आने का इंतज़ार करता रहा। देशबन्धु दास को आश्चर्य हुआ कि मैं मेज़ पर बैठा हुआ हूं और खा नहीं रहा हूं। उन्होंने मुझसे पूछा कि किस चीज़ का इंतज़ार है ? इस पर पंडित मोतीलालजी मज़ाक करने से न चूके। वे मेरे और राजाजी के ऊपर एक साथ व्यंग्य करते हुए बोले, "क्या बताऊं, दास। यह नौजवान पैदा तो हुआ एक अच्छे-खासे खत्री परिवार में (जो प्रायः मांसाहारी होते हैं) परन्तु हम लोगों को छोड़कर राजाजी का चेला हो गया है।"

मोतीलालजी की विनोदप्रियता उनके जीवन के अन्तिम दिनों में भी बनी रही। उनकी अन्तिम बीमारी के समय उनका इलाज लखनऊ में हो रहा था। डाक्टर ने उन्हें मालिश कराने की सलाह दी थी। मालिश करने के लिए एक ऐंग्लोइंडियन सज्जन आते थे, जिनका नाम आस्टिन था। मालिश करने वालों का जैसा क़ायदा होता है, आस्टिन साहब मालिश करते वक्त मोतीलालजी से तरह-तरह की बातें

करके उनका मनोरंजन किया करते थे। उस महापुरुष की मृत्यु होने से तीन दिन पहले की बात है। मोतीलालजी ने अचानक अपने मालिश करने वाले की तरफ मुड़कर पूछा, "मिस्टर आस्टिन, एक बात तो बताइए। आप के पास कितनी बेबी आस्टिनें हैं।" उनकी प्राणघाती बीमारी भी उनकी ज़िन्दादिली को नहीं खत्म कर पाई थी।

अदब क़ायदे के पाबन्द

पंडित मोतीलाल नेहरू को किसी प्रकार के भोंडेपन अथवा अशिष्ट व्यवहार से बड़ी चिढ़ थी। वे जीवन की छोटी-छोटी बातों पर भी बहुत ध्यान देते थे और सदैव सतर्क रहते थे कि उनके आसपास का कोई व्यक्ति शिष्टाचार की सीमाएं लांघने न पाए। मुझे इसका अनुभव एक रेलवे-यात्रा के दौरान हुआ। वह उत्तरी भारत का दौरा कर रहे थे। रेल पर ही तीसरे पहर की चाय आई। जिस समय चाय आई वह मुझे कुछ लिखा रहे थे। मैं इस जल्दी में था कि अपनी चाय जल्दी से खत्म कर डालूं ताकि लिखने में बाधा न पड़े। इसलिए उन दिनों के कालेज के लड़कों की तरह मैंने चाय को ठंडा करने के लिए उसे तश्तरी में उंडेल लिया। पंडित मोतीलाल ने दूर से ही देख लिया और डांट कर कहा, 'ऐ लड़के! यह क़ायदा कहां से सीखा। सभ्य समाज में चाय पीने का यह क़ायदा नहीं है।" मैं चौक पड़ा और अपने भोंडेपन पर झेंप गया। परन्तु उन्होंने ज़ोर का ठहाका लगाकर मेरी झेंप मिटा दी। किन्तु इसके बाद ही मुझे उनकी दूसरी डांट खानी पड़ी। मुझसे उन्होंने एक चैक लिखने के लिए कहा। जैसा कि उन दिनों रिवाज़ था और आज भी है कि चैक पर धनराशि लिखने के बाद 'ओनली' (मात्र) शब्द लगा देते हैं, वैसा मैंने भी किया। इस पर उन्होंने हँस कर कहा कि वकालत का शरीफाना पेशा छोड़कर रोज़गार में जाना चाहते हो। मैं देखता हूं कि तुमने छोटे-छोटे रोज़गारियों की गैर-शरीफाना आदतें भी सीख ली हैं, जो रुपये-पैसे के मामले में किसी पर भरोसा करना नहीं जानते। एक शरीफ आदमी को दिखा देना चाहिए कि वह सारी दुनिया पर भरोसा करता है और रुपये-पैसे को उतनी ही अहमियत देता है, जितनी उसे दी जानी चाहिए।

तरह-तरह के शौंक

मोतीलालजी में तरह-तरह के शौंक थे। वे अच्छे भोजन के बड़े प्रेमी थे और भारतीय पाक-कला के विशेषज्ञ थे। वह अपने इकमिक कुकर पर अपने छोटे-मोटे प्रयोग किया करते थे। इन प्रयोगों में चुकंदर का सबसे अधिक उपयोग करते थे एक बार मैंने उन्हें वर्षा के जल से पीने के लिए पानी इकट्ठा करते हुए देखा। वह नागपुर का दौरा कर रहे थे। बरसात की शुरुआत के दिन थे। उन दिनों नागपुर में बड़ी उमस रहती है। गर्मी इतनी अधिक रहती है कि भीतर सोया नहीं जा सकता। और जब-तक पानी बरसने के कारण बाहर सोना मुमकिन नहीं होता। उन दिनों नागपुर का वातावरण (राजनीति तथा स्वास्थ्य दोनों की दृष्टि से) अच्छा नहीं था। नगर में जो पानी आ रहा था, वह दूषित समझा जाता था। इसी समय जोरों की वर्षा होने लगी। मोतीलालजी ने एक वैज्ञानिक की भांति वर्षा का पानी पीने के हेतु, इकट्ठा करने के लिए एक सफ़ेद चादर तानी। उस चादर को जिन डोरियों से बांधा गया था, उनको अच्छी तरह से साफ करके कीटाणु-रहित कर दिया गया था। चादर के बीच में एक गुम्मा रख दिया गया था, ताकि उसके बोझ से चादर के बीच में झोल आ जाए और वहीं से सारा पानी छन कर नीचे आ जाए। उस गुम्मे को भी साबुन के पानी से कई बार धो दिया गया था। इस विधि से वर्षा का पानी काफी मात्रा में इकठ्ठा कर लिया गया, जो नागपुर में दो दिन के प्रवास के लिए बहुत काफ़ी था।

खादी आंदोलन के शुरू के दिनों में जो खादी तैयार होती थी, वह बड़ी मोटी और भारी होती थी। उसका अर्ज़ बहुत छोटा होने तथा मोटी और भारी होने के कारण उसकी धोती नहीं बन पाती थी।

परन्तु और कोई दूसरा चारा न था। एक सामान्य धोती के लिए जितने अर्ज़ की आवश्यकता होती है उतने अर्ज़ की खादी तैयार नहीं होती थी। ऐसी सूरत में क्या उपाय निकाला जाए। मोतीलालजी की सूझ-बूझ के लिए यह एक बड़ी चुनौती थी। उन्होंने ६ इंच की एक बड़ी चौड़ी पट्टी कँटवा कर उसमें सिलवा दी यह पट्टी फेंटे में आ जाती थी। इस प्रकार समस्या का हल निकल आया और बाद में बहुत से लोगों ने इस तरह की धोतियां बनवा लीं। उन्होंने यात्रा के लिए एक उठौवा कमोड भी बनवाया। इसकी डिज़ाइन इस तरह तैयार की गई थी कि इसको फोल्डिंग कुर्सियों की तरह तहाया जा सकता था। उस वक्त इसकी शक्ल लकड़ी के एक कैश बक्स जैसी हो जाती थी। दक्षिण भारत के दौरे के समय कई बार ऐसा हुआ कि मैंने इस बक्से को नहाने के कमरे में रखने का आदेश दिया, परन्तु स्वयंसेवक लोग इसको लाकर मेरे बक्सों के साथ रख देते थे। वे समझते थे कि मैंने शायद ग़लती से वैसा आदेश दिया, क्योंकि कैश-बक्स को भला सेक्रेटरी को छोड़कर और किसकी निगरानी में रखा जा सकता है। मुझे उस बक्स को यथास्थान रखवाने के लिए स्वयंसेवकों को काफ़ी समझाना-बुझाना पड़ता था।

अजेय व्यक्तित्व

मोतीलालजी केवल सुरुचि-सम्पन्न व्यक्ति ही नहीं थे, उनकी चाल-ढाल में एक शहनशाहियत थी। वह कभी पराजय स्वीकार नहीं करते थे उन्होंने विपदाओं के सामने सिर झुकाना सीखा नहीं था। अपने जीवन-काल में उन्होंने लाखों रुपये कमाए और लाखों रुपये खर्च कर डाले। वे धन संग्रह करना नहीं जानते थे। उन्हें अपने ऊपर इतना भरोसा था कि उन्हें पैसा जमा करने की कोई आवश्यकता नहीं अनुभव होती थी वह सोचते थे कि उन्हें जब कितने पैसे की आवश्यकता होगी वह कमा लेंगे। इसीलिए उन्होंने जब वकालत त्याग दी (वह उनकी आमदनी का जरिया था) तो उन्हें तक़लीफ उठानी पड़ी। यदि आमदनी का स्रोत बंद हो जाय तो खर्च चलाने में मुश्किल पैदा होना स्वाभाविक है। फिर वह राजसी तबीयत के आदमी थे। वे अपना खर्च एक सीमा के नीचे नहीं घटा सकते थे। एक उद्योगपति ने उन्हें आर्थिक सहायता देनी चाही, परन्तु उन्होंने उसे लेना मंजूर नहीं किया। उद्योगपति ने एक सामान्य मित्र को लिखा, "मोतीलालजी आजकल परेशानी में हैं। मैंने उन्हें सहायता देनी चाही, परन्तु, आप जानते हैं कि वह सिंह के समान है। सिंह लोग लंघन भले कर जाएं, परन्तु, वह कभी घास-पात पर नहीं गिरते।"

महान् आत्मा

इसमें संदेह नहीं कि मोतीलालजी का व्यक्तित्व अत्यन्त तेजस्वी था, उनकी व्यवहार-बुद्धि बड़ी प्रखर थी, वे राजनीतिक शतरंज के एक चतुर खिलाड़ी थे, तथा उन्होंने एक चोटी के मंजे हुए वकील का आला दिमाग़ पाया था, परन्तु इन सबसे ऊपर उनके हृदय में स्नेह की अजस्र धारा बहती थी। वे भाग्य में विश्वास करते थे। उनका विश्वास था कि प्रकृति मनुष्य को जिन परिस्थितियों में पैदा करती है उनमें उसको जीवित ही नहीं रहने बल्कि फलने-फूलने की भी शक्ति प्रदान करती है। श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित का जब पहला बच्चा होने वाला था तो उनकी बड़ी देखभाल की गई और सब तरह की हिफाजत बरती गई। देश में जो चोटी के डॉक्टर मुहैया हो सकते थे वे बुलाए गए। इस सब देखभाल के बावजूद उनको 'सेप्टिक' (ज़हर छिड़क जाना) हो गया और एक सप्ताह तक वह मृत्यु और जीवन के पलड़े में झूलती रहीं। बंबई के डा० पुराण्ड्रे उस समय के सबसे प्रमुख जच्चा-बच्चा विशेषज्ञ माने जाते थे। वे उनकी जीवन-रक्षा के लिए अपनी जान लड़ाए हुए थे। मुझे यह दृश्य अच्छी तरह याद है। पंडित मोतीलालजी अपने अध्ययन-कक्ष में टहल रहे थे और दार्शनिकों-जैसे शांत तटस्थ भाव से एक-दूसरे बच्चे की जन्म-कथा सुना रहे थे आनन्द भवन के बगल की ज़मीन पर वे एक नई कोठी बनवा रहे थे। उसके लिए बहुत से मज़दूर ३-३, ४-४ मील की दूरी से गांवों से आते थे। वे रोज़ाना पैदल आते थे। उनमें

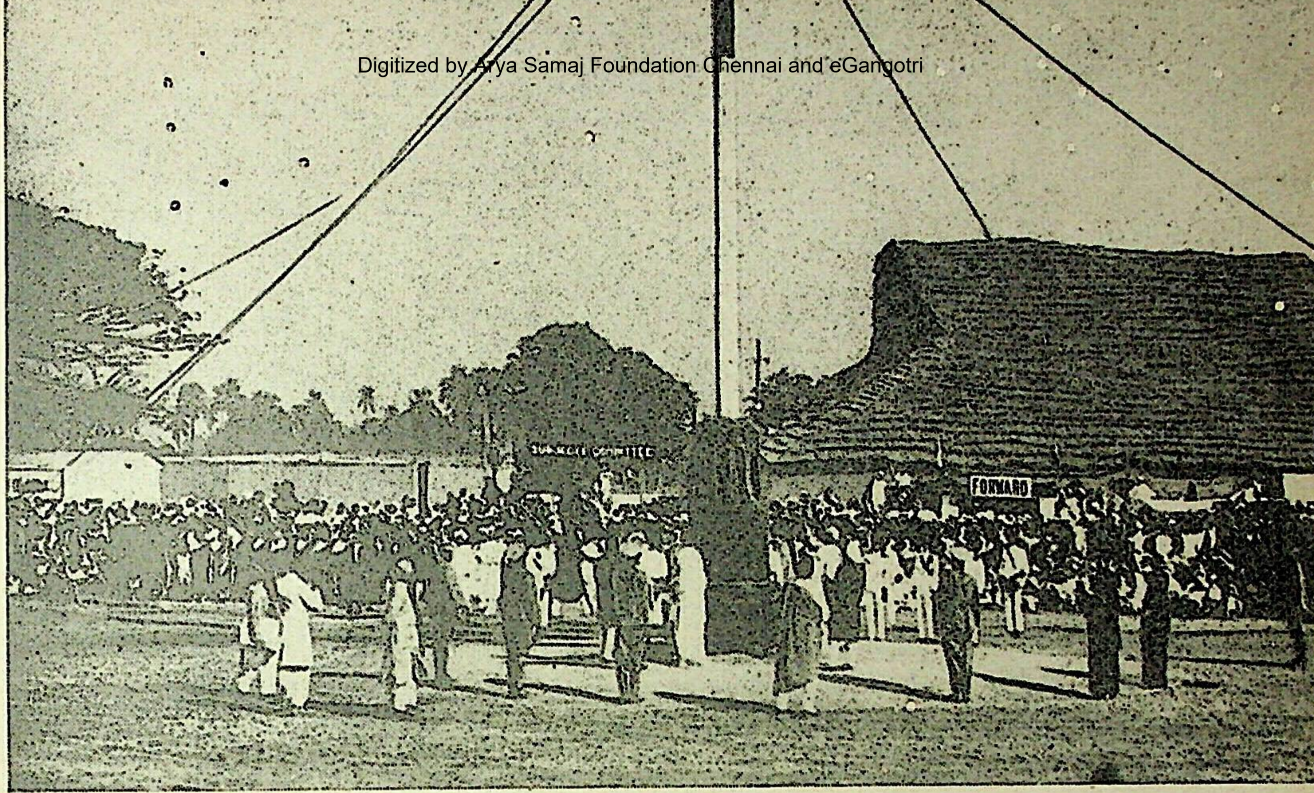

कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन १९२८, ध्वजोत्तोलन करते हुए

एक गर्भिणी स्त्री भी थी। एक दिन काम खत्म होने से पहले ही, वह घर लौट भी नहीं पाई थी कि उसके बच्चा हो गया। जाड़े के दिन थे। वह रात में वहीं नये बन रहे मकान की ईंटों और चूने-गारे के ढेर के पास पड़ी रही। दूसरे दिन वह अपने बच्चे को गोद में लेकर अपने गांव चली गई। आरोग्य-शास्त्र में सभी नियमों की अवहेलना करके जच्चा और बच्चा पूर्णतया कुशल रहे। पंडित मोतीलालजी ने कहा, "आप भाग्य के सिवाय हमें और क्या कहेंगे।"

देश के स्वाधीनता-संग्राम में जिन लोगों ने प्रमुख भाग लिया और भारत की महानतम परंपराओं का सजीव उदाहरण प्रस्तुत किया, उनमें पंडित मोतीलाल नेहरू का अप्रतिम स्थान है और उनकी स्मृति को काल कभी मिटा नहीं सकेगा।

महान् राजनीतिज्ञ

सच्चिदानन्द सिन्हा

स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू के साथ लगभग ३५ वर्षों (१८९६ से १९३१) तक अपने घनिष्ठ और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध को मैं अपने जीवन का परम. सौभाग्य मानता हूं। जब मैं उनसे पहली बार (नवम्बर १८९६ में) इलाहाबाद में मिला तो वे अपने जीवन के ३५वें वर्ष में प्रवेश कर रहे थे। वे उस समय के एक चोटी के वकील तथा प्रमुख व्यक्ति माने जाते थे।

प्रारम्भिक जीवन

वे मई १८६१ में आगरा में पैदा हुए थे। उन्होंने हाई स्कूल तक कानपुर में और उसके बाद इलाहाबाद के म्योर सेन्ट्रल कॉलेज में शिक्षा पाई, किन्तु उन्होंने बी० ए० की डिग्री नहीं हासिल की। इस तरह इन्टरमिडिएट परीक्षा पास करने के बाद वे इलाहाबाद हाईकोर्ट की कानून की परीक्षा में बैठे और १८८३ में पास होनेवाले विद्यार्थियों में प्रथम आये, और कानपुर में वकालत शुरू कर दी। उनके बड़े भाई, पंडित नन्दलाल उस समय इलाहाबाद के बड़े वकीलों में गिने जाते थे। १८८६ में उनकी मृत्यु हो जाने पर, मोतीलाल इलाहाबाद हाइकोर्ट में चले आये। अत्यधिक योग्य व कुशल वकील होने के कारण उन्होंने शीघ्र ही अपने भाई का स्थान ग्रहण कर लिया। १८९६ में (अर्थात् हाईकोर्ट में वकालत शुरू करने के १० वर्ष बाद ही) प्रधान न्यायधीश और उनके साथी न्यायाधीशों ने पंडित मोतीलाल को एडवोकेट मनोनीत कर दिया, इस प्रकार उनका दर्जा वस्तुतः ब्रिटिश या आयरिश बॉर एसोसिएशन के सदस्यों के समकक्ष हो गया।,

अपने प्रारम्भिक जीवन में ही मोतीलाल ने रहन-सहन का पश्चिमी तौर-तरीका अपना लिया था। जिस समय मैं उनसे पहली बार मिला, उस समय वे इलाहाबाद के सामाजिक क्षेत्र में प्रमुखतम व्यक्तियों में गिने जाते थे। इलाहाबाद में बसने के (नवम्बर १८९६ में) कुछ दिन बाद ही, मैं गंभीर रूप से मलेरिया बुखार से ग्रस्त हो गया। इसी मलेरिया बुखार के कारण मुझे बिहार में अपनी वकालत छोड़ने और उत्तर प्रदेश की तत्कालीन राजधानी की अपेक्षाकृत स्वास्थ्यप्रद जलवायु में आकर बसने को मजबूर होना पड़ा था। बुखार उतर जाने के बाद स्वभावतः कई दिन तक कमज़ोरी व सुस्ती बनी रही।

सबसे बढ़िया "टॉनिक"

मेरा इलाज करने वाले डाक्टर ने समय-समय पर मुझे कई टॉनिक खाने के लिए बताए, परन्तु उनसे मुझमें जितनी चुस्ती आनी चाहिए थी, उतनी न आ सकी। इससे आजिज़ आकर उन्होंने एक दिन कहा, "अब मैं आपको अपने खज़ाने का सबसे बढ़िया टॉनिक बता रहा हूं। और अगर उससे भी फ़ायदा नहीं हुआ तो मैं आपके लिए कुछ नहीं कर सकूंगा, पर मुझे भरोसा है कि मैं नाकामयाब नहीं होऊंगा, क्योंकि अब तक ऐसा कभी नहीं हुआ कि फ़ायदा न हुआ हो।" मैंने उनसे पूछा, "आपने पहले वह टॉनिक क्यों नहीं बताया।" उन्होंने जवाब दिया, "बात यह है कि वह कल ही आये हैं। इससे पहले वह मिल नहीं सकते थे।" मैंने पूछा, "डाक्टर साहब, आपका मतलब क्या है? वह टॉनिक दवाई है या कोई आदमी।" डाक्टर ने कहा, 'मेरी बात से स्पष्ट है कि वह आदमी है।" मैंने पूछा, "बताइए तो वह कौन

है।" डाक्टर ने कहा, "उनका नाम है पंडित मोतीलाल नेहरू।" निश्चय ही मैंने यह नाम पहले सुन रखा था और तन्दुरुस्त होने के बाद उनसे मिलने की सोच रहा था। पर जिस तरह डाक्टर ने उनको "अपने खज़ाने का सबसे बड़ा टॉनिक" बताया, उससे स्वाभावतः मेरी उत्सुकता बढ़ गई और मैंने उनसे तुरन्त पंडित मोतीलाल के पास ले चलने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, "दो दिन रुकिये, ताकि पंडित मोतीलाल अपना काम-काज निपटा कर सामान्य ढर्रे पर आ जाएं। वे हाईकोर्ट की लम्बी छुट्टियों में दो माह बाहर रहकर, अभी-अभी लौटे हैं।

डाक्टर जल्दी ही एक शाम को मुझे मोतीलाल के पास ले गए। मैं उस समय जिस मकान में रहता था, वह मोतीलाल के उस समय के मकान के ठीक पीछे था। इसके कई साल बाद वे अपने विख्यात 'आनन्द भवन' में गए, जिसे बाद में उन्होंने कांग्रेस को अपना प्रधान कार्यालय बनाने के लिए दे दिया। पंडितजी ने मेरा बहुत स्नेह से स्वागत किया और उनके व्यवहार से शीघ्र ही मुझे ऐसा अनुभव होने लगा जैसे मैं अपने घर में हूं। आध घन्टे बाद मुझे ऐसा लगने लगा, जैसे मैं जीवन-भर से उनसे परिचित हूं। तब तक रात के खाने का समय हो चुका था, इसलिए मैं उनसे विदा लेने के लिए उठ खड़ा हुआ, पर उन्होंने जोर दिया कि हम दोनों साथ बैठकर खाना खाएंगे। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने नौकर को हुक्म दिया कि मेरे घर मेरा जो खाना बना हो वह जाकर ले आए। और इस तरह जो भी भोजन तैयार था उसे ही हम एक साथ खाने बैठ गए। उस शाम को हमनिवाला बनने के बाद जिस दोस्ती की बुनियाद पड़ी, वह फरवरी, १९३१ में उनकी मृत्यु तक कायम रही। इस लम्बी अवधि में, कुछ राजनीतिक मतभेदों के बावजूद, ज्यों-ज्यों हमारी उम्र ढलती गई यह दोस्ती बढ़ती गई और (उनकी ओर से) जीवन-पर्यन्त बनी रही। उस समय और उसके बाद अनेक वर्षों तक, वस्तुतः ५० वर्ष की उम्र पार कर जाने तक, वे बहुत ही खूबसूरत और आकर्ष दिखाई पड़ते थे। उनका व्यवहार बहुत ही सौम्य था, और वे सुदृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति थे। उनकी खूबसूरती बुढ़ापे में भी कायम रही। एक जर्मन पत्रकार ने, जो उनसे मिला था, एक जर्मन पत्रिका में उनके बारे में लिखा था, "पंडित मोतीलाल जब अपना सुनहरा चश्मा और खद्दर की टोपी उतार देते हैं वे बिलकुल प्राचीन रोमनों की भांति प्रतीत होते हैं। वह हाथ का कता-बुना ऊनी शाल प्राचीन रोमनों के चोगे की तरह धारण करते हैं, और जब वह अपना सुडौल दाहिना हाथ उठाते हैं तो ऐसा लगता है जैसे वे मुसोलिनी को प्राचीन रोमन ढंग से सलाम करने का सही तरीका सिखा सकते हैं। जब तक आप यह जानने की कोशिश न करें कि वे किस ढंग के आदमी हैं तब तक उनकी उपस्थिति तथा शिष्टाचार आप को मंत्रमुग्ध कर देता है।

एडवोकेट

मोतीलाल निश्चय ही भारत के सबसे बड़े एडवोकेटों में थे। मैं यह, उनके साथ काम करने और कलकत्ता, इलाहाबाद तथा पटना हाईकोर्ट में बड़े-से-बड़े ब्रिटिश तथा भारतीय एडवोकेटों को कुछ मुकदमों की पैरवी करते हुए देखने के बाद कह रहा हूं। इलाहाबाद हाईकोर्ट में अपनी दस साल की वकालत के दौरान में मुझे उनकी बहस सुनने का कई बार मौका मिला और मैं उन्हें बहुत ऊंचे दर्जे का एडवोकेट मानता हूं। वे अदालत में न केवल धारा-प्रवाह अंग्रेज़ी में और अपने मुकदमे के बारे में पूर्ण जानकारी के साथ, बल्कि बहुत ही ललित तथा आकर्षक ढग से बहस करते थे। किन्तु, बाद में उन्हें जो कटु अनुभव हुए तथा विविध प्रादेशिक सरकारों ने उनके साथ जो अनुचित व्यवहार किया और अन्त में उन्हें अनेक बार जेल भी जाना पड़ा, उससे ब्रिटिश सम्बन्धों के प्रति उनके हृदय में कटुता पैदा हो गई और जीवन के अन्तिम दिनों में वे देश में ब्रिटिश शासन के सबसे कट्टर शत्रु बन गए। जो भी हो, पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में केन्द्रीय असेम्बली में 'विरोधी दल के नेता' के रूप में जो तेजस्विता दिखाई, वह अभूतपूर्व थी। केन्द्रीय असेम्बली में वह सबसे अधिक चमकते थे। उनके आगे सरकारी बैंच

के बहुत ही कुशल तथा अनुभवी प्रशासक भी फीके जचते थे। वे बहुत अच्छे भाषणकर्त्ता अथवा बहस करने वाले (उदाहरण के लिए गोखले-जैसी ऊंचे दर्जे के बहस करने वाले) नहीं थे, पर उनमें एक महान् राजनीतिज्ञ तथा पार्टी के नेता के सभी गुण थे। अपने आकर्षक तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण वे असेम्बली में जितने दिनों रहे, उतने दिनों सब पर छाए रहे। राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं सामाजिक क्षेत्र में भी वे सर्वाधिक लोकप्रिय थे।

अन्य विशेषताएं

बौद्धिक पक्ष में मोतीलाल की सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषताएं थीं—उनकी विवेकशीलता, मस्तिष्क का सन्तुलन, अत्यधिक व्यवहारकुशलता और सबसे बढ़कर समयानुकूल कार्य करने की सूझ। भावनात्मक पक्ष में उनकी उल्लेखनीय विशेषताएं थीं—देशभक्ति और आत्मत्याग। वे हृदय में कटुता की भावना लाए बिना ही कड़ी चोट कर सकते थे और करते थे, पर साथ ही विरोधियों द्वारा की गई वैसी ही कड़ी चोटों को भूल भी सकते थे और क्षमा भी कर सकते थे। उनमें और सर तेजबहादुर सप्रू में वर्षों तीव्र राजनीतिक मतभेद चलते रहे, फिर भी नेहरू-कमेटी और सर्वदल सम्मेलन में उन्होंने उनके साथ हार्दिक सहयोग से काम किया। इसी तरह लाला लाजपतराय के स्वराज्य-पार्टी से अलग होने के बाद उनमें और लाला लाजपतराय में ज़ोरों की चली। दोनों ओर से तीखे आरोप-प्रत्यारोप हुए, पर कुछ महीनों बाद ही दोनों सबसे अच्छे मित्र व सहयोगी बन गए। जब उन्होंने और सी० आर० दास ने कांग्रेस के कट्टरपन्थी असहयोगवादियों से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया, तो 'अपरिवर्तनवादियों' ने उनकी कड़े-से-कड़े शब्दों में भर्त्सना की, पर जब मिल-जुलकर काम करने का समय आया तो उन्हें यह सब भुलाने में ज़रा भी कठिनाई नहीं हुई। मोतीलाल के शिक्षाप्रद और प्रेरणादायक जीवन से आज के कांग्रेसजन यह महान् शिक्षा ग्रहण करके बहुत लाभ उठा सकते हैं।

> मेरे लिए जीवन जीने योग्य नहीं होगा, यदि हमारा हर शब्द हमेशा न्याय की तराजू पर न तोला गया हो।
>
> —मोतीलाल नेहरू

दृढ़ संकल्पों के व्यक्ति

एम० एस० अणे

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक पंडित मोतीलाल नेहरू का बड़ा सम्मान करते थे, हालांकि उनका झुकाव नरमदल की ओर था, जो मेहता, गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि के नेतृत्व में संगठित हुआ था, जबकि लोकमान्य तिलक गरमदल वालों के नेता समझे जाते थे।

लोकमान्य तिलक कहा करते थे कि मोतीलाल खुला दिमाग़ रखते हैं, उनमें किसी विचार के प्रति हठधर्मिता और किसी व्यक्ति में अन्ध-भक्ति नहीं है। मोतीलाल नेहरू के प्रति उनके आदर व सम्मान का एक सुन्दर उदाहरण मुझे याद है। १९१८ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन दिल्ली में हुआ। तिलक इस महत्त्वपूर्ण अधिवेशन को सफल बनाने के लिए मोतीलाल नेहरू की प्रतिभा का उपयोग करने को उत्सुक थे। उन्होंने महाराष्ट्र के अपने कतिपय महत्त्वपूर्ण सहयोगियों से निजी बातचीत में इस अधिवेशन के अध्यक्ष-पद के लिए उनका नाम प्रस्तावित किया। किन्तु सारे देश में यह सम्मान लोकमान्य तिलक को प्रदान करने के पक्ष में ज़बर्दस्त भावना थी। परन्तु तिलक वेलेन्टाइन शिरोल के खिलाफ़ मान-हानि का मुक़दमा दायर कर चुके थे। और उसकी पैरवी के लिए लन्दन जाने वाले थे। वे इस मसले पर विचार करने के लिए बुलाई गई कांग्रेस कमेटी की बैठक के कुछ दिन पहले ही भारत से रवाना हो गए। कांग्रेस कमेटी ने सर्वसम्मति से तिलक को दिल्ली के विशेष अधिवेशन का अध्यक्ष चुना और उन्हें तार से इसकी सूचना दे दी गई। तार उन्हें, अगर मैं भूलता नहीं, तो स्वेज़ में मिला। तिलक ने इस महान् सम्मान को धन्यवाद-सहित अस्वीकार कर दिया। इसके साथ उन्होंने महाराष्ट्र के अपने मित्रों को इस उच्च पद के लिए पंडित मोतीलाल नेहरू का नाम प्रस्तावित करने का सुझाव दिया।

इस सुझाव के अनुसार तिलक के दाहिने हाथ, जी० एस० खापर्डे ने अध्यक्ष-पद के लिए पंडित मोतीलाल नेहरू का नाम प्रस्तावित कर दिया, पर डाक्टर एनी बीसेन्ट के स्थान पर पं० मदनमोहन मालवीय का नाम रखा। इस कारण तिलक के मित्रों ने कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव यथासम्भव सर्वसम्मति से करने की परम्परा को बनाए रखने के लिए अपने प्रस्ताव पर ज़ोर नहीं दिया।

किन्तु अगले वर्ष पंडित मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन के अध्यक्ष चुन लिये गए।

पंडित मोतीलाल नेहरू का सारे देश में सम्मान किया जाता था। वे भारत के चोटी के वकीलों में गिने जाते थे। वे आनन्द भवन में आलिमों और विद्वानों की शाही मेहमानदारी करने के लिए विख्यात थे। वे अत्यन्त सुरुचिपूर्ण व्यक्ति थे और ललित कलाओं के बहुत बड़े प्रेमी और संरक्षक थे।

सूरत की फूट के बाद महत्त्वपूर्ण अवसरों पर विचार-विमर्श के लिए कांग्रेसजन उनके घर पर मिलते थे और नरम दल के सदस्यों ने कई दिनों तक आनन्द भवन में ही मिलकर कांग्रेस के संविधान की रूप-रेखा तैयार की। इस सबके बावजूद, मैं यह कह सकता हूं कि मोतीलाल जी उस समय भारत की राजनीतिक घटनाओं में वस्तुतः भाग लेने के बजाय उसका सावधानी से निरीक्षण कर रहे थे।

राजनीति में प्रवेश

जब तक जलियांवाला बाग के अत्याचारों ने सारे देश को हिला नहीं दिया, तब तक पंडित मोतीलाल नेहरू की मुख्य दिलचस्पी अपने वकालत के पेशे में ही रही। मुख्य रूप से वे महात्मा गांधी द्वारा

चलाए गए असहयोग-आंदोलन के क्रांतिकारी रूप की ओर तथा महात्माजी के आकर्षक व्यक्तित्व की ओर खिंचे । महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने के बाद वे दिन-ब-दिन राजनीतिक क्षेत्र में अधिकाधिक खिंचते चले आए, अन्ततः आत्मत्याग का वह महान् दिन आ पहुंचा जब उन्होंने एडवोकेट का चोगा उतार फेंका और जीवन-भर के लिए खादी का बाना धारण कर लिया ।

१९१९ में अमृतसर कांग्रेस के अध्यक्ष-पद का कठिन भार उन्होंने जिस गरिमा तथा विवेकशीलता से सम्हाला, उससे यह स्पष्ट हो गया कि देश का भाग्य-निर्माण उन जैसे राजनीतिज्ञों के हाथ में है ।

अमृतसर कांग्रेस का अधिवेशन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था । देश में भारी उत्तेजना फैली हुई थी । महात्मा गांधी और लोकमान्य तिलक में मतभेद था और वह मतभेद मान्टफोर्ड सुधारों और उनके सम्बन्ध में कांग्रेस का क्या रुख हो, इस प्रश्न को लेकर स्पष्ट रूप में प्रकट किया जा रहा था । मोतीलाल नेहरू ऐसा फार्मूला निकालने में सफल हुए, जिससे विरोधी दृष्टिकोणों में समंजस्य स्थापित हो सका । उन्होंने दोनों दलों को एक साथ खड़े होने के लिए एक सामान्य मंच और प्रचार के लिए एक सामान्य सूत्र प्रदान किया । यह उनकी एक असाधारण सफलता थी । इसके बाद उनकी गणना भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के प्रथम पांच सर्वोपरि नेताओं में होने लगी ।

असहयोग आंदोलन

लोकमान्य तिलक के निधन के बाद अगस्त १९२० में कलकत्ता में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में मोतीलाल असहयोग आंदोलन में सम्मिलित हो गए । अधिवेशन में महात्मा गांधी द्वारा पेश किया गया प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकार हुआ । मैं समझता हूं कि मेरा यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं माना जाएगा कि असहयोग-आंदोलन के प्रारम्भिक चरण की सफलता का बहुत बड़ा श्रेय महात्मा गांधी के अतिरिक्त उनके दो प्रमुख समर्थकों को था । इनमें एक थे इलाहाबाद के पंडित मोतीलाल नेहरू और दूसरे थे कलकत्ता के देशबन्धु चित्तरंजन दास । मोतीलालजी का सम्बन्ध नरम दल वालों से था और देशबन्धु का गहरा झुकाव क्रान्तिकारियों की तरफ था ।

महात्मा गांधी की पहली वर्किंग कमेटी में परस्पर-विरोधी विचारों और प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों का एक अद्भुत सम्मेलन था । मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास, लाला लाजपतराय और विजय राघवाचारियर ऐसे व्यक्ति नहीं थे जिनसे महात्मा गांधी आसानी से बात मनवा सकें । ये सभी दृढ़ विचार और दृढ़ संकल्पों के व्यक्ति थे । इन सबकी अलग-अलग मान्यताएं थीं । फिर भी इन भिन्न-भिन्न विचारधारा वाले व्यक्तियों ने प्रशंसनीय रूप से मिल-जुलकर कार्य किया और किसी लाभ या प्राप्ति की आशा के बिना देश में आत्मत्याग, सत्य, अहिंसा व सेवा की नई विचारधारा का जबर्दस्त प्रचार किया । मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि इन असमान तत्त्वों को मिल-जुलकर काम करने के लिए प्रेरित करने में मोतीलालजी की नीति-कुशलता और सौजन्यता बहुत हद तक सहायक हुई । मोतीलालजी उन व्यक्तियों में थे, जिन्होंने महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग-आंदोलन में शामिल होने के बाद अपना जीवन देश की सेवा में समर्पित कर दिया । फिर भी उनको गांधीजी का अंध अनुगामी नहीं कहा जा सकता । वे कभी किसी के 'जी हुजूर' नहीं रहे । उन्होंने हमेशा अपने विवेक से काम लिया । यद्यपि असहयोग के कार्य-क्रम में उन्होंने अपनी भूमिका बड़ी ईमानदारी से अदा की, किन्तु वे उसके परिणामों का बड़ी सतर्कता से मूल्यांकन करते रहते थे ।

आज़ादी की लड़ाई के पथप्रदर्शक

बी० शिव राव

भारत की मौजूदा पीढ़ी आज़ादी का उपभोग करने के कारण, उन गला-घोटू परिस्थितियों व मुश्किलों का अन्दाज़ नहीं लगा सकती, जिनका मुकाबला राष्ट्रीय आन्दोलन की नींव डालने वाले नेताओं को करना पड़ा। उन दिनों ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों से भारत की समानता का दावा करना भी अपराध था। उस पर सज़ा भी मिल सकती थी। १९१७ में श्रीमती एनी बीसेंट को इसी जुर्म में मुकदमा चलाए बिना ही नज़रबन्द कर दिया गया था। पंडित मोतीलाल नेहरू, जिनका स्वाधीनता-संग्राम के मार्गदर्शकों में निश्चित रूप से प्रमुख स्थान था, युद्ध के अन्त में श्रीमती बीसेंट व लोकमान्य तिलक द्वारा स्थापित होमरूल लीग में सम्मिलित हो गये। महात्मा गांधी पहले होमरूल आन्दोलन में शामिल होने में हिचकिचाते थे, परन्तु बाद में वे इसके प्रबल समर्थक हो गए और जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद वे देश के सर्वमान्य नेता बन गए।

राजनीतिक जीवन

पंडित मोतीलाल का सक्रिय राजनीतिक जीवन लगभग १५ वर्ष रहा। पंजाब में मार्शल-लॉ प्रशासन की जांच के लिए जो कमेटी गठित हुई, उसके वे अध्यक्ष नियुक्त किये गए। इस जांच के दौरान में उन्हें मालूम हुआ कि पंजाब में अत्याचारों के जो समाचार पत्रों में छपे, उससे कहीं अधिक लोमहर्षक अत्याचार वहां हुए। स्वभाव से एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ होने के कारण उनके निर्णय भावनाओं पर नहीं आधारित होते थे। मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के कटु आलोचक होते हुए भी उन्होंने अपने देशवासियों को तिलक के इस सिद्धान्त पर चलने की राय दी थी कि जो मिलता हो उसे ले लो और आगे और अधिक पाने के लिए लड़ाई जारी रखो। किन्तु, जब गांधीजी ने प्रथम असहयोग-आन्दोलन का बिगुल बजाया और त्याग तथा बहिष्कार की अपील की, तो पंडित मोतीलाल अपनी चलती हुई वकालत और शान-शौकत की ज़िन्दगी त्याग कर आन्दोलन में कूद पड़े। कलकत्ता की एक जेल में नज़रबन्दी के समय वे और देशबन्धु चित्तरंजन दास, सर तेजबहादुर सप्रू के प्रयासों से भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग द्वारा रखे गए समझौते-प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के पक्ष में थे। प्रिंस आफ वेल्स की भारत-यात्रा के बहिष्कार का परित्याग करने के बदले में वायसराय प्रान्तीय क्षेत्र में लगभग पूर्ण स्वशासन प्रदान करने तथा केन्द्र में भी कुछ ज़िम्मेदारी सौंपने पर विचार करने को तैयार थे।

हो सकता है, इस समझौते के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने से पूर्ण स्वतंत्रता की लड़ाई की अवधि कम हो जाती। लार्ड रीडिंग के समझौते के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देने को सी. आर. दास ने गांधीजी की 'हिमालय जैसी भूल' बताया था। अब उस भूल के नतीजों पर बहस करना बेकार है। इसके बाद ही कांग्रेस के अन्दर ही एक ऐसा दल तैयार हो गया जो कौंसिलों में जाकर संसदीय स्तर पर ब्रिटिश सरकार का अधिक-से-अधिक विरोध करने के पक्ष में था। सी० आर० दास और पंडित मोतीलाल १९२१ की मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड योजना के अन्तर्गत गठित कौंसिलों का बहिष्कार करने के पक्ष में नहीं थे, हालांकि वे अच्छी तरह जानते थे कि विरोधी पक्ष को अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

असहयोग और खिलाफत आन्दोलन के दिनों में

संसदीय नेता

पार्टी के अन्दर ज़बरदस्त संघर्ष के वाद, तीन वर्ष बाद होने वाले दूसरे चुनावों के पश्चात् पंडित मोतीलाल केन्द्रीय असेम्बली में स्वराज्य-पार्टी के नेता हो गए। मुझे अब भी याद है कि वे असेम्बली में अपने दल का संचालन किस शक्ति, उत्साह और कौशल से करते थे। वे बहुत उच्चकोटि के वक्ता नहीं थे। असेम्बली के सामने आने वाली समस्याओं पर वे बहसों में ज्यादातर कानूनी रुख अपनाते थे। किन्तु सौभाग्यवश उनको अपने दल में कुछ अत्यधिक प्रतिभाशाली सहयोगी प्राप्त थे जो विरोधी पक्ष को अत्यन्त शक्तिशाली रीति से प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे। उनके ज़िम्मे अवसर सिर्फ़ इतना काम रहता था कि जिस समस्या के विभिन्न पहलुओं पर उनके सहयोगी व्यापक रूप से प्रकाश डाल चुके हैं, उसे सार-रूप में वे सदन के सामने प्रस्तुत कर दें। पंडितजी के भाषणों में कुछ ऐसी ख़ूबी रहती थी कि सरकारी प्रवक्ताओं का ध्यान उनकी ओर बरबस आकृष्ट होता था। वे बिना कटुता पैदा किए हुए कड़ी चोट कर सकते थे। फलस्वरूप अधिकारी-वर्ग उनका बड़ा सम्मान करता था, जिनके लिए संसदीय कार्य नया-नया था।

१९२० के द्वितीय दशक में पूर्ण स्वतंत्रता की ओर देश को तेज़ी से बढ़ाने के अवसर बहुत सीमित थे। यह वह काल था जब श्री लायड जार्ज ने इंडियन सिविल सर्विस को भारतीय प्रशासन का लौह-ढांचा बताया था। इसके कुछ समय बाद श्री बाल्डविन-मंत्रिमंडल के प्रतिभाशाली, पर प्रतिक्रियावादी भारत-मंत्री लार्ड बर्केनहेड ने भारत को सर्वसम्मत सविधान तैयार करने की धृष्टतापूर्ण चुनौती दी। उस समय गांधीजी, जो (तिलक के निधन और श्रीमती बीसेंट के राजनीति से अलग हो जाने के बाद) देश के सर्वमान्य नेता थे, असहयोग-आंदोलन शिथिल पड जाने के बाद नया मार्ग खोज रहे थे।

ऐसी परिस्थिति में पंडित मोतीलालजी ने शक्ति-संचय का कोई अवसर हाथ से जाने नहीं दिया, उन्होंने छोटे-से-छोटे अवसर का भी उपयोग किया। उन्होंने १९२४ में सुधार कमेटी की सदस्यता प्रायः स्वीकार कर ली थी, जिसने प्रान्तों और केन्द्र में तेज़ी से प्रगति करने के प्रश्न पर विचार किया था। उन्होंने कुछ समय तक एक अन्य कमेटी में भी काम किया, जो कुछ फ़ौजी यूनिटों के भारतीयकरण के प्रश्न पर विचार करने के लिए नियुक्त हुई थी।

वस्तुतः पंडित मोतीलाल स्वभाव से संसदीय कार्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थे। उनकी प्रतिभा किसी आन्दोलन के मुक़ावले के धारासभा में अधिक प्रखर रूप में प्रकट होती थी। १९२६ में सी० आर० दास की मृत्यु बड़े नाज़ुक मौक़े पर हुई। उनका एक नज़दीकी साथी एक ऐसे मौक़े पर छिन गया, जब उनको अपने रचनात्मक कार्यों में उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह की सबसे अधिक आवश्यकता थी।

श्रीमती बीसेन्ट का कामनवेल्थ आफ इंडिया बिल ब्रिटिश कॉमन सभा में एक ग़ैर-सरकारी सदस्य के बिल के रूप में प्रथम वाचन की स्थिति तक पहुंचने में सफल हो गया। पंडित मोतीलाल और सी० आर० दास० दोनों ही उसकी मुख्य रूपरेखा का समर्थन करने के लिए तैयार थे, बशर्ते श्रीमती बीसेन्ट भी उसके नामंज़ूर होने की स्थिति में ब्रिटिश सरकार का सक्रिय विरोध करने के लिए तैयार हो जाएं। वे इसके लिए तैयार नहीं थीं। उनका विश्वास था कि क़ानून तोड़ने से सभी प्रकार के क़ानूनों का सम्मान घट जाएगा और इससे सभ्य समाज की बुनियादें कमज़ोर पड़ जाएंगी। परन्तु इससे उनके प्रयत्नों का महत्त्व घटता नहीं।

चुनौती स्वीकार

पंडित मोतीलाल ने लार्ड बर्केनहेड द्वारा भारतीय नेताओं को दी गई चुनौती स्वीकार कर ली और भारत का सर्वसम्मत सविधान तैयार करने के लिए एक सर्वदल सम्मेलन आयोजित किया, जिसके वे अध्यक्ष बने। पंडित जवाहरलाल उसके मंत्री और सर तेजबहादुर सप्रू सक्रिय सदस्य थे। सर्वदल सम्मेलन द्वारा तैयार की गई नेहरू-रिपोर्ट एक माने में कामनवेल्थ आफ इंडियन बिल से अधिक आगे बढ़ी हुई थी। यद्यपि

सभी दलों में समझौता कराने की दृष्टि से वह भी कामनवेल्थ आफ इंडिया बिल की भांति औपनिवेशिक स्वराज्य पर आधारित थी, परन्तु उसमें पिछली बार प्रान्तों और देशी रियासतों का एक संघ बनाने की योजना पेश की गई थी।

पंडित मोतीलाल में नेतृत्व का एक महान् गुण था, जिसके कारण उन्हें यह आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई थी। इस सफलता को प्राप्त करने के लिए उन्हें अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ा था। १९२८ में गिरती हुई तन्दुरुस्ती के बावजूद उन्होंने कलकत्ता कांग्रेस में इस रिपोर्ट के विरुद्ध पंडित जवाहरलाल नेहरू, सुभाष बोस तथा एस० श्री निवास आयंगर के ज़बरदस्त मोर्चे का मुक़ाबला किया था। जिन प्रान्तों में मुसलमान अल्प संख्या में थे, उनमें उनको संरक्षण प्रदान करने के सम्बन्ध में श्री जिन्ना से समझौता करने में वे करीब-करीब कामयाब हो गए थे।

१९२९ में लाहौर कांग्रेस में वामपक्षी तत्त्वों ने नेहरू-रिपोर्ट के आधार पर समझौते का कड़ा विरोध किया और जोश में आकर एक ऐसे सुविचारित प्रस्ताव को ठुकरा दिया, जो विविध राजनीतिक दलों को एकजुट करने की आधारशिला बन सकता था।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि पंडित मोतीलाल की मृत्यु से लंदन में हुए गोलमेज़ सम्मेलन के बाद ब्रिटेन के साथ भारत का स्थायी समझौता होने में रुकावट पड़ गई। यदि वे जीवित होते तो निश्चय ही श्री रैम्जे मैकडोनल्ड के 'वर्षों के बजाय महीनों में औपनिवेशिक स्वराज्य' प्रदान करने के आश्वासन को स्वीकार कर उसके आधार पर संविधान तैयार करने के लिए अपनी शक्तिशाली आवाज़ बुलन्द करते थे। कोई नहीं कह सकता कि अगर १६ साल पहले १९३१ में हमको आज़ादी मिल जाती, तो भारत का क्या भाग्य होता और विश्व का क्या घटनाक्रम होता। यह सौभाग्य बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है कि जिस उद्देश्य की पूर्ति में वे अपने को होम कर देते हैं, उसकी सिद्धि उनके जीवन-काल में हो। अधिकांश लोगों को इस दृढ़ विश्वास के साथ कि अन्ततः हमारे सिद्धान्तों की विजय होगी, बराबर अनेक प्रकार की कठिनाइयों से जूझते रहने में ही सन्तोष करना पड़ता है। जिन लोगों ने इस भावना से भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया, उनमें पंडित मोतीलाल का सर्वदा प्रमुख स्थान रहेगा। उनमें अपूर्व साहस था जैसा कि भारत में मुश्किल से दिखाई पड़ता है। उन्होंने न केवल अंग्रेज़ों से लड़ने में साहस दिखाया, बल्कि गांधीजी से मतभेद रखने और अपना स्वतंत्र मार्ग निर्धारित करने का भी साहस दिखाया।

> **स्वाधीनता का संग्राम एक बार आरम्भ हुआ कि वह देर-अबेर अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर ही लेगी और वह लक्ष्य प्राप्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।**
>
> **—मोतीलाल नेहरू**

दो घटनाएं

जे० एन० साहनी

देश के बड़े और छोटे सभी लोग पंडित मोतीलाल नेहरू को अपनी भावभरी श्रद्धांजलियां अर्पित कर रहे हैं, उनमें मैं और क्या जोड़ सकता हूं। इसलिए मैं वैसी कोई कोशिश नहीं करूंगा। पर मुझे एक उल्लेखनीय घटना याद आती है, जो कई साल पहले शिमला के असेम्बली भवन के गलियारे में मेरे सामने घटी थी, उसका उल्लेख ज़रूरी लगता है…यह घटना इस दृष्टि से ऐतिहासिक है कि उससे उस समय के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनीतिक नेताओं का अप्रिय विवाद समाप्त हो गया।

शिमला की घटना

यह स्मरणीय है कि स्वर्गीय लाला लाजपतराय को निजी व राजनीतिक कारणों से १९२५ में स्वराज्य-पार्टी से सम्बन्ध तोड़ना पड़ा था…उस दिन की वात है जिस दिन सार्वजनिक सुरक्षा कानून शिमला अधिवेशन में पेश होने वाला था। मैं और लाला लाजपतराय साथ ही आए। लालाजी मुझे बता रहे थे कि इस अवसर पर उनकी पार्टी व स्वराज्य-पार्टी का मिलकर काम करना कितना ज़रूरी है…।"

मैंने पूछा, "पर, इसमें कठिनाई क्या है?" लालाजी ने उत्तर दिया, "मैं और पंडित मोतीलाल नेहरू।" उन्होंने कहा, "मैं कभी-कभी सोचता हूं कि हमारे लिए क्या यह अनुचित और अशोभन नहीं कि हमारे आपसी मतभेद हमारी पार्टियों के द्वारा देश की सेवा के मार्ग में बाधक बनें।" हम गंभीरता से यही बात करते हुए असेम्बली भवन में घुसे। और सामने ही गलियारे में हमने पंडित मोतीलाल नेहरू को खड़ा पाया। वहां और कोई न था। जैसे ही लालाजी अन्दर घुसे मैंने गौर किया कि वे पंडितजी की नज़र वचाकर 'क्लॉक रूम की तरफ चले गए। लालाजी ने समझा कि यह मिलन संयोगवश हुआ है। पर पंडितजी स्पष्टत: किसी विशेष उद्देश्य से नेशनलिस्ट पार्टी के नेता की प्रतीक्षा कर रहे थे… कुछ समय वाद लालाजी क्लॉक रूम से वाहर निकले। पंडित मोतीलाल और लाला लाजपतराय की नज़रें एक-दूसरे से मिलीं। ऐसा लगा जैसे दो बिछुड़े प्रेमी मिल रहे हों। लालाजी मुस्कराए। दोनों के मुख से कोई वात नहीं निकलीं, पर लालाजी ने अपनी वाहें पंडितजी की बांहों में डाल दीं। यह ऐसी भावाभिव्यक्ति थी, जो शब्दों से अधिक अर्थपूर्ण थी। इसी से असेम्वली और सारी दुनिया को यह पता चल गया कि ये दोनों फिर से मित्र तथा सहयोगी बन गए हैं।

दोनों कमेटी-रूप में १५ मिनट तक अकेले बातचीत करते रहे। और जव वे हाथ में हाथ डाले हुए वाहर निकले और सदस्यों के कक्ष में घुसे तो सरकारी सदस्य अचरज से मुंह बनाकर देखने लगे। इस प्रकार उस समय के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हस्तियों का ऐतिहासिक विवाद समाप्त हो गया।

बम कांड

यहां मुझे एक और घटना याद आ रही है। असेम्वली में जब वम फेंका गया मैं वहां मौजूद था। उस अवसर पर बहुसंख्यक दर्शकों और असेम्वली के सदस्यों में जिस तरह भगदड़ मची वह बीते इतिहास की वात है। पहला बम गिरने के वाद ही सदन करीब-करीब खाली हो गया। सदस्यगण स्वाभाविक रूप से पीछे के और अगल-बगल के दरवाज़ों से भागे। पर पंडित मोतीलाल नेहरू न केवल अपने स्थान पर वैठे रहे, बल्कि कुछ देर बाद सरकारी बेंचों की ओर यह देखने कि क्या हुआ है और यदि कोई घायल हुआ हो तो उसकी मदद करने के लिए गए। वे अपनी सीट और गृह सदस्य की सीट के बीच में ही थे कि दूसरा बम फूटा और उसके वाद रिवाल्वर से दो गोलियां छूटीं। परन्तु दूसरा बम फटने के बाद भी पंडित मोतीलाल न तो डरे और न पीछे हटे। यह थी पंडित मोतीलाल की शान जिनका दोस्त और दुश्मन दोनों ही वड़ा अदब करते थे।

(कुतुब मीनार शीर्षक स्तम्भ से)

एक बड़ी हस्ती

एस० डी० उपाध्याय

भारत के बीसवीं सदी के प्रमुखतम व्यक्तियों में पंडित मोतीलाल नेहरू का नाम सदा आदर के साथ लिया जाएगा। देश के स्वाधीनता-संग्राम में उनका जो शानदार योगदान रहा है, उसका लेखा-जोखा मैं यहां नहीं लेना चाहता, क्योंकि इस काम को उनके अन्य सहयोगी और इतिहासकार अच्छी तरह कर सकते हैं।

मैं पंडित मोतीलालजी के निकट संपर्क में उन दिनों रहा जब वे अपने राजनीतिक जीवन के सर्वोच्च शिखर पर थे। अतएव मैं यहां पर उनके जीवन की कुछ झलकियां पेश करना चाहूंगा। यह मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे एक महान् व्यक्ति की सेवा ऐसे समय पर करने का अवसर मिला जब वह एक शक्तिशाली विदेशी ताकत से लोहा ले रहा था। मेरे लिए इससे बड़ा और कोई पुरस्कार नहीं हो सकता कि मुझे उन जैसे महान् व्यक्ति की सेवा में रहना नसीब हुआ।

जादू भरा प्रभाव

उनकी अनेकानेक खूबियों में सबसे बड़ी खूबी थी उनका शानदार व्यक्तित्व, जिसमें एक जादू-भरा आकर्षण था। उनके बारे में यह कहना सच होगा कि वे जिस समाज में बैठते थे उसे मोह लेते थे। उनके रोबीले व्यक्तित्व को देख कर प्रायः साधारण व्यक्ति उनके सामने जाते हुए डरता था। लेकिन यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि एक बार जब कोई व्यक्ति पंडित मोतीलाल नेहरू के सामने जाने का साहस कर लेता था तो उसका सारा डर दूर हो जाता था और वह जैसे जादू की डोर से बंध कर उनकी ओर खींच जाता था। उसकी सारी झिझक दूर हो जाती थी और वह अपने अंदर एक नवीन साहस का अनुभव करता था। उनका दिमाग़ बहुत ही तेज़ था और लोगों का क्या वस्तुस्थिति का सही मूल्यांकन करने में वह बहुत कम गलती करते थे। दूसरों से काम लेने का उनका ढंग निराला था। लोग बड़ी प्रसन्नता और लगन से उनका काम करते थे और वह जिस तरह दूसरों पर ज़िम्मेदारी के काम सौंपते थे, उससे उनके व्यक्तित्व में निखार आ जाता था। वह अनिच्छा से या ढुलमुल तरीके से काम करने वाले आदमियों को पसन्द नहीं करते थे।

वर्तमान पीढ़ी पंडित मोतीलाल नेहरू के देशव्यापी दौरों से परिचित है, जो कि वे समय-समय पर सार्वजनिक कार्यों के लिए करते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि उन्हें यह विरासत अपने पिता से मिली है, जो देश के कार्य से देश के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक तूफ़ानी दौरा करते रहते थे। ऐसे दौरों के समय वे बहुधा आधी-आधी रात तक सभाओं में भाषण दिया करते थे। उनके व्यक्तित्व में राष्ट्र का सम्मान जैसे मूर्तिमान हो उठा था, जो कि एक विदेशी ताकत से लोहा ले रहा था। वह राष्ट्र के सम्मान को कोई ठेस पहुंचने से पहले अपनी जान न्योछावर कर देने को तैयार रहते थे।

पंडित मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास हुए इकतीस वर्ष बीत गए। पंडित जवाहरलाल नेहरू की उदासीनता मैं आज तक यह अनुभव नहीं कर पाया कि उनके महान् पिता ने जो परम्पराएं स्थापित की थीं, वे टूट गईं। इस अवधि में मुझे अनेक महान् तथा सज्जन पुरुषों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, परन्तु, आज तक उन जैसा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं मिला।

इलाहाबाद में पहली मोटर कार : मोतीलाल नेहरू अपने एक रिश्तेदार और बेटियों को बैठाकर स्वयं चलाते हुए

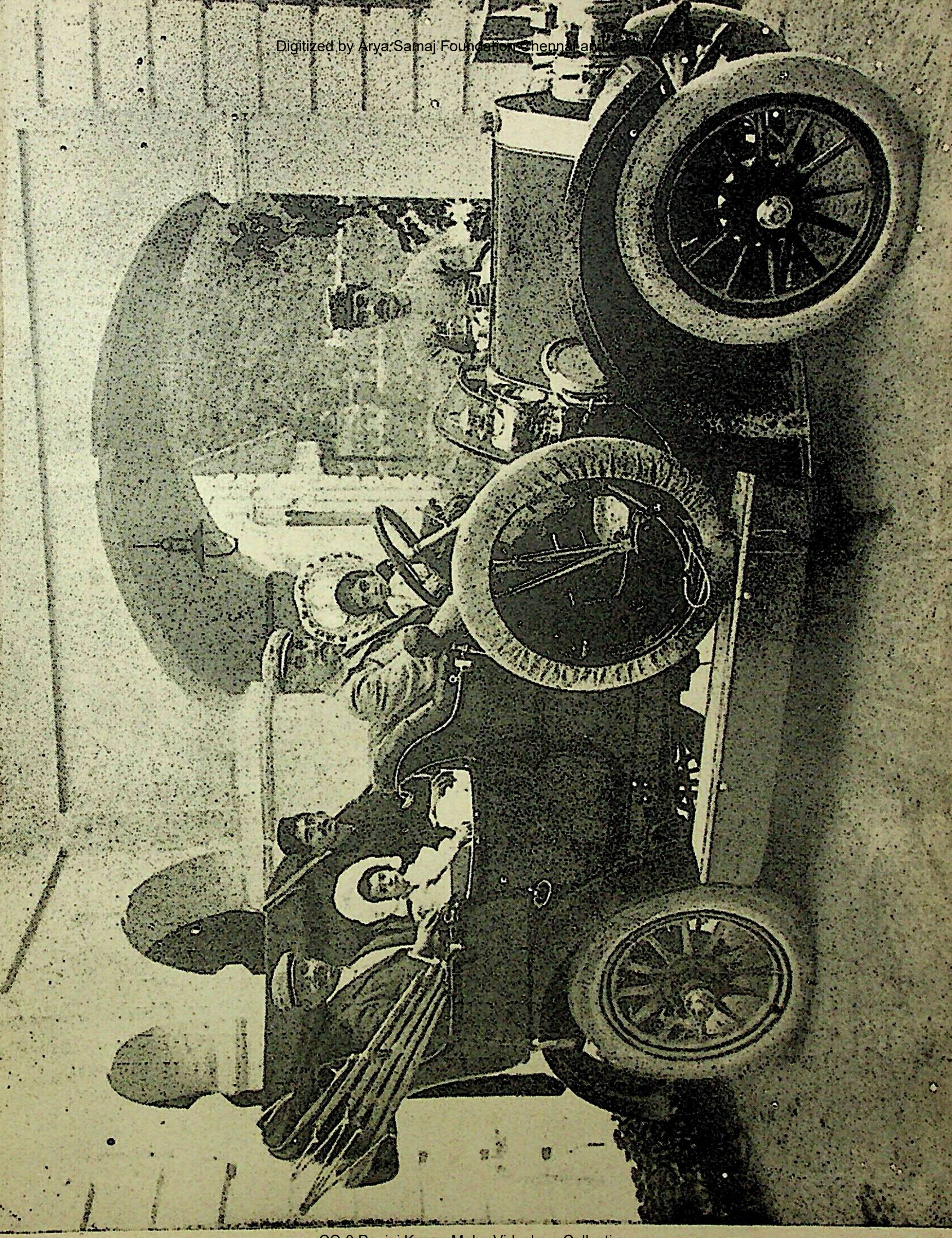

पंडितजी मालवीयजी का बहुत सम्मान करते थे। वह मालवीयजी के निर्मल चरित्र और उद्देश्य के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा की सराहना किया करते थे। एक बार उन्होंने अचानक मुझसे पूछा, "तुम किसको आदर्श हिन्दू मानते हो?" मैंने बिना संकोच के तत्काल उत्तर दिया, "मालवीयजी को।"

"नहीं" पंडितजी ने उत्तर दिया, "अच्छा हिन्दू मैं हूं। एक सच्चा हिन्दू, छुआछूत और फिरकापरस्ती को नहीं मानता। जब से हिन्दुओं में अपने अन्दर दूसरों को पचा लेने की शक्ति जाती रही तभी से संकीर्णता ओर तंगखयाली उन पर हावी हो गई। एक सच्चे हिन्दू में इस बात की ताकत होनी चाहिये कि वह अपने अन्दर हर अच्छी चीज़ को पचा सके।"

मालवीयजी से उनके सम्बन्ध अत्यन्त हार्दिक और स्नेहपूर्ण थे। अतएव वे अक्सर एक-दूसरे का मज़ाक बनाया करते थे। पंडितजी मालवीयजी से छः महीने बड़े थे और वह अक्सर कहा करते थे, "उम्र में ही केवल छः महीने बड़ा नहीं हूं, बल्कि दिमाग़ में भी छः महीने बड़ा हूं।"

* * *

एक बार मोतीलालजी की पोती इन्दिरा ने इलाहाबाद में वानर-सेना का संगठन किया। पंडित मोतीलालजी उस समय नैनी जेल में थे। जब उनको इसकी खबर मिली तो इससे वे बहुत प्रभावित हुए। जेल से उन्होंने इन्दिराजी को पत्र लिखा कि मुझे तुम्हारे ऊपर गर्व है। पत्र में उन्होंने आगे सुझाव दिया कि वानर-सेना के प्रत्येक सदस्य को एक पूंछ लगानी चाहिए। किसी सदस्य का वानर-सेना में कितना ऊंचा स्थान है इसका निर्णय उसकी पूंछ की लम्बाई से होना चाहिए।

* * *

पंडितजी बहुत अधिक परिश्रम करते थे। मुझे याद है कि एक बार उन्होंने मुझसे कहा था, "उपाध्याय, क्या तुम यह समझते हो कि मैं पैसे के लालच से इतनी मेहनत करता हूं? मैं कम काम करके ज्यादा पैसा कमा सकता हूं। मैं ज्यादा मेहनत इसलिए करता हूं, क्योंकि मैं अपने मुकदमों में मानवीय पक्ष को देखने लगता हूं। मैं अपने कर्तव्य की भावना से बंधकर मुकदमों की मिसिलों में इतना अधिक जुटा रहता हूं।"

* * *

पंडितजी उस समय इलाहाबाद में थे और बीमार थे। डाक्टरों ने उनको पूर्ण विश्राम की सलाह दी थी। एक शाम को उनको यह सूचना मिली कि सत्याग्रहियों के एक जलूस को पुलिस ने रोक दिया है। पुलिस वाले सड़क को घेरे खड़े थे। वे इस अहिंसक सत्याग्रहियों को आगे जाने नहीं दे रहे थे। घंटों तक यह स्थिति बनी रही। पंडितजी को जैसे ही यह खबर मिली वे अपनी कार में बैठकर सीधे घटनास्थल पर पहुंच गए। पुलिस ने उनकी कार को आगे नहीं जाने दिया। वे एक मजबूत दीवार की तरह रास्ता रोके हुए थे। पंडितजी ने अपनी तेज़ आवाज़ में मोटर को आगे बढ़ाने का हुक्म दिया। जैसे ही कार आगे बढ़ी पुलिस वाले हक्का-बक्का होकर तितर-बितर हो गए। इसके बाद पंडितजी ने भीड़ के समक्ष भाषण दिया, हालांकि वे काफ़ी कमज़ोर थे। उनका यह भाषण कभी भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने पुलिस वालों से कहा कि आप लोग एक विदेशी हुकूमत का आदेश मानने से इनकार कर दें। आपको अपने देश के प्रति वफ़ादार होना चाहिए। अंग्रेज़ अफसर चारों ओर असहाय स्थिति में खड़े हुए पंडितजी का भाषण सुन रहे थे। बाद में उन्होंने कहा कि पंडितजी ने जो बातें कहीं वे भयानक रूप से राजद्रोहात्मक थीं, लेकिन उस समय वे असहाय थे। उनका भाषण ऐसा लगता था जैसे कोई बादशाह हुक्म दे रहा हो और वे उनके विरुद्ध कुछ नहीं कर नहीं सके।

जैसा मैंने उनको पाया

जमनादास द्वारकादास

पंडित मोतीलाल नेहरू के दर्शनों का सौभाग्य तो मुझे १९१५ से प्राप्त हुआ, लेकिन इसके पहले ही सर दीनशा वाचा और श्रीमती एनी बीसेंट पंडित मोतीलालजी के वारे में मुझे वता चुके थे। इन दोनों ने ही उनकी निडरता, आज़ादखयाली और देशभक्ति की अत्यन्त सराहना की और यह भी वताया कि इन सब के ऊपर वह एक कुशल वकील हैं। मेरे वारे में श्रीमती नायडू उनको वता चुकी थीं। पहली मुलाक़ात से ही उन्होंने मेरी और मेरे मित्र व सहयोगी उमर सोभानी और शंकरलाल की बहुत तारीफ़ की। पंडित मोतीलालजी से यह मेरी पहली वार्ता थी। इस भेंट ने मुझ पर एक अमिट छाप डाल दी। वाद में जव श्रीमती बीसेंट ने १९१६ से देश के विभिन्न प्रान्तों से होमरूल लीग की स्थापना की घोषणा की तो यू० पी० वोर्ड में तेजवहादुर सप्रू, सी० वाई० चिन्तामणि और जवाहरलाल नेहरू के साथ ही पंडित मोतीलाल नेहरू का नाम भी आया। मेरा सम्पर्क पंडित मोतीलाल नेहरू और विशेषकर जवाहरलाल नेहरू से न केवल कांग्रेस के कार्यों में लगे रहने के कारण वढ़ता गया, बल्कि बाद में होमरूल लीग के ज़माने में भी इससे वृद्धि हुई। १९१६ से लखनऊ कांग्रेस के अवसर पर मैं उस महान् पिता और उसके महान् पुत्र, दोनों के और भी अधिक घनिष्ठ सम्पर्क में आ गया।

माडरेट के रूप में

सन् १९१७ में श्रीमती बीसेंट के ऊटी और कोयम्वटूर के कारावास काल में, जहां तक यू० पी० का सम्वन्ध है, यहां के किसी भी व्यक्ति ने इतने ज़ोरदार तरीके से और निर्भीकता के साथ श्रीमती बीसेंट की रिहाई की मांग नहीं की जैसी कि पंडित मोतीलाल नेहरू ने। मुझे वम्बई के चायना वाग की वह सभा याद है जहां नरमदल वालों ने वावू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की अध्यक्षता में आयोजित की थी। इस सभा का उद्देश्य हम नौजवानों को यह समझाना था कि ऐसे मौके पर होमरूल का तीव्र प्रचार न किया जाए, जवकि ब्रिटेन जर्मनी के साथ जिन्दगी और मौत के संघर्ष में लगा है। जिन लोगों ने हम लोगों की बड़ी भर्त्सना की थी उनमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, भूपेन्द्रनाथ वसु, दीनशा वाचा, चिमनलाल, सीतलवाड आदि प्रमुख थे। दूसरी ओर मदनमोहन मालवीय ने यद्यपि नरमदल वालों के दृष्टिकोण का ही समर्थन किया, लेकिन उनका दृष्टिकोण उत्तेजनामूलक न होकर समझौतामूलक अधिक था। हमारी तरफ एक ओर लोकमान्य तिलक, पंडित मोतीलाल नेहरू और सी० पी० रामास्वामी अय्यर थे। नवयुवकों की मंडली ने जिसमें जवाहरलाल नेहरू भी थे मुझको अपने प्रवक्ता के रूप में खड़ा कर दिया। मुझे अपने उस भाषण की पूरी याद है जिसमें मॉडरेटों की वातों का मुंहतोड़ उत्तर दिया गया था। लोकमान्य तिलक, सी० पी० रामास्वामी अय्यर और तेजवहादुर सप्रू, ने हमें अपना ज़ोरदार समर्थन प्रदान किया। वास्तव में श्रीमती बीसेंट को तीन महीने के कारावास के बाद रिहा कर दिया गया और पहली वार देश के विभिन्न भागों में जो जनभावनएं व्यक्त हुईं, उनसे सरकार बेचैन हो उठी। जेल से छूटने के वाद श्रीमती बीसेंट इलाहाबाद में अपने प्रवासकाल में पंडित मोतीलाल नेहरू की अतिथि रहीं। पंडित मोतीलाल का आतिथ्य तो देश में एक कहावत-सा वन गया है श्रीमती बीसेंट और लोकमान्य तिलक द्वारा संचालित होमरूल लीग देश में स्वराज्य के लिए ज़ोरदार प्रचार कर रही थी। श्रीमती बीसेंट के पास

'न्यू इंडिया' नामक पत्र था और मेरे पास 'यंग इंडिया' नामक साप्ताहिक पत्र था। 'यंग इंडिया' की स्थापना १९१५ में की गई थी। जब मैं ब्रिटेन के दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति के समक्ष मांटफोर्ड रिपोर्ट पर आधारित सुधार बिल पर गवाही देने के लिए श्रीमती बीसेंट के साथ इंगलैंड गया तो १९१९ के मध्य में गांधीजी ने 'यंग इंडिया' को अपने हाथ में ले लिया।

रौलट एक्ट

स्मरणीय है कि १९१९ में सारे देश के विरोध की परवाह न करके ब्रिटिश सरकार ने इम्पीरियल कौंसिल से 'रौलट ऐक्ट' पास करवा लिया। रौलट ऐक्ट का उद्देश्य भारतवासियों की गर्दनों को नौकरशाही के पंजे में मज़बूती से जकड़ देना था। नौकरशाही का मकसद डिफेंस आफ इंडिया ऐक्ट को बरकरार रखना था, भाषणों और लेखों में स्वतंत्र रूप से मत प्रकाशन को कुचलने के लिए इसका दुरुपयोग भी किया गया। नौकरशाही का दूसरा मकसद यह था कि कुछ जनता के विरोध को उभाड़ करके भारत में एक तूफ़ान खड़ा कर दिया जाए, ताकि उनके विचार से ब्रिटिश सरकार जो क्रांतिकारी सुधार करने जा रही थी, उन पर पानी फिर जाए। जब यह कानून पास हुआ तो गांधीजी ने अपने राजनीतिक जीवन में प्रथम बार सामूहिक सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ने का निश्चय किया। इस आन्दोलन में सत्याग्रहियों ने कुछ कानूनों को तोड़ने की शपथ ली थी।

मेरी परेशानी

पंडित मोतीलाल नेहरू हालांकि इस प्रकार के आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे, फिर भी उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि रौलट ऐक्ट की दमनमूलक व्यवस्थाओं के बावजूद मैं किसी भी परिणाम की चिन्ता किये बगैर किसी तौर से अपना काम जारी रखूंगा। होमरूल आन्दोलन में कार्य करने वाले अन्य नेताओं के साथ ही श्रीमतीं बीसेंट का भी यही विचार था। लोकमान्य तिलक एक मुकदमे के सिलसिले में इंगलैंड गए हुए थे। यह मुकदमा उनके और सर वेलेनटाइन शिरोल के बीच चल रहा था। इस मौके पर मुझे अपने राजनीतिक जीवन में पहली बार परेशानियों का अनुभव हुआ। मेरे सभी नौजवान दोस्तों और सहयोगियों के साथ ही बम्बई की जनता भी, जिसका मुझ में बहुत विश्वास था, झुकाव गांधीजी की ओर था, क्योंकि सब लोग समझते थे कि श्रीमती बीसेंट और दूसरे पुराने नेताओं की अपेक्षा गांधी जी का रास्ता ज्यादा ज़ोरदार है। श्रीमती बीसेंट मेरी गुरू थी। उन्हीं की प्रेरणा से मातृभूमि की सेवा की लगन मेरे अन्दर पैदा हुई थी। उनके प्रति मेरे मन में अत्यन्त आदर व श्रद्धा की भावना थी। दूसरी ओर ऐसी ही श्रद्धा और विश्वास गांधीजी के प्रति भी था। गांधीजी के सम्पर्क में मैं जनवरी १९१५ में आया, जब वे विदेश से भारत लौटे थे। इस समय मैं चक्की के दो पाटों के बीच में अत्यन्त असहाय स्थिति में था। बम्बई प्रेसीडेंटी एसोसिएशन के कमरे में आयोजित एक अनौपचारिक बैठक मुझे याद है। इसमें श्रीमती बीसेंट, गांधीजी और पंडित मोतीलाल नेहरू उपस्थित थे। मैंने भी इस बैठक में में भाग लिया था। मैंने वहां व्यक्तिगत रूप से श्रीमती बीसेंट और गांधीजी से लगभग दो घण्टे बातचीत की, और प्रत्येक ने निश्चित फैसले पर पहुंचने में मेरी सहायता करने का प्रयास किया। पंडित मोतीलाल को यह सब मालूम था। वह मुझको एक ओर ले गये और एक कोने में बैठकर मेरी परेशानी पर बातचीत करने लगे। मुझको उनकी व्यवहारिक तथा समझदारी से भरी नसीहत आज भी याद है। मोतीलालजी ने कहा था कि "जमनादास, तुम अत्यन्त मायूस और दुखी नज़र आते हो। हमेशा की तरह प्रसन्नता तुम्हारे चेहरे पर दिखाई नहीं पड़ रही है। तुमको शीघ्र ही कोई राय कायम कर लेनी चाहिए। लेकिन यह पूरी तौर से तुम्हारा अपना निर्णय होना चाहिए। गांधीजी या श्रीमती बीसेंट के प्रभाववश कोई फैसला नहीं करना चाहिए। तुम बगैर परिणाम की चिन्ता किये हुए अपना फैसला करो। मुझे

विश्वास है कि इससे तुम खुश नजर आने लगोगे।" यह बताने की आवश्यकता नहीं कि उसके बाद क्या हुआ। जलियांवाला बाग हत्याकांड के कुछ समय बाद तक मैं गांधीजी के साथ रहा। गांधीजी ने स्वयं कुछ समय के लिए आन्दोलन स्थगित कर दिया और तब मैंने इंगलैंड जाकर श्रीमती बीसेंट के साथ सेलबोर्न कमेटी के सामने गवाही देने का निश्चय किया। इंगलैंड में जब मैंने यह सुना कि पंडित मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन के अध्यक्ष मनोनीत हुए हैं तो मैं खुशी से फूला न समाया। उस रात को मैं ब्रिटिश सरकार के भारत मंत्री श्री एडविन मान्टेग्यू के साथ बैठा था। मैंने देखा कि वे इस बात से बहुत खुश हुए थे कि कांग्रेस एक समर्थ और प्रतिभाशाली राजदर्शी को अपना अध्यक्ष बनाने जा रही है।

जनवरी, १९२७ के प्रथम सप्ताह में जब मैं स्वदेश लौटा तो मुझे कांग्रेस के १९१९ के अमृतसर अधिवेशन की कार्यवाहियों का पता चला। मोतीलालजी का भाषण, जैसी कि उनसे आशा की जाती थी, बड़ा ही ओजपूर्ण तथा देशभक्ति की भावनाओं से परिपूर्ण था। उसमें १९१९ के शासन-सुधार की कड़ी आलोचना की गयी थी।

मुसलमानों की शिकायतें

१९२० में जजीरूत-अक-अरब और मुसलमानों के अन्य धार्मिक स्थानों पर कब्जा कर लेने की ब्रिटिश सरकार की नीति से भारतीय मुसलमानों को गहरा धक्का लगा। उन्होंने गांधीजी से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक आंदोलन छेड़ने के लिए सहयोग मांगा। गांधीजी ने एक बार फिर सत्याग्रह चलाने का निश्चय किया। इस बार इसका नाम बदलकर 'अहिंसात्मक असहयोग' कर दिया गया। इसके लिए एक चार-सूत्री कार्यक्रम उन्होंने तैयार किया। इस कार्यक्रम में अन्य बातों के अलावा ये चीज़ें भी शामिल थीं: वकील कचेहरियों में अपनी वकालत बन्द कर दें, छात्र अपने स्कूल तथा कालेजों को छोड़ दें तथा कौंसिलों और विदेशी वस्त्रों का पूर्ण बहिष्कार किया जाए। मुसलमानों ने गांधीजी के इस प्रस्ताव का बहुत स्वागत किया, लेकिन उनमें जिन्ना-जैसे कुछ नेता भी थे, जिन्होंने इसका समर्थन नहीं किया। मई १९२० में अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की बैठक बनारस के थियोसाफिकल हॉल में हुई। इस बैठक में गांधीजी ने पहली बार औपचारिक रूप से अपना प्रस्ताव विचारार्थ पेश किया। गांधीजी के प्रमुख विरोधियों में लोकमान्य तिलक, पंडित मोतीलाल नेहरू, श्रीमती बीसेंट और लाला लाजपतराय के अतिरिक्त पंडित मदनमोहन मालवीय भी थे। अत में जहां तक मुझे स्मरण है, यह सवाल अंतिम रूप से निर्णय के लिए सितम्बर १९२० में कलकत्ता में होनेवाले कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के सिपुर्द कर दिया गया। कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन के पहले ही देश को एक जबरदस्त धक्का लगा। भारत ने १ अगस्त १९२० को अपने एक महान् नेता लोकमान्य तिलक को खो दिया। यह संयोग की ही बात है कि पहली अगस्त को ही असहयोग आन्दोलन शुरू किया जाने वाला था। लोकमान्य तिलक के निधन के पश्चात् श्रीमती बीसेंट ही असहयोग आन्दोलन की प्रबल विरोधी सिद्ध हुयीं और इसके कारण देश के प्रायः प्रत्येक भाग में उनकी ख्याति को गहरा धक्का लगा। फिर भी, वे अपनी बात पर अडिग रहीं, और जब लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में १९२० में कलकत्ता अधिवेशन हुआ तो मुझे याद है कि श्रीमती बीसेंट के भाषण के लिए खड़े होने पर उपस्थिति जन-समूह ने कैसा हल्ला मचाया था। मुझे यह भी याद है किस प्रकार पंडित मोतीलाल, देशबंधु चित्तरंजन दास और जिन्ना ने विषय-समिति की बैठक में इस आन्दोलन के बारे में अपना विरोध प्रकट किया, लेकिन इस विरोध के बावजूद गांधीजी का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और कांग्रेस ने अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन चलाने में अपना सहयोग देने का फैसला किया। मैं अपने भाषणों और लेखों के द्वारा श्रीमती बीसेंट के विचारों का ज़ोरदार तरीके से समर्थन कर रहा था। कुछ ही समय बाद मुझे यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पंडित मोतीलाल नेहरू

और देशबन्धु दास ने कांग्रेस अधिवेशन में जो रुख अपनाया था, उसमें परिवर्तन कर दिया है। दोनों ही अब गांधीजी की नीति के अनुयायी हो गए थे। पंडित मोतीलाल के जीवन में अब एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया। विदेशी कपड़ों का स्थान खद्दर ने ले लिया और अंग्रेज़ी वेश-भूषा की जगह अब उन्होंने भारतीय पहनावा अपना लिया था। वह अपनी अच्छी-खासी चलती हुई वकालत को छोड़कर गांधी जी द्वारा ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ छेड़े गये असहयोग आन्दोलन के एक सच्चे सैनिक बन गये।

शिमला का आमंत्रण

मैं केन्द्रीय असेम्बली में बम्बई नगर के प्रतिनिधि की हैसियत से प्रविष्ट हुआ था। हममें से जो लोग असेम्बली के सदस्य थे, वे असेम्बली में बने रहकर ही देश का हित साधन करने का प्रयास कर रहे थे, किन्तु इसी समय असहयोग आन्दोलन की आंधी देश भर में फैल गयी। लार्ड चेम्सफोर्ड अप्रैल १९२१ में शासन की बागडोर अपने उत्तराधिकारी लार्ड रीडिंग को सौंप कर स्वदेश वापस चले गए। १९२१ में असेम्बली के अधिवेशन के समय जब हम शिमला में थे तो सरकार के कानून सदस्य (लॉ मेम्बर) तेजबहादुर सप्रू और मैंने लार्ड रीडिंग से अलग-अलग वार्ता की। बाद में जब हम दोनों ने अपनी-अपनी वार्ता की टीपों का मिलान किया तो यह स्पष्ट हो गया कि वायसराय पं० मोतीलाल नेहरू से मिलने और उनके साथ पूरी परिस्थिति पर हार्दिक विचार-विनिमय करने के लिए उत्सुक हैं। तेजबहादुर के हृदय में पंडित मोतीलाल नेहरू के प्रति अपार प्रेम और सम्मान था। उन्होंने पंडित मोतीलाल को एक पत्र लिखकर यह सुझाव दिया कि आप शिमला आ जायें, ताकि वायसराय आपसे मिलकर विचार-विमर्श कर सकें। मुझे याद है कि कुछ ही दिनों में मोतीलालजी का उत्तर भी आ गया था। तेजबहादुर ने मुझे वह पत्र दिखाया था। मेरे ख़याल से यह पत्र तेजबहादुर की फाइल में नहीं है, क्योंकि उनकी फाइल को दीमकें चाट गई हैं। इस पत्र के बारे में अपनी स्मृति के आधार पर ही लिख रहा हूं। मोतीलालजी ने वायसराय से मिलने का सुझाव देने के लिए डा० सप्रू को धन्यवाद दिया था, लेकिन साथ ही यह भी सूचित किया था कि वे इस सुझाव को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। उन्होंने लिखा था कि मुझे और जवाहरलाल को गांधीजी के बताए रास्ते से ही आज़ादी प्राप्त करने के लिए देशसेवा के अतिरिक्त अब और किसी काम में दिलचस्पी नहीं रह गई। मैंने हर्ष और निराशापूर्ण हृदय से उस पत्र को पढ़ा। निराशा इस बात से हुई कि मोतीलालजी वायसराय से भेंट नहीं करेंगे और हर्ष यह देखकर हुआ कि एक महान् पिता और एक पुत्र ने अपने को पूर्ण रूप से देश के लिए समर्पित कर दिया है, मानो वे दोनों धरती-पुत्रों में मिल गये हों और अपने लिए अब उनमें कोई कामना शेष न रह गई हो। इसी के बाद ही यह खबर मिली कि पंडित मोतीलाल नेहरू ने 'आनन्द भवन' को कांग्रेस के माध्यम से राष्ट्र को अर्पित कर दिया है।

अपूर्व त्याग

देश के लिए उन्होंने जो कुर्बानी की है, उसकी मिसाल नहीं है। बहुत से लोग हैं जो यह दावा करते हैं कि वे जेल गये, बहुत-सा धन दिया और अन्य बहुत से तरीकों से कुर्बानी की। लेकिन यदि किसी व्यक्ति को यह श्रेय प्राप्त है कि उसने अपनी सम्पत्ति के साथ ही अपने को भी समर्पित कर दिया, और वह भी बिना एक शब्द के, बिलकुल चुपचाप, बड़ी खुशी और सन्तोष के साथ, तो ऐसा व्यक्ति केवल एक ही है, और वह हैं, पंडित मोतीलाल नेहरू। उनको १९२२ में क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेण्ट एक्ट के अन्तर्गत गिरफ़्तार करके जेल भेज दिया गया। जिस व्यक्ति का शासक और शासित, राजा और महाराजा सभी सम्मान करते थे, जो व्यक्ति सबसे धनी गिना जाता था, वह एक दिन में सब कुछ त्याग कर निर्धन बन गया। उसके जीवन में एकबारगी सादगी का समावेश हो गया। जबकि मैं दूसरों को अपने त्याग की शेखी बघारते सुनता हूं तो मुझे ऐसा एक भी अवसर याद नहीं पड़ता जब पंडित मोतीलाल ने अपने त्याग के बारे में एक भी शब्द कहा हो।

१९२१ के अन्त तक अनेक मुसलमान और ग़ैर-मुसलमान नेताओं से जेलें भर गयीं। गांधीजी अभी वाहर ही थे। वह १९२१ में अहमदावाद में होने वाले अधिवेशन के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष ही नहीं चुने गये, वल्कि प्रथम वार कांग्रेस के एकमात्र डिक्टेटर वनाये गए। इस अवसर पर जिस प्रकार से घटनाक्रम चल रहा था उससे हम सव लोग, जो असेम्वली के अन्दर थे, वहुत दुखी थे। तेजवहादुर सप्रू, श्रीमती वीसेंट और पंडित मदनमोहन मालवीय ने अपने सव सहयोगियों और वायसराय लार्ड रीडिंग से पूरी तरह सलाह-मशविरा करने के वाद पंडित हृदयनाथ कुंजरू और मुझको कांग्रेस-अधिवेशन के मौक़े पर गांधीजी के पास भेजा, ताकि हम वहां गांधीजी से एक गोलमेज़ सम्मेलन आयोजित करने के लिए वार्ता करें, जिसमें एक ओर गांधीजी और उनके सहयोगी हों और दूसरी ओर वायसराय और अन्य व्यक्ति। यह कदम सरकार और कांग्रेस के वीच समझौता कराने के उद्देश्य से उठाया गया था। लार्ड रीडिंग प्रिंस आफ वेल्स के आगमन के अवसर पर इस वात के लिए अत्यन्त उत्सुक थे कि कोई न कोई समझौता हो जाना चाहिए; चाहे इसका अर्थ प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी सरकारों की स्थापना या निर्धारित अवधि के भीतर केन्द्र में भी उत्तरदायी सरकार वनाने का वादा ही क्यों न हों। हृदयनाथ कुंजरू और मैंने गांधीजी से काफ़ी लम्वी वार्ता की और ऐसा लगा कि स्थिति आशापूर्ण है। हम लोग यह विश्वास लेकर लौटे कि गोलमेज़ सम्मेलन अवश्य होगा। अहमदावाद से रवाना होने से पूर्व मैंने लार्ड रीडिंग, श्रीमती वीसेंट, तेजवहादुर सप्रू, और मदनमोहन मालवीय को इसी आशय का तार भी भेज दिया। परन्तु अभी हम कलकत्ता पहुंच भी न पाये थे, तभी गांधीजी ने अपना विचार वदल दिया।। उन्होंने विना शर्त सम्मेलन में भाग लेने के लिए मेरे द्वारा अपनी जो सहमति भेजी थी वह उन्होंने वापस ले ली। फतवावन्दी जेलों में वन्द थे। गांधीजी ने कहा कि मैं सम्मेलन में भाग लेने के प्रश्न पर भी तभी विचार कर सकता हूं जव इन वन्दियों को रिहा किया जाए। इस गोलमेज़ सम्मेलन का प्रस्ताव विफल हो गया, वाद में मुझे पता चला कि पंडित मोतीलाल नेहरू और देशवन्धु दास दोनों ने गांधीजी को सलाह दी थी कि वे कुंजरू और मेरे द्वारा उपस्थित किये गए प्रस्ताव को स्वीकार कर लें। ये सव तथ्य श्री जयकर लिखित 'स्टोरी आफ माई लाइफ' में अविकल रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। वह तार भी प्रकाशित हो चुका है जिसका मेरे और गांधीजी के वीच और पंडित मोतीलाल नेहरू, देशवन्धु दास और गांधीजी के वीच आदान-प्रदान हुआ था। मैं यह सव अपने इस विश्वास की पुष्टि के लिए लिख रहा हूं कि पंडित मोतीलाल कितनी सूझ-वूझ के आदमी थे। उनके फ़ैसले हममें से वहुत लोगों को गांधीजी से भी अधिक मान्य होते थे। प्रथम विधान-मंडलों का कार्यकाल १९२३ में समाप्त हो गया। पंडित मोतीलाल नेहरू और देशवन्धु दास में पूर्ण मतैक्य स्थापित हो गया और इन दोनों ने विधान-मंडलों के चुनाव लड़ने के लिए स्वराज्य-पार्टी की स्थापना की। यह वात मुझे इंगलैंड में १९२३ में मालूम हुई। मैं उस समय वहां केनिया-प्रवासी भारतीयों की लड़ाई के सिलसिले में स्वर्गीय श्रीनिवास शास्त्री के साथ गया था। मुझे स्मरण है कि भारतीय समस्याओं पर प्रकाश डालने वाली किसी पत्रिका में मैंने एक लेख लिखा था, जिसमें मैंने इस वात पर खुशी ज़ाहिर की थी कि शीघ्र ही विधान-मंडलों की सीटों पर पंडित मोतीलाल नेहरू और देशवन्धु दास शोभायमान होंगे।

असेम्वली में

पंडित मोतीलाल नेहरू ने असेम्वली में स्वराज्य-पार्टी के नेता की हैसियत से देश की जो सेवा की है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरी राय में वह संसदीय पद्धति के सवसे प्रकांड पंडित और विश्व की विधान सभाओं के सवसे वड़े नेताओं में से थे।

व्यक्तिगत रूप से पंडित मोतीलाल की जो सेवाएं रही हैं, उनका पूरा लेखा-जोखा यदि उपस्थित किया जाए तो एक भारी-भरकम पोथा तैयार हो जाएगा। एक लेख में ये सारी वातें कैसे दी जा सकती हैं? फिर भी देश की आज़ादी की लड़ाई में मोतीलालजी ने जो उल्लेखनीय योगदान दिया उसका कुछ

संकेत मैं यहां करना चाहता हूं। १९२१ के वित्त-कमीशन ने विशिष्ट उद्योगों को संरक्षण प्रदान करने की स्वीकृत नीति को क्रियान्वित करने के लिए टैरिफ बोर्डों की स्थापना की सिफारिश की थी। १६ फरवरी, १९२३ को लोहा तथा इस्पात, सीमेन्ट तथा सूती कपड़ा उद्योग को संरक्षण प्रदान करने के लिए मेरा एक प्रस्ताव असेम्बली में पास हो गया था। इसी प्रस्ताव के अनुसार टैरिफ बोर्डों की स्थापना की सिफ़ारिश की गई थी। टैरिफ बोर्डों पर इस बात का निर्णय करने का भार छोड़ दिया गया था कि किन उद्योगों को संरक्षण की आवश्यकता है। प्रथम महायुद्ध में देश के एक सबसे बड़े उद्योग लोहा तथा इस्पात उद्योग का प्रबन्ध भारतीय हाथों में आ गया। भारत सरकार यह समझ रही थी कि कि यह क्रम आगे बढ़ेगा। वह साम्राज्य की रक्षा के लिए लोहा तथा इस्पात उद्योग को ब्रिटिश हाथों में रखना आवश्यक समझती थी। इसीलिए भारत सरकार छिपे तौर से यह कोशिश कर रही थी कि टाटा का दिवाला निकल जाए। वह लोगों पर दबाव डाल रही थी कि वे टाटा में लगी अपनी पूंजी निकाल लें, ताकि टाटा अंत में अपने कारखाने को किसी ब्रिटिश कंपनी के हाथ बेचने के लिए मजबूर हो जाए। टाटा ने भारत सरकार से अनुरोध किया था कि वह यदि गारन्टी देने को तैयार हो जाय तो उन्हें विदेशों से ४ करोड़ रुपये का ऋण प्राप्त हो जाएगा, परन्तु लार्ड रीडिंग की सरकार ने किसी किस्म की गारन्टी देने से इनकार कर दिया। टाटा के सामने अब दो ही रास्ते रह गये। वह या तो अपने कारखाने को बन्द कर दें या उसे किसी ब्रिटिश कंपनी के हाथ बेच दें। इसी समय ग्वालियर के महान् देशभक्त महाराज स्वर्गीय माधवराव सिंधिया ने टाटा को २ करोड़ रुपये का कर्ज़ देकर अस्थायी रूप से उन्हें बचा लिया। उस समय पंडित मोतीलाल नेहरू ने ही इस उद्योग की रक्षा की। उन्होंने असेम्बली में टैरिफ कमीशन की सिफ़ारिशों के आधार पर एक प्रस्ताव रखकर मांग की कि इस्पात तथा लोहा उद्योग को यथेष्ट संरक्षण प्रदान किया जाए। उनका यह प्रस्ताव अन्त में पास हो गया और आज यदि यह फलता-फूलता उद्योग भारतीयों के हाथ में है तो इसका सारा श्रेय स्व० पंडित मोतीलाल नेहरू को है। भारतीय मिलों में बने सूती वस्त्र पर से उत्पादन-शुल्क हटवाने में भी उन्होंने मदद दी थी। यह उत्पादन-शुल्क भारतीय मिलों में बने कपड़े को लंकाशायर के मुकाबले में महंगा बना देता था। भारत सरकार की यह नीति भारतीय सूती मिलों के गले में चक्की का पाट बांध देने के समान थी। पंडित मोतीलाल ने इस चक्की के पाट को हटवाकर नव-विकसित भारतीय सूती वस्त्रोद्योग को अकाल-मृत्यु से बचा लिया। यही नहीं, उन्होंने असेम्बली में प्रस्ताव रखा कि विदेशों से आयात किये जाने वाले सूती कपड़े पर चुंगी लगाकर भारतीय वस्त्रोद्योग को संरक्षण प्रदान किया जाए। उनका यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने से भारतीय सूती वस्त्रोद्योग को भारी मदद मिली। अब विदेशों से सूती कपड़े का आयात एक बीते युग की कहानी बन गई है। आज तो भारत स्वयं विदेशों को सूती कपड़े का निर्यात करता है। इसी प्रकार पंडित मोतीलाल ने सीमेंट उद्योग को भी संरक्षण दिलाने में मदद दी। संरक्षण प्राप्त होने से पूर्व सीमेंट उद्योग अनेक कठिनाइयों के दौर से गुज़र रहा था। पंडित मोतीलाल ने असेम्बली में एक प्रस्ताव रखकर मांग की कि विदेशी सीमेन्ट पर भारी आयात-कर लगाकर भारतीय सीमेंट उद्योग को संरक्षण प्रदान किया जाए। उनका यह प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हो गया।

महान् संसदीय नेता

इसके साथ ही, मैं उस समझौते को नहीं भुला सकता, जो उन्होंने एकाधिकार की मनोवृत्ति रखने वाली विदेशी जहाज़ी कम्पनियों की प्रतिनिधि-स्वरूप बी०, आई० एस० एन० तथा पी० एण्ड ओ० स्टीमशिप कम्पनीज़ तथा एकमात्र भारतीय जहाज़ी कम्पनी, सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी के बीच कराया था। इस समझौते के ज़रिये भारतीय समुद्रतटवर्ती क्षेत्र में यात्रियों तथा माल को ढोने का काम भारतीय कम्पनियों को मिल गया। आज जबकि हमने पूर्ण स्वाधीनता पा ली है और हम देश के औद्योगिक पुनर्निर्माण की दिशा में तेज़ी से बढ़ रहे हैं तो यह कल्पना करते हुए सिहरन पैदा होती है कि अगर

हमारे पास पंडित मोतीलाल नेहरू की कोटि का नेता न होता तो देश का क्या भविष्य होता। यह उन्हीं का दम था कि उन्होंने इन उद्योगों को भारतीयों के हाथ में बनाये रखने का प्रस्ताव पास करा लिया। उन दिनों उन्होंने संसद का जिस रीति से नेतृत्व किया वह असाधारण था। मैं बिना किसी अतिशयोक्ति के कह सकता हूं कि उनकी कोटि का कोई दूसरा संसदीय नेता उस वक्त नहीं था और आज भी वैसा नेता पाना कठिन है जो अपनी ही पार्टी नहीं, दूसरी पार्टी के सदस्यों को भी अपने विचारों से प्रभावित कर लेता था।

एक घटना

इस लेख को समाप्त करने से पूर्व मैं भारत माता के इस महान् पुत्र की एक निजी घटना का वर्णन करके अपनी श्रद्धांजलि भेंट करना चाहता हूं, जिसके कारण मेरे लिए वह और अधिक सम्मान और आदर का पात्र हो गया। १९२४ में भारतीय स्वराज्य के पक्ष में इंगलैंड और स्काटलैंड में तूफानी प्रचार-कार्य के बाद जब श्रीमती बीसेंट भारत आईं तो मैं उनके साथ शिमला गया। वहां पर मुझको मुडीमैन कमेटी के सामने गवाही देने को बुलाया गया था। श्रीमती बीसेंट और मैं असेम्बली के अध्यक्ष के बाईं ओर एक विशेष कक्ष में बैठे थे। पंडित मोतीलाल नेहरू लपककर मेरे पास आये और मुझे सीने से लगा लिया। इसके बाद वे श्रीमती बीसेंट से भी इसी स्नेह से मिले। मोतीलालजी ने कहा, "श्रीमती बीसेंट, आप अद्भुत महिला हैं।" बाद में श्रीमती बीसेंट से बातचीत के दौरान में उन्होंने वादा किया कि इस वर्ष के अन्त तक मैं आपको असेम्बली के सदस्यों के समक्ष कॉमन वेल्थ आफ इंडिया बिल पर भाषण करने का अवसर प्रदान करूंगा। श्रीमती बीसेंट ने इंगलैंड की लोकसभा में पेश करने के लिए बिल तैयार किया था। परन्तु, इसका मौका नहीं आ सका, क्योंकि हिन्दू-मुसलमान तनाव बढ़ जाने पर गांधीजी ने अपना स्वास्थ्य ठीक न होने के बावजूद २१ दिन का उपवास आरम्भ कर दिया। इससे सारे देश तथा संसार का ध्यान उनकी ओर खिंच गया। मैंने मोतीलालजी को एक कड़ा पत्र लिखा कि "गांधीजी के साथ काम करने वाले बहुत से व्यक्तियों को बहाना मिल जाया करता है कि वे श्रीमती बीसेंट को दिये गए वचनों को पूरा न करें, हालांकि श्रीमती बीसेंट भी गांधीजी के समान महान् नेत्री हैं।" मोतीलालजी ने बहुत समय तक मेरे इस पत्र का जवाब नहीं दिया, जिससे मुझे भारी आश्चर्य हुआ। बाद में जब गांधीजी का उपवास सकुशल समाप्त हो गया तो लगभग एक वर्ष बाद वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में भाग लेने के लिए बम्बई आये। नेहरू-रिपोर्ट उस वक्त तक प्रकाशित हो चुकी थी और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास करके उस रिपोर्ट के लिए पंडित मोतीलाल को बधाई दी गई। बैठक समाप्त होने पर पंडितजी ने मुझे देख लिया। उन्होंने मुझसे कहा कि क्या तुम मुझको अपनी कार में जुहू (जहां पंडितजी ठहरे थे) पहुंचा दोगे। इस भीड़-भाड़ में बड़ा अकेलापन महसूस कर रहा हूं और तुम्हारे साथ मोटर में चलने में मुझे भारी खुशी होगी। मैं तुरन्त राज़ी हो गया। कार में बैठते ही उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मुझसे नाराज़ हो। मैंने पूछा, "क्यों?" वे बोले, "क्योंकि, मैंने अब तक तुम्हारे पत्र का उत्तर नहीं दिया।" मैंने कहा, "नहीं! मैं समझा कि आप बहुत व्यस्त होंगे। इसके अलावा मैंने सोचा कि मैं पत्र में बहुत-सी ऊल-जलूल बातें लिख गया, जो मेरे लिए उचित नहीं था।" वे मुस्कराए और मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले, "देखो प्रिय जमनादास, मेरी साफगोई पर तुम बुरा मत मानना, क्योंकि मैं तुममें और जवाहरलाल में कोई फर्क नहीं मानता। तुम दोनों मेरे लिए प्रिय हो। तुम जानते हो कि इतिहास में ऐसी बहुत-सी मिसालें मिल जाएंगी, जहां एक महान् नेता को उसके अंध-अनुयायियों ने पथ-भ्रष्ट कर दिया। मैं जानता हूं कि तुम अंध-अनुयायियों में नहीं हो। तुमको मालूम होना चाहिए कि १८९३ में जब से श्रीमती बीसेंट भारत आईं, तब से मैं अपने युग की इस सबसे महान् विभूति के प्रति बड़े आदर और प्रेम की भावना

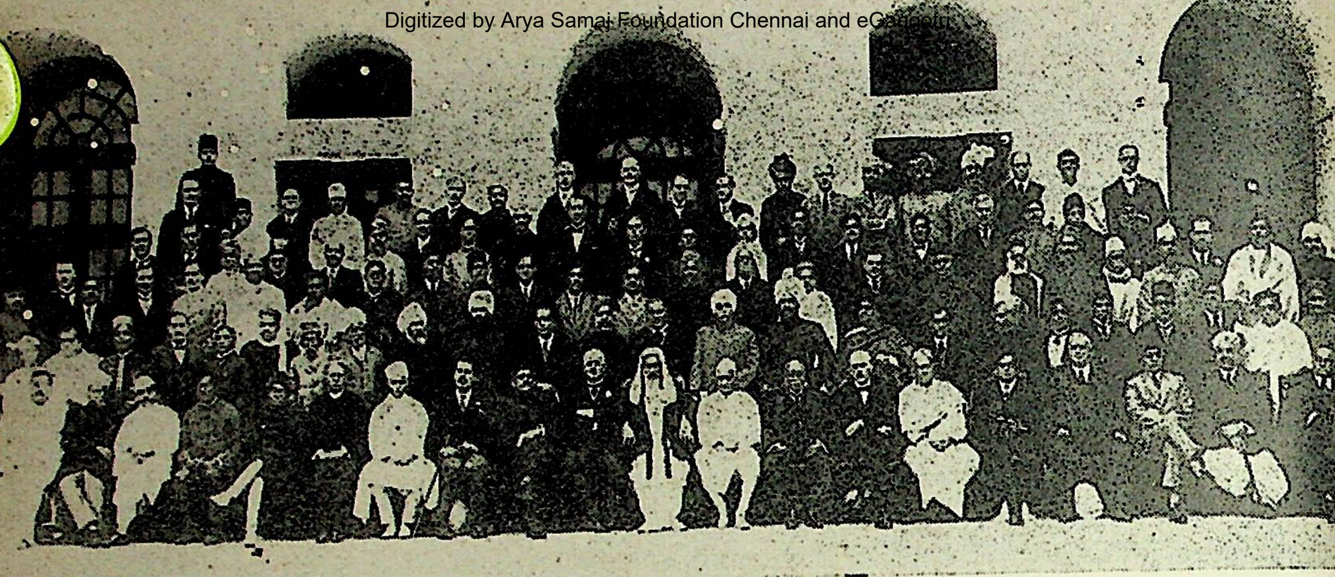

लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के साथ, १९२७

रखता हूं। उनके अंध-अनुयायी हर समय उनकी स्तुति में लगे रहते हैं। वे समझते हैं कि इस रीति से वे आध्यात्मिक-जगत् में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेगे। परन्तु, जमनादास तुम इन लोगों में नहीं हो। तुम कभी यह नहीं चाहोगे कि इस युग की एक सबसे महान् विभूति इस प्रकार अंध-विश्वासों से घिर जाए कि उसके सच्चे प्रशंसक उसके पास तक जाने से डरने लगें। उनकी यह नसीहत सीधे मेरे हृदय में उतर गई। मैंने सदा इस महान् नेता की स्पष्टवादिता की सराहना की है। स्पष्टवादिता के अलावा उनमें बड़ी जबरदस्त समझदारी थी। वे सभी मामलों में, वे चाहे राष्ट्रीय मामले हों और चाहे व्यक्तिगत मामले हों इसी समझदारी का परिचय देते थे।

मैंने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक उस महान् व्यक्ति के कार्यों की एक झांकी प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, जो १९२९ में लार्ड इर्विन से समझौता-वार्ता विफल हो जाने के बाद १९३० में एक बार फिर सत्याग्रह आन्दोलन में कूद पड़ा, जेल गया और जेल से छूटने के बाद ७० वर्ष की अवस्था में उसकी इहलीला समाप्त हो गई। बम्बई और अहमदाबाद की औद्योगिक नगरियों को उसका एक शानदार स्मारक बनाना चाहिए, जो इस देश का सबसे महान् नेता था और जिसका त्याग इस महान् देश के इतिहास में अनुपम था।

कुछ यादगारें

नवाब अहमद सैयद छतारी

बालिग़ होने पर जब मेरी जायदाद कोर्ट आफ वार्ड्स से छूटकर मेरे हाथ में आ गई तो मुझे अक्सर इलाहाबाद जाने का मौक़ा मिलता था। इन मौक़ों पर कई बार मुझे पंडित मोतीलाल से मिलने व आनन्द भवन में उनका मेहमान बनने की खुशकिस्मती हासिल हुई। पंडितजी हमेशा मुझ पर बड़ी मेहरबानी रखते थे। उस ज़माने के नौजवानों को उनसे बड़ी रहनुमाई मिलती थी। मेरे दिल में पंडितजी की क्या जगह थी, यह बताने के लिए उनके मरने पर मैंने यू० पी० असेम्बली में जो तक़रीर दी थी, उसी से यहां कुछ हिस्सा देना वाजिब होगा :

"पंडित मोतीलाल मुल्क के सबसे बड़े नेताओं में से थे। उनमें दिल और दिमाग़ की कई खूबियां थीं, पर उनकी सबसे बड़ी खूबी थी अपनी मातृभूमि के लिए बेइन्तिहा मुहब्बत। उन्होंने देश की सेवा के लिए सब कुछ निछावर कर दिया। देश के लिए उन्होंने जिस तरह मुसीबतें झेली और हंसते-हंसते कुर्बानियां कीं, वह सचमुच अचरज की बात है। उनकी मौत देश का भारी नुकसान है। मेरा यह जाती नुकसान है, क्योंकि मुझे उनका दोस्त होने की खुसकिस्मती हासिल थी। खुदा ही जानता है कि इस नाजुक मौके पर पंडित मोतीलाल जैसे आदमी का गुज़रना भारत के लिए कितना बड़ा नुकसान है।"

"पंडित मोतीलाल गज़ब के जहनदार आदमी थे। वे अपनी तकरीरों में ऐसी ज़बरदस्त दलीलें देते थे कि विरोधियों के मुंह बंद हो जाते थे। वे इतने पुरमज़ाक थे कि उनका कोई जवाब नहीं बन पड़ता था। उनके दिल में ज़बरदस्त देश प्रेम था, जिसके लिए उन्होंने हर तरह की बड़ी से बड़ी कुर्बानी की।

दृढ़ चरित्र

पंडित मोतीलाल ऊंचे करेक्टर के आदमी थे। वे अपने उसूलों के लिए हर तरह की कुर्बानी करने को तैयार रहते थे। इस सिलसिले में मुझे एक वाकिया याद आता है। मई १९२३ में लिबरल पार्टी के मन्त्रियों सर सी० वाई० चिन्तामणि और पंडित जगतनारायण ने इस्तीफा दे दिया। मैं गवर्नर के बुलावे पर नैनीताल जा रहा था। बरेली में जब मैं अपने डिब्बे में पहुंचा, तो मैंने देखा कि बगल की बर्थ पर पंडितजी का सामान रखा है, थोड़ी ही देर में वे भी अन्दर आ गए। वे मुझे देखकर हमेशा की तरह मुहब्बत से मुस्कराए। गाड़ी चल पड़ी। पंडितजी ने मुझसे पूछा, "क्या नैनीताल जा रहे हैं ?" मैंने जब हामी भरी तो उन्होंने पूछा, "बुलावा आया है या अपने-आप जा रहे हैं। मैंने कहा, "मुझे बुलाया गया है ?, पर नहीं जानता किस लिए।" कुछ मिनट बाद मैंने पूछा, "अगर मुझसे मन्त्री बनने के लिए कहा जाए, तो क्या मैं मंजूर करूं ?" पण्डितजी मुस्कराए और बोले, "आप मेरी तरह असहयोगी तो हैं नहीं फिर नामंजूर क्यों करेंगे ?" १९२४ के आम चुनाव नज़दीक आ रहे थे। मैं घोड़ाखाल गया, जहां पंडितजी ठहरे हुए थे, मरहूम मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और हकीम अजमलखां भी पंडितजी के साथ ठहरे थे। पंडितजी स्वराज्य-पार्टी के चुनाव-आन्दोलन की तैयारी कर रहे थे। हालांकि मैं लिबरल पार्टी में था फिर भी स्वराज्य-पार्टी के चुनाव फण्ड में चंदा देना चाहता था। मैं पंडितजी के पास पहुंचा और मज़ाक में बोला, "पंडितजी, मैंने आपकी राय लेकर मन्त्रिपद मंजूर किया, इसलिए अब आपमेरी मुखालफत नहीं कर सकते।" पंडितजी इस पर ज़ोर से हँस पड़े। बाद में मैंने पांच या छः हज़ार रुपये की रकम स्वराज्य-पार्टी के चुनाव फण्ड के लिए भेजी। पर उन्होंने मेरा चन्दा मंजूर नहीं किया और मुझे शाइस्ता उर्दू में एक खत लिखा, अब भी मेरी बेश कीमती दौलत है। वह खत सचमुच उर्दू अदब में शाहकार की हैसियत रखता है।

जन-नायक[1]

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के वाद भारत के राजनीतिक इतिहास में जो उतार-चढ़ाव आये। उस काल में पंडित मोतीलाल एक प्रमुख नेता थे। वह केन्द्रीय असेम्वली में कुछ वर्षों तक स्वराज्य-पार्टी के नेता रहे और भारत में ब्रिटिश-शासन का विरोध करने वाले त्रिगुट के वे एक शक्तिशाली स्तम्भ थे। इस त्रिगुट के अन्य दो स्तम्भ महात्मा गांधी और पंडित मदनमोहन मालवीय हैं।

पंडित मोतीलाल के प्रारम्भिक जीवन और वाद के जीवन में तीव्र विरोधाभास मिलता है। युद्ध से पूर्व के वर्षों में वे इलाहाबाद में एक विख्यात वकील की हैसियत से बड़ी शान की ज़िंदगी बिता रहे थे। वह खुले दिल से अपने भारतीय और अंग्रेज़ मित्रों का आतिथ्य-सत्कार करते थे।

युद्ध के बाद वे गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन में सम्मिलित हो गए और शीघ्र ही उसके प्रमुख नेताओं में इनकी गणना होने लगी। ग़ैरकानूनी भीड़ में शामिल होने के अभियोग में उनको कारावास का दण्ड मिला। रिहाई के बाद ही उन्होंने अपने विदेशी कपड़ों की होली जला दी और खद्दर धारण कर लिया तथा रहन-सहन का पाश्चात्य ढंग त्याग दिया। वे प्रभावशाली वक्ता थे और अपनी तीव्र मेधा-शक्ति तथा उच्च चारित्रिक गुणों के कारण कांग्रेस के चोटी के नेता माने जाते थे।

पंडित मोतीलाल नेहरू का जन्म एक धनी कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में ६ मई, १८६१ को हुआ था। इलाहावाद हाईकोर्ट के एडवोकेट की हैसियत से उन्होंने अपनी वकालत अच्छी-खासी जमा ली थी। वे ज़्यादातर दीवानी के मुकदमे करते थे। उन्होंने अपनी वकालत से जितना रुपया कमाया, उतना भारत में दो-तीन वकील ही कमा पाये। इलाहाबाद में उन्होंने अपना जो मकान बनाया, उसका नाम 'आनन्द भवन' रखा। अपने समय के सबसे सुन्दर मकानों में था। एक प्रभावशाली वक्ता तथा अत्यन्त धनी व्यक्ति होने के कारण सभाओं और सम्मेलनों की अध्यक्षता करने के लिए उनके पास अनेकानेक निमंत्रण आया करते थे। इन सभाओं-सम्मेलनों में वे बड़े ठाठ-बाट की पोशाक में जाते थे और उनके भाषणों का स्तर बहुत ऊंचा रहता था। अधिकांश कश्मीरी ब्राह्मणों की भांति वह भी राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए और १९०७ में संयुक्त प्रान्त के प्रान्तीय सम्मेलन के अध्यक्ष बने। यह सम्मेलन भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन की ही प्रतिछाया था। शीघ्र ही वे स्थानीय धारासभा के सदस्य चुन लिये गये।

१९१९ में अमृतसर के गोलीकाण्ड के वाद जव वे इलाहावाद में गांधीजी से मिले तो वे उग्रवादी राजनीतिज्ञ बन गये। उन्होंने अपने शानदार मकान को निःशुल्क पब्लिक स्कूल का रूप दे दिया और वाद में उसको कांग्रेस को उसका मुख्य कार्यालय बनाने के लिए दान कर दिया। इसके बाद वे अपने परिवार-सहित बगल के छोटे से मकान में रहने लगे। उनको अपनी पत्नी से बराबर प्रेरणा मिलती रही और उन्होंने उनके त्यागपूर्ण जीवन में पूरा साथ दिया। पंडित मोतीलाल ने एक उग्र राष्ट्रवादी समाचार-पत्र 'इंडिपेन्डेण्ट' की भी स्थापना की और उग्र राष्ट्रवादी संस्था कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये।

१९१९ में उनकी अध्यक्षता में कांग्रेस ने माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों को अस्वीकृत कर दिया और पुनर्गठित कौंसिलों के बहिष्कार का निर्णय किया। कांग्रेस ने अपने अनुयायियों से कहा कि वे उसके चुनाव में कोई भाग न लें। पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपने नवीन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अपनी वकालत छोड़ दी और असहयोग-आन्दोलन के प्रचार के लिए सारे देश का दौरा किया। गैर-कानूनी भीड़ में भाग

---

१. टाइम्स, लंदन में ७ फरवरी, १९३१ को प्रकाशित अग्रलेख का संक्षिप्त।

लेने के कारण उनको कारावास का दण्ड मिला। इसके बाद उनकी पत्नी भी पर्दा त्यागकर सार्वजनिक सभाओं में भाग लेने लगीं।

१९२२ में जेल से रिहा होने के बाद, उन्होंने स्वर्गीय श्री सी० आर० दास के प्रभाव में अपना नकारात्मक रुख कुछ हद तक त्याग दिया और १९२३ के अन्त में होने वाले आम चुनाव में केन्द्रीय असेम्बली के द्वितीय चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया। फिर भी उनका अड़ंगावादी रुख बना रहा।

१९२५ में श्री दास के निधन के बाद वह अखिल भारतीय स्वराज्य-पार्टी के अध्यक्ष हो गए। उनके पथ-प्रदर्शन में अगले वर्ष इस पार्टी का कांग्रेस में विलयन हो गया।

केन्द्रीय असेम्बली में पंडित मोतीलाल ने मुख्य विरोधी दल अर्थात् कांग्रेस दल के एक कुशल तथा प्रभावशाली नेता के रूप में कार्य किया। उनके नेतृत्व में पार्टी ने बड़े अनुशासनबद्ध तथा संगठित रूप से कार्य किया। पार्टी के सदस्य सदन में नियमित रूप से आते थे। वे सामान्य रीति से सरकारी प्रस्तावों का विरोध करते थे तथा अड़ंगा लगाते थे। परन्तु मोतीलाल नेहरू तथा उनके अनुयायियों ने केवल अड़ंगे की नीति से काम नहीं लिया, वे प्रवर समितियों की बैठक में भी भाग लेते थे।

१९२७ के आखीर में साइमन कमीशन की नियुक्ति होने पर पंडित मोतीलाल ने उसके बहिष्कार का आयोजन किया। तत्कालीन भारत-मंत्री लार्ड बर्केनहेड की चुनौती का जवाब देने में भी उन्होंने पहलकदमी की, जिन्होंने भारतीयों से राजनीतिक सुधारों की अपनी योजना तैयार करने के लिए कहा था। उनकी अध्यक्षता में सर्वदल सम्मेलन ने एक कमेटी संगठित कर दी, जिसने कुछ महीने बाद नेहरू-रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में औपनिवेशिक स्वराज्य की एक योजना प्रस्तुत की गई थी।

देश में राजनीतिक सरगर्मियां बढ़ने लगीं और १९२८ के अन्त में पंडित मोतीलाल की अध्यक्षता में कलकत्ता में कांग्रेस का जो ४३वां वार्षिक अधिवेशन हुआ, उसमें ब्रिटिश माल के बहिष्कार की सिफ़ारिश की गई। इसके साथ ही उसमें गांधीजी का यह प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया गया कि यदि १९२९ के अन्त तक ब्रिटिश सरकार नेहरू-रिपोर्ट में प्रस्तावित संविधान को पूरी तरह स्वीकार न कर ले तो कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन तथा करबन्दी आन्दोलन चलायेगी। पंडित मोतीलाल नेहरू के सुपुत्र पंडित जवाहरलाल नेहरू ब्रिटेन से सारे सम्बन्ध तोड़कर पूर्ण स्वाधीनता के पक्ष में प्रचार कर रहे थे।

१९२९ का अन्त होने से पहले ही वायसराय ने भारत के प्रति ब्रिटिश नीति के लक्ष्य की घोषणा की। पंडित मोतीलाल ने गांधीजी और अन्य नेताओं के स्वर में स्वर मिलाकर वायसराय से एक ऐसा आश्वासन मांगा, जो वह दे नहीं सकते थे। उन्होंने मांग की कि प्रस्तावित गोलमेज़ सम्मेलन का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर संविधान तैयार करना होगा, जिसका ब्रिटिश सरकार समर्थन करेगी। वायसराय ने लाज़मी तौर से इस मांग को मानने से इनकार कर दिया। इसके बाद ही लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन हुआ, जिसमें घोषित किया गया कि औपनिवेशक स्वराज्य की नेहरू-योजना रद्द कर दी गई है तथा कांग्रेस के अन्दर सभी दलों से अपील की गई कि वे पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए प्रयास करें।

ऐसा खयाल किया जाता है कि पंडित मोतीलाल नेहरू इस उग्र मार्ग को पसन्द नहीं करते थे, परन्तु वे अपने पुत्र से इतना प्रेम करते थे, जिसने एक बड़ा ही उत्तेजनापूर्ण अध्यक्षीय भाषण दिया था कि वे क़ांग्रेस से अपना नाता नहीं तोड़ सकते थे। इसके बजाय वह १९३० में शुरू किए गये सत्याग्रह आन्दोलन में कूद पड़े। जुलाई के शुरू में उनको ६ महीने की सज़ा दी गई। कुछ सप्ताह बाद स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उनको मुक्त कर दिया गया।

६ फ़रवरी, १९३१ को पंडित मोतीलाल नेहरू का देहान्त हो गया।

महान् योद्धा

डी० ई० धनपाल

मुझे कई बार उस व्यक्ति से मिलने का मौक़ा मिला, जिसने देश के राष्ट्रीय जीवन में इतनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। हर बार मेरे मन में यही प्रश्न उठा कि एक सामान्य-से दिखाई पड़ने वाले व्यक्ति में इतनी अधिक महानता कैसे निहित हो सकती है। मोतीलाल नेहरू से पहली बार मिलने वाले के मन पर यही प्रभाव पड़ता था कि उसकी मुलाक़ात एक उल्लेखनीय व्यक्ति से हुई है।

प्रभावशाली व्यक्तित्व

उनकी सुदृढ़ ठोढ़ी, उन्नत ललाट और चमकती आंखें प्रकोष्ठ में छिपे हुए लाल गलीचों और अंगरक्षकों से अधिक प्रभाव डालती थीं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त तेजस्वी था और अधिकांश लोग उनके सामने बौने-से दिखाई पड़ते थे।

मैं जब भी उनके बारे में सोचता हूं तो अक्तूबर मास की वह शाम बराबर याद आ जाती है, जब मैं उनसे मिलने गया था। पुराने आनन्द भवन के बढ़िया लॉन पर मखमली घास का हरा गलीचा बिछा था। वह आराम कुर्सी पर बैठे, अब्दुल्ला सिगरेट पीते हुए, उस दिन का अखबार देख रहे थे। उनका एक पैर दूसरे पैर के ऊपर रखा था। उनको देखकर एक ऐसे व्यक्ति का चित्र सम्मुख आ जाता था जिसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की हो और अब जीवन के सुख का उपभोग कर रहा हो।

लार्ड रोजबरी ने अपने जीवन की तीनों महत्वाकांक्षाएं अर्थात् प्रधानमंत्री बनना, डर्बी की लाटरी जीतना और राज्य की सबसे धनी महिला से शादी करना पूरी कर ली थीं। वह अनेक लोगों की ईर्ष्या के पात्र बन गए थे। बोनर लॉ जैसा आदमी भी इंगलैंड का प्रधानमंत्री बन चुका है। डर्बी के लायक घोड़े खरीदने की अगर क्षमता हो तो कोई मूर्ख व्यक्ति भी डर्बी जीत सकता है। कोई धूर्त व्यक्ति भी किसी राज्य की सबसे धनी महिला से शादी कर सकता है। पंडित मोतीलाल नेहरू को जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसके मुकाबले लार्ड रोजबरी की उपलब्धियां तुच्छ लगती हैं।

भारत के चोटी के वकील का दर्जा प्राप्त कर लेना, कांग्रेस का दो बार अध्यक्ष चुन लिया जाना, अपने सामने ही अपनी गद्दी पर अपने पुत्र को आसीन होते देखना, ३० करोड़ व्यक्तियों द्वारा अपना अप्रतिम सेनानी स्वीकार किया जाना इन सम्मानों के आगे मांटी क्रिस्टे का वैभव और ट्राय की हैलेन का अप्रतिम सौंदर्य भी फीका जंचता है। उनका परिवार उतना ही महान् था, जितना महान् गुज़रे ज़माने में आस्ट्रिया का शाही परिवार माना जाता था। नेहरू की उपाधि का मतलब ही था शासक-परिवार का सदस्य होना। लाखों व्यक्ति उनका हुक्म बजा लाने के लिए तैयार रहते थे। आनन्द भवन भारतीय राजनीति का केन्द्रबिन्दु प्रतीत होता था।

उनसे कोई राजकीय सम्मान नहीं प्राप्त हुआ। यह उनके लिए श्रेय की ही बात मानी जाएगी। जहां तक राष्ट्रीय भावनाओं का सवाल है, उनको जितना सम्मान प्राप्त था, उतना मिकाडो अथवा प्रधान लामा को भी प्राप्त न होगा। समूचे राष्ट्र का विश्वास, समूचे राष्ट्र का सम्मान तथा समूचे राष्ट्र की श्रद्धा उनके चरणों में लोटती थी।

महान त्याग

मोतीलाल नेहरू अद्वितीय व्यक्ति थे। अपने वैभवपूर्ण जीवन के उच्च शिखर से उतर कर उन्होंने खद्दर और देश सेवा का व्रत ग्रहण कर लिया था।

एक समय आनन्द भवन में शराब के दौर चला करते थे। उनके सूट सीधे बांड स्ट्रीट से सिलकर आते और कपड़े धुलने के लिए पेरिस जाते थे। परियों की कहानी वाले राजकुमार जैसा उनका जीवन था। राजनीति उनका एक शुगल था और राष्ट्रीय भावनाएं मज़ाक लगती थीं।

जवानी के दिनों में देशभक्त बनना आसान काम है। उस समय कोई भी त्याग, कोई भी बलिदान ऐसा नहीं जो न किया जा सके। लेकिन जीवन के संध्याकाल में पहुंच कर, जब मनुष्य विश्राम करने की ईच्छा करने लगता है, राष्ट्रीय कार्यों में मन-वचन-कर्म से जुट जाना, कहने में जितना आसान लगता है, करने में उतना सरल नहीं होता। वे राष्ट्रीय कार्यों में उस समय कूद पड़े जिस समय दूसरे लोग उससे पीछे हटने लगते हैं।

कांग्रेस में मोतीलाल नेहरू के आ जाने से उसमें गम्भीरता और यथार्थवादिता आ गयी। इससे कांग्रेस को स्थायित्व और सुदृढ़ता प्राप्त हुई। उसे गम्भीर और व्यवहारिक बुद्धिवाला नेता मिल गया जो उसके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जूझने को तैयार था। वह उस प्रकार के भावुक व्यक्ति नहीं थे जो मृगतृष्णा के पीछे दौड़ते हैं अथवा सपनों के महल खड़े करते हैं।

कुशल संसदीय नेता

लार्ड बर्केनहेड ने जब साइमन कमीशन की नियुक्ति की तब वह जानते थे कि उसमें एक भी भारतीय सदस्य की नियुक्ति न किये जाने से भारत में उनका तीव्र विरोध होगा। लेकिन वह शायद सोचते थे कि भारतीय लोग शायद ही कभी एक मत होकर अपने संविधान का स्वत: निर्माण कर सकेंगे। वह जैसे चुनौती दे रहे थे, "आप लोग हमेशा आपस में ही लड़ते-झगड़ते रहते हैं। एक-दूसरे का गला काटने को तैयार हैं। अगर आपमें साहस है तो आप स्वयं अपनी मर्ज़ी का संविधान तैयार करिए। मैं बाज़ी लगा सकता हूं कि आप इस कार्य में सफल नहीं हो सकेंगे।"

लेकिन उन्होंने यह चुनौती देते समय मोतीलाल नेहरू का ध्यान नहीं रखा। मोतीलाल नेहरू ने एक आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाया। उन्होंने कुछ सप्ताहों के भीतर ही एक रिपोर्ट तैयार कर ली जो लार्ड बर्केनहेड द्वारा किये गए राष्ट्रीय अपमान का मुंहतोड़ जवाब था। उनके द्वारा किए गए इस अपमान से सारे राष्ट्र में एक भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ, जिसका वेग दिन-पर-दिन बढ़ता ही गया। हरएक की ज़बान पर मोतीलाल नेहरू का ही नाम था। यह रिपोर्ट केवल एक रिपोर्ट ही नहीं थी, बल्कि एक लोकप्रिय पुस्तक बन गयी, जिसकी हज़ारों प्रतियां हाथों-हाथ बिक गयीं।

कांग्रेस में मोतीलालजी की वही स्थिति थी जो मज़दूर दल में वेव-दम्पति की थी। वे कांग्रेस के मस्तिष्क थे। वह बहुत ठंडे दिमाग़ के आदमी थे, लेकिन उनकी फुर्ती युवकों को मात करती थी। सार्वजनिक सभाओं में पंडित मोतीलाल नेहरू का भाषण बहुधा स्फूर्तिदायक नहीं होता था, क्योंकि उनमें कोई युग-संदेश अथवा संतों जैसा उपदेश नहीं होता था।

लेकिन चाहे अदालत का कमरा हो और चाहे असेम्बली का भवन, उनका जुझारूपन देखते ही बनता था। वे एक अद्वितीय योद्धा थे। मुक़दमा जितना पेंचीदा होता था, उनका जुझारूपन उतना ही बढ़ जाता था। वे बड़े पैने वार करते थे। उस समय उनकी सारी सुस्ती जाती रहती थी। वे बड़े कुशल दांव-पेंच दिखाते थे। वे सबसे कमज़ोर स्थलों पर सबसे कठोर प्रहार करते थे तथा अपने को प्रतिपक्षी की गिरफ्त में नहीं आने देते थे।

वह प्रतिपक्षी पर हमला करके ही अपना बचाव किया करते थे। वह प्रतिपक्षी द्वारा चुने गए

स्थान पर उससे मोर्चा नहीं लेते थे। वह हमेशा अपना नया मोर्चा खड़ा कर लिया करते थे और इससे पहले कि प्रतिपक्षी को मालूम हो सके कि क्या होने जा रहा है, लड़ाई का नक्शा बदल जाता था और प्रतिपक्षी को हमला करने के बजाय अपना बचाव करने पर मजबूर होना पड़ता था। सार्वजनिक सुरक्षा बिल पर होने वाली बहस में उसका युद्ध-कौशल भली प्रकार देखने में आया। बिल को वापस ले लेने की अपील करने के बजाय उन्होंने एक व्यवस्था सम्बंधी प्रश्न उठाया। उन्होंने १९१५ के गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया ऐक्ट के उद्धरण देते हुए कहा कि असेम्बली को इस प्रकार का कोई कानून बनाने का अधिकार नहीं है, जिससे अंग्रेजों के अधिकारों, स्वतंत्रता और प्राधिकारों पर आंच आती हो उन्होंने अंग्रेज़ों के स्वतन्त्रता के अधिकारों पर बहुत अधिक बल दिया। यह उनके युद्ध-कौशल का एक उदाहरण था। उन्होंने बचाव करने के बजाय अपनी ओर से हमला बोल दिया, जिसकी वजह से लड़ाई का सारा नक्शा बदल गया।

मोतीलालजी पेशेवर भाषणकर्त्ता नहीं थे, जो हर विषय पर गरम जोशीले भाषण देने को तैयार रहते हैं। वह इस बात की परवाह नहीं करते थे कि जनता उनके भाषण पर अवश्य तालियां पीटे। वे तालियां पिटवाने के लिए कोई भाषण नहीं देते थे। वे किसी महत् कार्य को लेकर, किसी उद्देश्य को लेकर समर-भूमि में उतरते थे और उस समय वह जो युद्ध-कौशल दिखाते थे, उसमें सारे देश में उनका कोई सानी नहीं था। वह राष्ट्र के लिए दैवी वरदान के समान थे।

मोतीलालजी अगर कहीं पुराने ज़माने में पैदा हुए होते तो उनकी गाथाएं इतिहास के पन्नों में अंकित हो जातीं। नाविक लोग निर्जन सागर के वक्ष पर तैरते हुए उनकी प्रशंसा के गीत गाते और चारण लोग छिटकी हुई चांदनी में बैठकर उन की यश-गाथाएं सुनाते। हम लोग कल्पनारहित हो गए हैं, लेकिन व्यक्ति-पूजा की पुरानी भावना हमारे दिलों में अब भी मौजूद है। यह सही है कि हम आज चारणों की भांति उनकी प्रशंसा के गीत नहीं गाते, लेकिन अपने परिवार के बीच बैठकर तथा विधान भवन के कक्षों में हम आज भी उनका जस बखानते हैं।

आनन्द भवन अब एक तीर्थ-स्थल बन गया है। आज भी उसके ऊपर दोपहर का सूरज चमकता है, लेकिन उसके विशाल कमरों में और आलीशान ड्राइंग रूम में विषाद छाया रहता है, जिसे एक संत की मुसकान भी दूर नहीं कर पाती और जवाहरलाल नेहरू जब अपने पिता की खाली कुर्सी में बैठते होंगे तो उन्हें उनका स्नेहपूर्ण करस्पर्श याद आता होगा। उन्हें वे दिन याद होंगे जब इस घर में उनकी आवाज़ गूंजा करती थी। आज वह गूंज कहीं सुनाई नहीं पड़ती। इन पुरानी यादों पर उनकी आंखों से निश्चय ही गर्वभरे आंसू ढरक पड़ते होंगे।

क्रान्तिकारियों के मित्र

एन० के० भारतीय

जिन लोगों को मोतीलालजी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनमें आज बहुत थोड़े व्यक्ति जीवित बचे हैं, जिनमें मैं भी हूं। मैं उनके सम्बन्ध में एक सच्ची, सनसनीखेज़ घटना पर प्रकाश डालता हूं। कौंसिलों के चुनाव-प्रचार के सिलसिले में पंडितजी प्रायः कानपुर आते थे। इन्हीं दिनों मुझे उनसे मिलने और उनका विश्वासपत्र बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने मुझे १९३० में शुरू होने वाले सत्याग्रह-आन्दोलन के सम्बन्ध में कुछ गुप्त तथा भारी उत्तरदायित्व के कार्य सौंपे।

उन चिरस्मरणीय दिनों में कानपुर संघर्ष समिति ने मुझे छिपकर आन्दोलन का पथप्रदर्शक और नेतृत्व करने के लिए नियुक्त किया था। यह मेरा सौभाग्य था कि पंडितजी और श्री चन्द्रशेखर आज़ाद के बीच, जो तत्कालीन सोशलिस्ट रिपब्लिक आर्मी के सेनाध्यक्ष थे, सम्पर्क बनाये रखने का काम भी मेरे ही ज़िम्मे था। उन दिनों भारत युगों की निद्रा के बाद जागा था। मैं सोशलिस्ट रिपब्लिक पार्टी का सहयोगी सदस्य था और मुझे आदरणीय पंडितजी से इलाहाबाद में उनके निवास-स्थान पर मिलने का कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनका घर उन दोनों राष्ट्रीय नेताओं का अड्डा था।

इसी तरह की एक मुलाक़ात के समय पंडितजी से मैंने सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के नेताओं द्वारा किये जाने वाले अच्छे कार्यों का ज़िक्र किया। जब मैंने बताया कि उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त के विख्यात शिनवारी विद्रोह का आयोजन इसी पार्टी के नेताओं ने किया था, तो वह ठहाका मार कर हँसे। स्पष्टतः मोतीलालजी ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह केवल प्रचार है।

लेकिन पंडितजी का यह स्वभाव नहीं था कि वह अपनी बात को सही साबित करने के लिए ही दूसरे की बात पर विश्वास न करें। उन्होंने कृपा करके मुझे अपनी बात की सच्चाई साबित करने का अवसर दिया।

कठिन कार्य

उस समय सरदार विट्ठलभाई पटेल ने पेशावर जांच कमेटी की रिपोर्ट पूरी कर ली थी। लेकिन पुलिस ने इस रिपोर्ट की प्रतियां ज़ब्त कर ली थीं। सत्याग्रह आन्दोलन के विभिन्न केन्द्रों तक इस रिपोर्ट को पहुँचाना बिलकुल असम्भव हो गया था।

मोतीलालजी ने मेरी ओर मुड़कर पूछा, "क्या तुम रिपोर्ट की प्रतियों को पेशावर, लाहौर, बम्बई आदि स्थानों तक पहुँचा सकते हो।" मैंने बड़ी तत्परता के साथ यह कार्य स्वीकार कर लिया। इसको पूरा करने के लिए उन्होंने मुझे एक माह का समय दिया।

उसी रात को निश्चित समय तथा स्थान पर मुझे रिपोर्ट की प्रतियां मिल गईं। आधी रात का समय था। मुझे रिपोर्ट का बंडल लेकर मोटर कानपुर सही-सलामत पहुँच गई। मैंने अपने एक उद्योगपति मित्र को जगाया तथा उनसे इन प्रतियों को बक्से में बंद करने के बाद बायलर रूम में रखने का अनुरोध किया। मैंने उन्हें यह हिदायत दी कि यदि पुलिस तलाशी लेने आए तो वह उन्हें भट्ठी में डलवा दें।

इसके बाद मैंने देशभक्त डाक्टर श्री बाबा रामसिंह भल्ला से सम्पर्क स्थापित किया। डाक्टर भल्ला

(दुःख है कि वह अब नहीं रहे) सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के शुभचिंतक माने जाते थे। उन्होंने इसके बहुत से सिपाहियों को आवश्यकता पड़ने पर डाक्टरी सहायता पहुंचाई थी। उन्होंने वर्षों तक लन्दन में डाक्टरी की थी और वहां काफ़ी रुपया कमाया था।

मैंने अपनी समस्या डा० भल्ला के सामने रखी और उनसे रिपोर्ट की प्रतियां यथास्थान पहुंचाने में सहायता मांगी। उनके सूटकेस और डाक्टरी बैग में इन प्रतियों को भरने की योजना बनाई गई। डाक्टर भल्ला ने वही सूट पहना, जिसे पहनकर वह सदन से स्वदेश लौटे थे। वह लाहौर गए और वहां से फ्रन्टियर मेल में सवार हुए। वह उस विशेष बोगी में बैठे जो बम्बई पायर से पेशावर के लिए प्रति सप्ताह लन्दन जाने वाला जहाज़ पकड़ने के वास्ते लगती थी।

वह अपने को बचाते हुए पेशावर पहुंचे और वहां निर्दिष्ट व्यक्ति को प्रतियां दीं। लौटते समय उन्होंने रावलपिण्डी, लाहौर और जालन्धर में भी रिपोर्ट की प्रतियां बांट दीं।

मुझे उस समय बहुत ही खुशी हुई, जब डा० भल्ला पांचवें दिन ही लौट आए। मैंने इन प्रतियों के वितरण की रसीदें एकत्र कीं और मैं मोतीलालजी के पास इलाहाबाद पहुंचा। उन्होंने मधुर मुस्कराहट के साथ मेरा स्वागत किया। उन्हें यह आशा नहीं थी कि मैं उनसे हफ्ते-भर के भीतर ही मिलूंगा।

उन्होंने पूछा, "तो तुम अपने काम में नाकामयाबी का इज़हार करने के लिए आए हो।" इसके बाद उन्होंने अपनी चमकती आंखें मेरी ओर घुमाकर कहा, "तुम्हारे पास कोई सफाई है?"

अब उन्हें चकित करने का मौक़ा मेरा था। मैंने धीरे से रसीदों को अपनी जेब से निकाला और उन्हें उनके चरणों पर डाल दिया। मोतीलालजी ने उन्हें उठा लिया और कुछ देर तक देखते रहे। मैंने आश्वासन दिया कि ये जाली दस्तख़त नहीं हैं।

काम अच्छी तरह हुआ

पंडितजी बड़े प्रभावित हुए। वह अपनी आरामकुर्सी से उठे और मेरे निकट आकर उन्होंने मेरी पीठ थपथपाई। उस लौह-पुरुष की आंखों में आंसू छलछला आए थे। मुझे भी अपने आंसू रोकने में काफ़ी कठिनाई हुई।

मेरे लिए यह बड़े गौरव का क्षण था। पंडितजी ने अपने दोनों हाथों से मुझे आशीर्वाद दिया और उन्होंने इस विनम्र सेवा के लिए मुझे बहुत-बहुत धन्यवाद दिया।

मेरे विदा लेने से पहले उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं रिपोर्ट को उर्दू में छपवा सकता हूं, लेकिन मुझे अत्यधिक खेद है कि मैं दो कारणों से ऐसा नहीं कर सका। पहले तो मैं अनुवादक की व्यवस्था नहीं कर पाया और दूसरे किसी तरह से पुलिस को शक हो गया था।

वीर देशभक्त पंडित चन्द्रशेखर आज़ाद के प्रेरणापूर्ण नेतृत्व में सोशलिस्ट रिपब्लिकेशन पार्टी को आदरणीय मोतीलालजी से जो उदार सहायता प्राप्त हुई, वह सदा याद होगी।

होमियोपैथी में रुचि

डा० के० जी० सक्सेना

पंडित मोतीलालजी को होमियोपैथी के एक प्रशंसक तथा चिकित्सक के रूप में श्रद्धांजलि अर्पित करने में मैं अपने को गौरवान्वित अनुभव करता हूं। देश तथा विदेश में बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि यह महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति, जो विश्वबन्धुत्व तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का पोषक था, होमियोपैथी में भी रुचि रखता था।

पंडित मोतीलालजी दमा के पुराने मरीज़ थे तथा उसके इलाज के लिए उन्होंने उन दिनों प्रचलित अनेक औषधियों का प्रयोग किया था। उनके कुछ मित्रों ने उनको होमियोपैथिक इलाज करने की राय दी, लेकिन उन्होंने युवावस्था में वह इलाज स्वीकार नहीं किया। जब वह ४८ वर्ष के थे, वह योरोप गये। उनके एक घनिष्ठ मित्र पंडित प्रिथीनाथ चक ने उनके पास बर्लिन में समुद्री तार भेजा कि वह जर्मनी के कुछ विख्यात होमियोपैथ चिकित्सकों से राय लें। फिर भी पंडितजी ने उनसे राय नहीं ली। स्वदेश लौटने पर उन्हें पता चला कि पंडित चक गम्भीर रूप से बीमार हैं तथा वह कलकत्ता के होमियोपैथिक चिकित्सक डा० एस० के० नाग से इलाज कराने के लिए गए हैं। पंडित मोतीलाल भी कलकत्ता गए। वहां उन पर ज़ोर डाल कर उनको अपने दमे का होमियोपैथिक इलाज कराने के लिए राजी कर लिया गया। उन्होंने कुछ बेमन से डा० नाग की एक खुराक दवा खा ली। इस आश्चर्यजनक होमियोपैथिक दवा को खाने के बाद उनकी बीमारी एकदम गायब हो गई और उन्हें साल-भर तक दमे का दौरा नहीं हुआ। पंडितजी इस आश्चर्यजनक दवा से इतने प्रभावित हुए कि होमियोपैथी के प्रति उनकी सारी भ्रान्ति और विरोध समाप्त हो गया और वह उसके समर्थक तथा प्रशंसक बन गये। उन्होंने होमियोपैथिक की बहुत-सी पुस्तकें खरीदीं और अमरीका से बहुत-सी होमियोपैथिक दवाइयां मंगवाईं। उन्होंने एक तटस्थ पर्यवेक्षक के रूप में औषधि की न्यूनतम मात्रा तथा होमियोपैथी के तर्कसंगत नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर प्रयोग शुरू किए। उन्होंने होमियोपैथी के संस्थापक डा० हैनीमन तथा अमरीका, भारत, योरोप तथा रूस में उनके अनेकानेक अनुयायियों की रचनाओं का गहरा अध्ययन किया। 'वह अपने मित्रों, सम्बन्धियों तथा अन्य व्यक्तियों को होमियोपैथिक दवाइयां दिया करते थे और देखते थे कि इन नन्ही-नन्ही गोलियों से फ़ायदा होता है। उन्होंने अपने डिज़ाइन के आधार पर होमियोपैथिक दवाइयों का एक सुन्दर बक्सा बनवाया और उसमें होमियोपैथिक दवाइयों की हज़ारों शीशियां चुन दीं। वह कहा करते थे कि होमियोपैथी संसार की सबसे वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति है। वह कहते थे कि यदि मुझे समय और अवसर मिले तो मैं होमियोपैथी से मनुष्य की समस्त बीमारियों का इलाज कर सकता हूं। होमियोपैथी जिन वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है वे इतने पूर्ण हैं कि एक बुद्धिमान व्यक्ति होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धति में बाक़ायदा प्रशिक्षित न होने पर भी, होमियोपैथिक दवाइयां देकर मरीज़ों को अच्छा कर सकता है। इस तरह दो और चार होते हैं, वैसे ही जब किसी होमियोपैथिक दवा के गुण मरीज़ की बीमारी से मेल खा जाते हैं तो उसे अच्छा कर देते हैं। यद्यपि वह नियमित रूप से होमियोपैथिक चिकित्सा नहीं करते थे फिर भी उन्होंने बहुत से मरीज़ों का इलाज किया और उन्हें अच्छा किया। जब कभी उनको किसी मरीज़ के इलाज में कठिनाई पड़ती थी तो वह बनारस के डा० बी० के० बोस और कलकत्ता के डाक्टर एस० के० नाग और डा० डब्ल्यू० योनान

की राय लेते थे। वह यात्रा के समय होमियोपैथिक दवाईयों का अपना बक्सा तथा मटेरिया मेडिका साथ रखते थे।

अपनी पीढ़ी के इस महानतम व्यक्ति से मिलने का मुझे सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी मैंने उपरोक्त बातें उनके निकट सम्बन्धी तथा मित्रों से, विशेषकर श्री ब्रजलाल नेहरू से सुनीं। मुझे अब भारत के लाखों होमियोपैथिक चिकित्सकों की ओर से उनको श्रद्धांजजि अर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

उनके स्वर्गवास के बाद उनका विशाल होमियोपैथिक पुस्तकालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय को दान कर दिया गया। मोतीलाल नेहरू स्मारक समिति ने लखनऊ में एक विशाल होमियोपैथिक अस्पताल बनवाया। इसका उद्घाटन कुछ वर्ष पूर्व श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने किया था। इस अस्पताल में प्रतिदिन चार-पांच सौ मरीज़ों का इलाज होता है।

> जनता रोटी चाहती है, उसके पास समय नहीं है कि वह प्रयोग करती रहे।
> बाहर से लाये हुए सिद्धान्तों और मताग्रहों का उसके लिए कोई उपयोग नहीं।
>
> —मोतीलाल नेहरू

शत युद्धों के विजेता

पी० के० वी०

सैकड़ों युद्धों के विजेता, पंडित मोतीलाल ने जीवन का चरम उपभोग किया और कभी झुके नहीं। उनका जीवन एक आनन्दपूर्ण जीवन की कहानी है, जिसका अन्त दुखद हुआ। उनमें अपूर्व साहस, त्याग तथा अपार देशभक्ति थी। वह शुरू में मॉडरेटों में मॉडरेट थे। बाद में वे क्रांतिकारी राजनीतिक बन गए। इस परिवर्तन का श्रेय किसको है, इस संबंध में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। कुछ लोगों का खयाल है कि यह परिवर्तन पं. जवाहरलाल नेहरू के कारण हुआ। अन्य लोगों का खयाल है कि यह केवल उनका क्रमिक विकास था। वास्तविकता दोनों के बीच में है। उनका राजनीति में प्रथम प्रवेश १९०७ में हुआ, जब उन्होंने मेयो हॉल में भाषण दिया। उस समय वह इलाहाबाद- उच्च न्यायालय के प्रमुख एडवोकेट के रूप में अधिक प्रसिद्ध थे। एक राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी कोई ख्याति नहीं थी। उन्होंने जान-बूझकर अपने को राजनीतिज्ञों ओर राजनीति से दूर रखा था और अपना पूरा ध्यान अपने पेशे में लगाया था, जिसमें बड़ा नाम कमीया। लेकिन वह धीरे-धीरे राजनीति की ओर खिचते गए। वह १९०९ में प्रथम बार संयुक्त प्रांत लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गए और १९२० में असहयोग-आन्दोलन शुरू होने तक बराबर उसके सदस्य निर्वाचित होते रहे।

प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन

अपने प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन में उनकी नीति सहयोग की थी और वह अंग्रेज़ों की न्यायप्रियता तथा ईमानदारी में विश्वास करते थे। जानबुल के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा था, "उसे परिस्थिति को समझने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है, लेकिन जब वह स्थिति स्पष्टत: देख लेता है, तो स्पष्ट रूप से अपने कर्तव्य का पालन करता है..."

इस समय बंगाल की जनता विभाजन के प्रश्न को लेकर आन्दोलन कर रही थी और उस प्रान्त में धीरे-धीरे आतंकवादी विचारधारा पनप रही थी पंडित मोतीलाल इन आतंकवादियों की रीति-नीति के कट्टर विरोधी थे। लेकिन ऐसा लगता था कि उनकी मॉडरेट विचारधारा में परिवर्तन आने वाला है। फिर भी यह परिवर्तन अचानक नहीं आया। वह बहुत धीरे-धीरे अलक्ष्य रूप से आया। वे दिन विश्व-युद्ध के विषादपूर्ण दिन थे और वह उत्तर प्रदेश में इंडियन डिफेन्स फोर्स का संगठन कर रहे थे। इसी समय होमरूल आन्दोलन चलाने के अभियोग में श्रीमती बीसेन्ट को नज़रबन्द कर दिया गया और इससे ब्रिटिश लोकतन्त्र में उनकी आस्था हिल उठी।...पंजाब में आतंक का राज स्थापित हो गया...पंडित मोतीलाल नेहरू होमरूल आन्दोलन में खिंच गए। उन्होंने घोषित किया, "मैं अपनी ओर से तथा अपने देशवासियों की ओर से कहता हूं कि हम बदला लेना या घूंसे का जवाब घूंसे से देना नहीं चाहते। हम यही चाहते हैं कि हमारे साथ जो अन्याय किया गया है उसका प्रतिकार किया जाय। यह प्रतिकार धन से नहीं नापा जा सकता। यह कुछ विशेषाधिकार देने से नहीं प्राप्त हो सकता, न सुधारों की किसी योजना से प्राप्त हो सकता है। इसका तो केवल यही उपाय है कि नौकरशाही को यहां से समाप्त किया जाय।" अपनी निराशा तथा खीज के बावजूद उन्होंने अमृतसर कांग्रेस में शांतिपूर्वक इसी बात पर ज़ोर दिया कि सुधारों को अमल में लाया जाय और उनका उपयोग प्रगति के पथ पर अग्रसर होने में किया जाय।

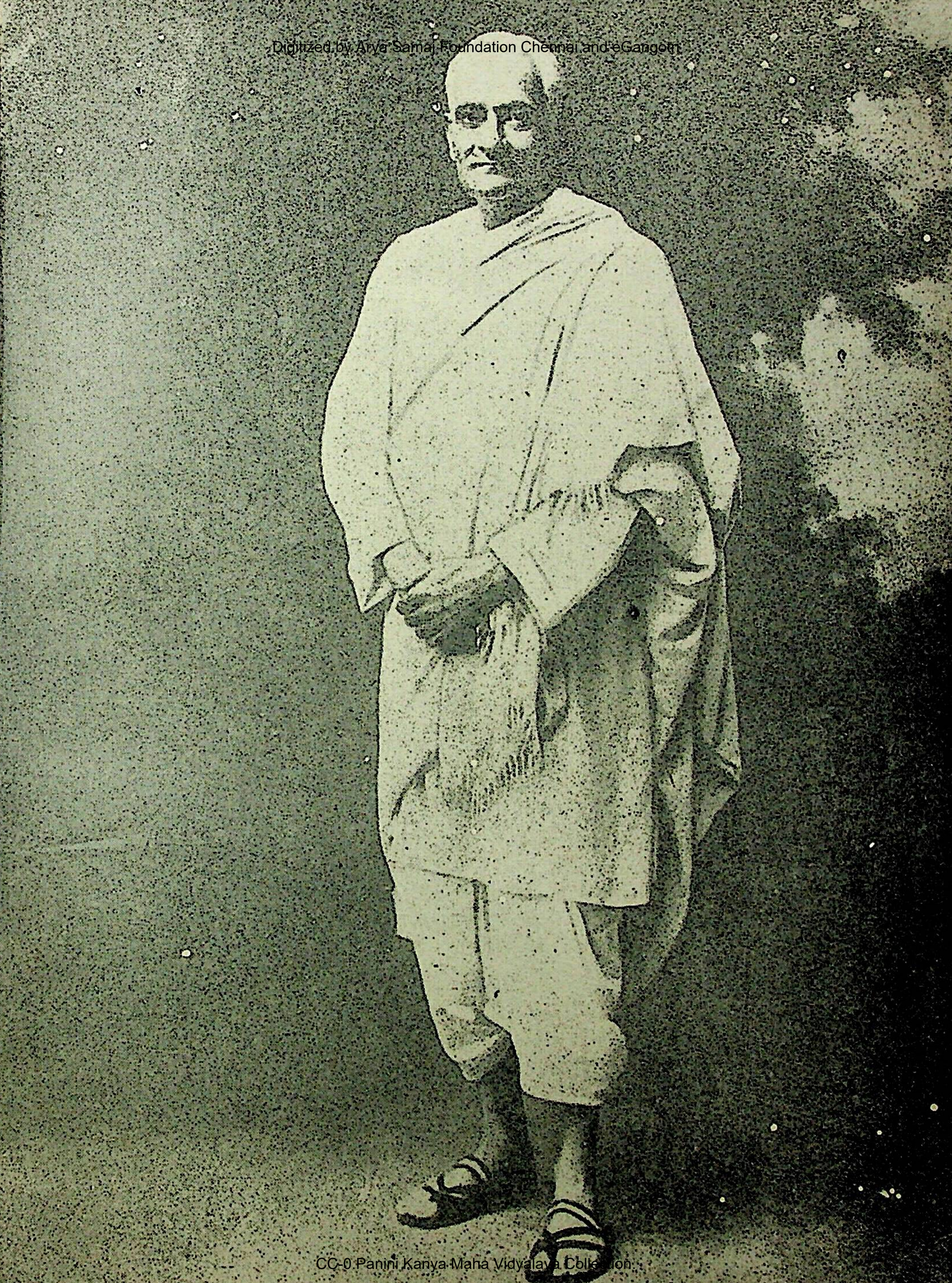

असहयोग

लेकिन परिस्थिति धीरे-धीरे बदलती जा रही थी और महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार हो गया था, जिसके अन्तर्गत कौंसिलों, सरकारी स्कूल कालेजों, अदालतों आदि के बहिष्कार का कार्यक्रम रखा गया था। पंडित मोतीलाल नेहरू पीछे नहीं रहे और गांधीजी की पुकार पर अपनी चलती हुई वकालत को छोडकर आन्दोलन में कूद पड़े और उसके सबसे शक्तिशाली स्तम्भ बन गए। इस अवसर पर उनके इकलौते पुत्र ने उनके कामों में बहुत हाथ बंटाया। पिता और पुत्र ने जीवन में पहली बार एक साथ जेल-यात्रा की।

पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपनी सुलझी हुई बुद्धि तथा भारी राजनीतिक सूझबूझ का परिचय देते हुए कौंसिलों पर कब्जा जमाने के लिए स्वराज्य पार्टी संगठित की। इस कार्य में स्व. देशबंधु चित्तरंजनदास ने उनका हाथ बंटाया। उनके समकालीन व्यक्तियों में देशबन्धु विशिष्ट स्थान रखते थे। अन्तिम धक्का साइमन कमीशन के रूप में लगा, जिसमें तीव्र जनमत की अवहेलना करके सभी गोरे सदस्य नियुक्त किये गए थे। अब परिस्थिति चरम बिन्दु की ओर पहुंच रही थी और पंडित मोतीलाल नेहरू आने वाले संघर्ष को स्पष्ट देख सकते थे।

उन्होंने अपनी स्वाभाविक तत्परता के साथ एक ऐसी योजना बनानी शुरू की जो सभी दलों को सन्तुष्ट कर सके और १९२८ में कलकत्ता के सर्वदलीय सम्मेलन की पुष्टि के लिए अपनी चिरस्मरणीय नेहरू-रिपोर्ट पेश की, जो उनकी रचनात्मक प्रतिभा की परिचायक थी। उसी वर्ष उन्होंने कांग्रेस से औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव पास करा लेने के लिए अथक प्रयास किया...इसमें वह सफल रहे। वह भारत को भीषण संघर्ष से बचाने के लिए इतने आतुर थे कि उन्होंने १९२८ में अन्तिम बार ब्रिटेन से अनुरोध किया कि वह भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान कर दे। पंडित जवाहरलाल के नेतृत्व में नई पीढ़ी जोर दे रही थी कि यदि इस बीच औपनिवेशिक स्वराज्य की राष्ट्रीय मांग पूरी न की जाए तो पूर्ण स्वाधीनता पर बल दिया जाए। १९२९ में लाहौर कांग्रेस ने महात्मा गांधी को सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू करने का अधिकार दे दिया।

सत्याग्रह आन्दोलन

१९३० के शुरू में सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ हुआ और पंडित मोतीलाल नेहरू उसमें फ़ौरन कूद पड़े, हालांकि इस समय तक वह बूढ़े हो चले थे। लेकिन इससे उनकी शक्ति और उनकी बुद्धि, उनका साहस और उत्साह और तीव्र हो गया था। यद्यपि वह अस्वस्थ थे, फिर भी उन्होंने अपने को गिरफ्तार कराया और नैनी सेण्ट्रल जेल में अपने पुत्र से जा मिले। लेकिन वहां भी उन्होंने शान्ति की आशा नहीं छोड़ी...वह सरकार और कांग्रेस में समझौता कराने की कोशिश में लगे रहे। अस्वस्थ होते हुए भी उन्होंने सुदूर पूना की यात्रा की, लेकिन वहां से असफल होकर लौटे। इसके बाद उनकी सेहत तेजी से गिरती गई और वह सज़ा की अवधी पूरी होने से पहले ही रिहा कर दिए गए।

महान् संसदीय नेता

मोतीलालजी की वक्तृत्व-कला अद्वितीय थी। कानून के बहुत बड़े पंडित होने के कारण उन्होंने कूटनीति में सहज गति प्राप्त कर ली थी। वह अपना पक्ष बड़ी सफाई से और बड़े सुलझे ढंग से पेश करते थे। एक महान् संसदीय नेता तथा एक महान् राजनेता के रूप में उन्होंने केन्द्रीय असेम्बली में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनके भाषण बड़े सुलझे हुए होते थे।...वह बात के बड़े धनी थे।...उनके कट्टर-से-कट्टर शत्रु भी उनकी सराहना करते थे।...उनके चरित्र में अपूर्व दृढ़ता थी...राष्ट्र ने उन्हें दो बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष चुनकर उनका सम्मान किया।

उनके महान् त्याग की कहानी स्वर्णाक्षरों में लिखी जाएगी। उन्होंने अपनी वकालत उस समय त्याग दी जिस समय वह सफलता के शिखर पर पहुंच गए थे। वह राजनीतिक क्षेत्र में उस समय कूद पड़े जिस समय अवस्था बीतने के फलस्वरूप उनका शरीर अधिक परिश्रम करने के योग्य नहीं रह गया था। वह उस समय हँसते-हँसते जेल गए जब उनका स्वास्थ्य इतना गिर गया था कि जेल के कठोर जीवन को सहन करने के योग्य नहीं रह गया था। उन्होंने अपना पुराना आनन्द भवन, जहां एक समय शराब के दौर खुलकर चलते थे तथा गवर्नरों को दावतें दी जाती थीं, राष्ट्र को दान कर दिया।

कुछ चुने हुए पत्र

मोतीलाल नेहरू का महात्मा जी को पत्र
(११ जुलाई, १९२८)
(१९ जुलाई, १९२८)
महात्मा जी का मोतीलाल नेहरू को तार
(२३ जुलाई, १९२८)
सुभाषचन्द्र बोस का मोतीलाल नेहरू को पत्र
(१३ जुलाई, १९२८)
जे. एम. सेनगुप्ता का मोतीलाल नेहरू को पत्र
(१७ जुलाई, १९२८)
मोतीलाल नेहरू का सुभाषचन्द्र बोस और जे. एम. सेनगुप्ता को जवाब
(१९ जुलाई, १९२९)

कौन उस मोती की कीमत का लगा सकता हिसाब,
जिसका एक ज़र्रा जवाहर अफताबे मुल्क है !

—रामकृपालसिंह

गांधी संग्रह
साबरमती.

July 11, 1928.

709

S.N. 13633

Dear Mahatmaji,

I am at last able to say that some kind of unanimity has been arrived at as to the report of the Committee. It is xxxxxx neither complete nor of the genuine type but something we can stand for both in the All Parties Conference and the country at large. I enclose a copy of the proceedings in their final stages which will give you an idea of how we have dealt with the controversial points. The members have all gone to their respective homes leaving Jawahar and myself to prepare the report and we are now hard at work on it.

You might have seen in the Press that I have sent my resignation of membership of the Canadian delegation as I felt that whatever chances there were of our report being accepted by the All Parties Conference would be minimised by my absence from the country.

Now comes the question of the crown. I am clear that the hero of the hour is Vallabh Bhai and the least we can do to appreciate his public services is to offer him the crown. Failing him I think that under all the circumstances Jawahar would be the next best choice. He has no doubt frightened many of our goody goodies by his plain talk. But the time has come when the more energetic and determined workers should have their own way of guiding the political activities of the country. There are I admit points of difference between this class and the one to which you and I belong but there is no reason why we should continue to force our views on the former. Our race is fast dying out and the struggle will sooner or later have to be continued by men of Jawahar's type. The sooner they begin the better.

As for myself I feel that I have lost much of the confidence I had in myself and am more or less a spent force. It is not the throne but the power behind it which counts and I do not see much of the latter that I can rely upon ~~count~~ barring of course yourself. I have in compliance with your request given you my ideas on the subject. It is for you to come to a decision.

Yours sincerely,

Motilal Nehru

गांधी संग्रह.
साबरमती.

* For the enclosure vide S.n. 13632 in the microfilm roll XIII

गांधी संग्रह
साबरमती.

Telegram
sent on
23/7/28

19/7

721

S.N. 13645

Dear Mahatmaji,

The accompanying correspondence will speak for itself. Jawahar has gone to Mussoorie to arrange things for Kamala and Indu. What he will appear from the copy of my letter to Sen Gupta he is under strict orders to say nothing. I like Sen Guptas regard to you to persuade Jawahar to retire. I think he needs a lot of persuasion to prevent him from doing so.

I am hard at work at the Report of the Committee. Jawahar has left copious notes for me. New points unforeseen by him are arising at every step as I dictate the report. This is due to the careless wording of the decisions of the Committee which were recorded at the end of a long sitting when everybody was too tired to care about words. I have to make constant references to the members (who have all gone back to their homes) to make sure of their meaning or, to be more accurate, to induce them to adopt the meaning which they have so far [illegible]

साबरमती

I am waiting for replies [illegible] references. As soon as they are received the draft report will be circulated to the members.

I am anxiously following the developments in and about Bardoli but am at present unable to see how I can make myself useful.

Please wire your decision about the "crown" after considering the enclosed correspondence and other communications you may have received.

Yours Sincerely
Motilal Nehru

Sent on 28/7/28.

Fear you ~~should wear~~ ~~should should~~ ~~have~~ should ~~should~~ wear it especially for Bengal's sake Gandhi ~~wired sengupta~~

copy sengupta Subhash Bose

~~I~~ Have wired Motilalji he should wear crown ~~for~~ especially for Bengal's sake Gandhi

COPY.

1, Woo
Calcutta, [illegible] July 1928.

साबरमती.

723

S. n. 13646

My dear Punditji,

I sent a wire to you yesterday morning regarding Congress Presidentship and I received a reply last night.

I cannot tell you how disappointed the whole of Bengal will feel if for any reason you decline the Congress Presidentship. Your close association with the work and policy of the Swaraj Party is one of several reasons for which your name is universally acceptable in this province. I will not refer to the other provinces but I am almost sure that when the final nomination is made, the whole of India will stand unanimously in your favour.

The situation in the country today is such and the year 1929 will be such a momentous one in the history of our country, that we can think of no body else who can rise to the occasion. We have heard of some of the alternative names suggested and in other circumstances they would have been worthy of consideration but when serious attempts are being made for a rapprochement between different parties and for the drafting of an agreed Constitution, none of the alternative suggested can be accepted. I am not exaggerating matters when I say that if for any reason you decline the Presidentship, the effect would be so desastereous in this province that it will seriously affect the success of the Congress session. At a time when we are passing through a serious crisis, may we not hope that you will respond to the nation's call ?

With profound regards,

I am,
Yours respectfully,
Sd. Subhas C.Bose.

P.S. I have received your wire regarding the voting strength of the District Boards. I am trying to collect them but I ~~am~~ doubt if I shall succeed. It will take a lot of time to compile these figures after getting the electoral rolls from the different districts. Subhas.

10/4 Elgin Road,
Calcutta
17th July 1928

My dear Punditji,

Yesterday I received a telegram from Mahatmaji telling me that you were disinclined to accept the presidentship of the next Congress. The news came to me like a shock. I immediately consulted all my friends and we were unanimous in sending a reply by wire telling Mahatmaji in strong terms to press you to get over your disinclination.

This is not the time for us to be shy or hesitant. We must have you. You must come and lead us in this political crisis at home and abroad. The majority of the provinces have sent us intimation that they want you. Four of five of them have sent in only one name namely yours, although being the first selection they could have added other names.

Bengal is unanimous about you, because we can not do without you. I can well understand the feelings of a father when his son is also in the field. But most of us are in the position of your sons. You will, therefore, pardon us for pressing you so much. You must not disappoint us whatever reason you may have for your disinclination. How much more strongly can I put our case before you?

I have written a long letter to Mahatmaji today I am sending you a copy. Do kindly drop one line to say, all is well.

Yours sincerely –

Sd/- J.M. Sen Gupta

"Anand Bhawan".

Allahabad, July 19, 1928.

S.N. 12646   3

Copy of Pandit's reply to
Sen Gupta & Subhas

725

I have just received your letter and wired to you promising an immediate reply. I am afraid you have wholly misunderstood the position. As I said in my wire there is no question of sentiment about father and son or of the son requiring any persuasion to retire in favour of the father. The only question which weighs both with the father and the son is how to serve the country best. Jawahar never for a moment entertained the idea of wearing what Mahatmaji calls the "Crown". My idea of putting him ~~in~~ in the presidential Chair of the Congress is an old one and has nothing to do with the fact that he is my son. I communicated it to Mahatmaji last year before Dr.Ansari was elected. Dr.Ansari himself was in favour of Jawahar's presiding at the Madras Congress but the latter emphatically declined the honour.

~~Again~~ In regard to the presidentship of the coming Calcutta Congress I received a letter from Mahatmaji sometime during the break in the sittings of my Committee last month informing me that he had received a letter from Sen Gupta suggesting my name as President. Mahatmaji added that if the Committee over which I was presiding was able to produce something substantial it would be as well for me to wear the crown. I replied that there was little chance of the Committee coming to an unanimous decision and in the absence of such a decision I felt that there was no work in the country for me. The matter rested there till the 8th July when the Committee arrived at some sort of a common understanding and I wrote to Mahatmaji again. I wish I had a copy of that letter to send you but I shall try to repeat the contents from memory. What I said was that Vallabhbhai Patel was the hero of the hour and the first choice should go to him. Failing him however the next best choice was Jawaharlal. The reason I gave was that the type to which I belonged had

had its day and that it was time, the direction of affairs in the country should be handed over to younger men. We could not last for ever and it was the latter who would sonner or later have to run the show. It was much better that they began in our presence than wait till we were dead and gone. As for myself I said that I was practically a spent force and did not feel quite up to the mark. The reason why I recommended Jawahar was that among the younger set I believed he was most likely to command confidence of the majority. This has since been proved to be true, as is evidenced by the fact that he and I are being mentioned almost in the same breath. Mahatmaji wired to say that he agreed with me and was recommending Jawahar in the "Young India". I was quite sure that Jawahar would at once retire and therefore took the precaution of sending him strict orders to Mussoorie not to be silly enough to rush to print without my permission. This is the whole story. I have sent copies of your letters to Mahatmaji along with a copy of this reply and have left the matter in his hands.

It is not a question between Jawahar and I at all. The whole question is what the situation demands. While I admit there is much in what you say my own opinion is that the occasion requires a strong go-ahead party in the country prepared to go the whole hog at all cost and that this party should have the further direction of the campaign in its own hands. A quiet climb down from independence to Dominion Status will only bring the Congress into ridicule. What I wish to show to the world and believe to be the fact is that the country is not prepared to stand any more nonsense and unless the least common demand of all the parties is acceded to without delay those who are favouring that demand will also range themselves on the side of the stronger party. It is my belief that having regard to the temper of the country it will not be easy to pilot the so called agreed constitution in the next Congress and if it goes through, as it is likely to, it will be due more to the personalities supporting it than the considered opinion of the younger set.

However that may be both father and ~~the~~ son are at the service of the country and it matters little to them who occupies the Chair. The whole question is what is best for the country.

With all this correspondence before him I am sure Mahatmaji will come to the right decision and I am perfectly willing to abide by his decision.

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी.............
पु०सं०.............

نسل تیرے اب رموزِ سلطنت سمجھے گا کون   ہاتھ نبضِ قوم پر تیری طرح رکھے گا کون
نقدِ جوشِ دل عیارِ قوم پر پرکھے گا کون   طاقتِ پرِ خواہشِ پرواز میں تولے گا کون
تو ہی اک محرم تھا سب کے پردہ ہائے ساز کا
نغمہ سارا تھا تری گونجی ہوئی آواز کا

تیری فطرت میں نہاں تھا کون سا ایسا گہر   ہاتھ جس ذرّہ پہ رکھا وہ ہوا رشکِ قمر
بن گیا کھدر بھی تیرے جسم پر ملبوسِ زر   عیب خوبی بن کے کھلتے تھے ترے انداز پر
اِک ادائے دلبری تھی فتنہ سامانی تری
ایک شانِ خسروی تھی چینِ پیشانی تری

یوں طبیعت میں تری کیا کیا اُبال آتا نہ تھا   بحث میں کیا کیا تجھے غیض و جلال آتا نہ تھا
ہاں مگر دل میں کبھی تیرے ملال آتا نہ تھا   خاطرِ نازک کے آئینہ میں بال آتا نہ تھا
ایک ہی چھینٹے میں سب گردِ کدورت دُھل گئی
اِک گھٹا آئی، گِھری، گرجی، برس کر کُھل گئی

اپنے زخموں کے لئے تو طالبِ مرہم نہ تھا   جز خیالِ قوم تیرے دل میں کوئی غم نہ تھا
بے خبر فکرِ وطن سے تو کبھی اِک دم نہ تھا   ہم کو ایک ایک دم ترا اک زندگی سے کم نہ تھا
تیرے خُم میں چار قطروں سے سوا باقی نہ تھا
ہاں مگر اُن کا بدل محفل میں اے ساقی نہ تھا

کون کہتا ہے ہمیں اس سانحہ کا غم نہیں   موت تیری اک بلائے ناگہاں سے کم نہیں
جہدِ آزادی میں لیکن فرصتِ یک دم نہیں   ہاں صفِ میداں کے شایاں محفلِ ماتم نہیں
اپنے سینوں میں ابھی جوشِ تمنّا ہے وہی
چشم پُرنم ہے مگر تابِ تقاضا ہے وہی

عہدِ حبِّ قوم کا باندھا ہے دل سے استوار   اب تو آزادی مقدّر میں ہے یا کنجِ مزار
آ رہے ہیں لفظ یہ اپنی زباں پر بار بار   پڑھ کے تیری لاش پر جاتے ہیں سوئے کارزار
شد فدا بر ملک تا نامِ وطن پائندہ باد
مُرد میرِ لشکرِ ما' میرِ لشکر زندہ باد

موتی لال نہرو

از آنند نرائن مُلّا

موجزن ہونے لگا تھا جب ذرا دریائے قوم　　کچھ اثر جب کر چلا تھا نشۂ صہبائے قوم
جب نظر آنے لگی تھی منزلِ فردائے قوم　　اُٹھ گیا دُنیا سے اپنا رہنما اے وائے قوم
پھُول جب کھِلنے کو تھے صحنِ چمن ویراں ہُوا
مہر اپنا جب سحر ہونے کو تھی پنہاں ہُوا

ہم نے تیرے واسطے سجدے کیے زاری بھی کی　　دست بستہ التجائے رحمتِ باری بھی کی
دوستوں نے ہو سکی جو ناز برداری بھی کی　　موت سے لڑنے کی تُو نے آپ تیاری بھی کی
سب مگر بے سُود نیّت آسماں کی اور تھی
مصلحت اس کارسازِ دوجہاں کی اور تھی

اپنے خوں سے لکھ گیا تو سُرخیِ عنوانِ قوم　　دھو گیا اپنے عمل سے دفترِ عصیانِ قوم
آفریں صد آفریں ہمت پہ تیری جانِ قوم　　بٹ کے راہِ قوم میں پُورا کیا پیمانِ قوم
جان دینی ملک پر، مر کر ہمیں سِکھلا گیا
موت میں بھی ایک شانِ زندگی دِکھلا گیا

جب مرتّب ہو گا افسانہ ترا ہندوستاں　　نام نہرو سُرخ حرفوں میں رقم ہو گا وہاں
جہدِ آزادی کی دو جلدوں میں ہو گی داستاں　　یعنی تیری اور جواہر کی سوانح عمریاں
کچھ تری باتیں ہیں، کچھ تیرے پسر کا ذکر ہے
قوم کی تاریخ بھی تیرے ہی گھر کا ذکر ہے

ماؤں سے پوچھیں گے جب بچے وطن کے ہونہار　　ہندِ نو کا کون تھا پہلا مدبّر باوقار
نقش کس کا اپنے سینوں میں بنائیں پائدار　　یک زباں ہو کر وہ تیرا نام لیں گی بار بار
مے رہے گی سب کے پیمانوں میں تیرے جام کی
مہر ہو گی سکہ قومی پہ تیرے نام کی

यदि मेरा मरना अनिवार्य है, तो मुझे स्वतंत्र भारत की गोदी में मरने दीजिए। मुझे परतंत्र देश में नहीं बल्कि स्वतंत्र देश में अंतिम निद्रा लेने दीजिए।

—मोतीलाल नेहरू

Let me die, if die I must, in the lap of a free India. Let me sleep my last sleep not in a subject country, but in a free one.

— MOTILAL NEHRU

मोतीलाल नेहरू कमेटी की ओर से बैलट पब्लिकेशन नई दिल्ली से प्रकाशित तथा डी. पी. सिन्हा,
न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली में मुद्रित।

महर्षि–पाणिनि–प्रज्ञा–अनुसन्धान केन्द्र
तिथी..................
पु०सं०..................
* भारती पुस्तकालय *

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र * भारती पुस्तकालय *
तिथी..............
पुस्त०..............